बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

डॉ० रामकुमार वर्मा के नाट्य साहित्य में व्यक्त सौन्दर्य का अनुशीलन

हिन्दी साहित्य विषय से

विद्या वाचस्पति (पी–एच० डी०)

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

२००७
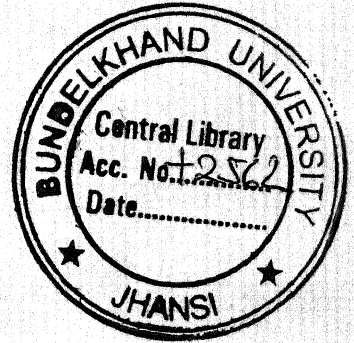
पर्यवेक्षक

डॉ०(श्रीमती) कुसुम गुप्ता

रीडर, हिन्दी विभाग

बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी

शोधार्थी

रघुराज सिंह यादव

एम०ए० हिन्दी

शोध केन्द्र : बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी

घोषणा पत्र

मैं रघुराज सिंह यादव पुत्र स्व. श्री वीरेन्द्र सिंह यादव शपथ पूर्वक घोषणा करता हूँ कि हिन्दी साहित्य विषय से पी–एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत मेरा यह शोध कार्य पूर्णतः मौलिक हैं। मेरी पूर्ण जानकारी एवं विश्वास के अनुसार **"डॉ० रामकुमार वर्मा के नाट्य साहित्य में व्यक्त सौन्दर्य का अनुशीलन"** विषय पर शोध कार्य किसी अन्य के द्वारा अन्यत्र कहीं भी प्रस्तुत नहीं किया गया है। मैं इस शोध प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत कर रहा हूँ।

मेरी कामना है कि ईश्वरीय कृपा से तथा पूज्य गुरुजनों एवं श्रद्धेयजनों के स्नेहिल आशीर्वाद से मेरा यह प्रयास सफल सिद्ध हो।

शोधार्थी

रघुराज सिंह यादव

दिनांक :

स्थान :

रघुराज सिंह यादव

एम०ए० हिन्दी साहित्य

रीडर, हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी
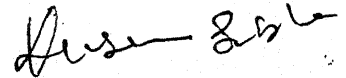
डॉ0 (श्रीमती) कुसुम गुप्ता
एम0ए0, पी–एच0 डी0

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री रघुराज सिंह यादव पुत्र स्व. श्री वीरेन्द्र सिंह यादव ने **"डॉ० रामकुमार वर्मा के नाट्य साहित्य में व्यक्त सौन्दर्य का अनुशीलन"** शीर्षक पर मेरे निर्देशन में शोध कार्य पूर्ण किया है। इन्होंने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की पी–एच० डी० परीक्षा की नियमावली के सभी उपबन्धों के अनुसार नियमित रूप से उपस्थित रह कर मेरे निर्देशानुसार कार्य किया है।

यह शोध प्रबन्ध इनका मौलिक प्रयास है। मैं इनके कार्य व कृतित्व से पूर्णरूप से संतुष्ट हूँ तथा ईश्वर से उनके स्वर्णिम भविष्य की कामना करती हूँ।

पर्यवेक्षक

डॉ0 (श्रीमती) कुसुम गुप्ता
एम0ए0, पी–एच0 डी0

दिनांक –
स्थान –

भूमिका

सौन्दर्य आनन्द की अनुभूति करवाता है। मानव के सौन्दर्योपासक होने के कारण वह हमेशा अपने आसपास सौन्दर्य की खोज करता रहता है। मानव ने प्रकृति में, वस्तुओं में, स्थावर में, मानवों में, पशु—पक्षियों में, नदियों में, सागर में, पर्वत में, जंगल में,आसमान, में चाँद—तारों में, खुशबू में, रंगों में, फूलों में, काँटों में........ सर्वत्र सौन्दर्य की चाह की है। सृष्टि के आविर्भाव से लेकर किसी भी कार्य की सर्जना तक मनुष्य की सौन्दर्य की खोज, सौन्दर्य की लालसा प्रमुख कर्म रहा है।

मनुष्य ने अपने आसपास की तीव्र, मधुर, कर्कश सभी ध्वनियों में सौन्दर्य की अनुभूति की है। नदियों की कल—कल में उसने सौन्दर्य सुना है तो झरनों के तीव्रतम स्वरूप में सौन्दर्य निहारा है; शेर की दहाड़ में सौन्दर्य का घोष प्राप्त किया है तो कोयल की कूक में भी सौन्दर्य का गान मिला है; फूलों की खुशबू के सौन्दर्य में वह मदमस्त हुआ है तो भौंरों की गुंजन में भी उसने सौन्दर्य को खोज की है; घण्टों की टनटनाहट में सौन्दर्य की ध्वनि सुनी है तो शंखों के निनाद में सौन्दर्य को सुना है।

सौन्दर्य का आभास मानव ने विविध रूपों में सहजता से किया है। सौन्दर्य का आभास सहजता से ही करने पर प्राप्त होता है क्योंकि सौन्दर्यावृत्ति का सम्बन्ध मानवीय संवेदनाओं, संवेगों, अनुभूतियों आदि से होता है। सौन्दर्य की दिव्यता का आभास किसी भी रूप में उसी व्यक्ति को हो सकता है जिसकी उस रूप विशेष के प्रति संवेदनाओं, अनुभूतियों की सकारात्मकता हो। इसी कारण एक माँ को अपना कुरुप पुत्र भी सुन्दर दिखता है; एक कवि को पतझड़ में भी सौन्दर्य नजर आता है।

सौन्दर्यानुभूति के सत्वोद्रेक से द्रष्टा अथवा प्रमाता को आत्मविश्रांति एवं विशुद्ध अन्त:चेतना की उपलब्धि होती है। इसी उपलब्धि के द्वारा मानव को सौन्दर्य की दिव्यता का आभास होता है और उसी के माध्यम से सत्यं, शिवं, सुन्दरं की आधारभूत सत्ता का संकेत भी मिलता है। सत्यं, शिवं, सुन्दरं की आधारभूत सत्ता में सौन्दर्य के समाहित होने के कारण इसका क्षेत्र विस्तार लिए होता है। इसकी सीमा में धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी प्रकार के विचारों का समावेश हो जाता है। सौन्दर्यबोधात्मक मानक संस्कृति के लक्ष्य और क्रिया कलापों के आदर्श होते हैं।

मानव सौन्दर्य की जो अनुभूति करता है उसे विविध रूपों में प्रस्तुत भी करता है। सौन्दर्य की प्रस्तुति के लिए कला सर्वोत्तम साधन स्वीकारा गया है। मानव विकास की परम्परा के साथ—साथ कलाओं का विकास होता रहा और कला के विकास के साथ—साथ सौन्दर्यानुभूति को नये—नये आयाम प्राप्त होते रहे। कला के क्षेत्र में विविध आयामों के सम्बद्ध होने से उसमें नैतिक मूल्यों का भी समावेश होने लगा, इससे कला भी उन्हीं मूल्यों को स्वीकारती दिखी जिसमें सौन्दर्यबोध की वैश्विक दृष्टि हो। कला के विविध प्रयोजनों में सौन्दर्य अथवा रस की अभिव्यक्ति को प्राथमिकता प्रदान की जाती है। शिक्षा अथवा उपदेश की अभिव्यंजना को उसके बाद स्थान प्राप्त है।

सृष्टि के आविर्भाव से द्विदलात्मक परमचेतना विविध रूपों में सौन्दर्य का परिपाक करवाती रही है। लाभ—हानि, जय—पराजय, सुधा—गरल, सुन्दर—असुन्दर आदि दोनों रूपों में परमसत्ता का अस्तित्व है और उसी के सौन्दर्य का स्वरूप है। यह रहस्य एक साहित्यकार को,कवि को, स्रष्टा को ज्ञात होता है। इस कारण से वह वसंत के साथ पतझड़, प्रकाश के साथ अन्धकार, सौम्य के साथ उग्र, नूपुर के साथ तलवार आदि में सुन्दरता और रमणीयता को प्रदर्शित करता है।

उदारहृदय साहित्य स्रष्टा को सिद्धि ही नहीं, साधना भी सुन्दर प्रतीत होती है।

साहित्यकार की कल्पना इसी रहस्य से उत्प्रेरित होकर सौन्दर्य की सर्जना विविध रूपों में करती है। वह अपनी कल्पना, अपनी भावना के अनुसार भावों में परिवर्तन करता रहता है। साहित्यकार की सर्जनात्मक प्रतिभा का स्पर्श पाकर रागात्मक साहित्य के अंग अंग में सौन्दर्य का स्रोत तरंगायित होने लगता है। ललित कला की गंगा एवं रम्य भावना की यमुना के संगम में डुबकी लगा कर आने वाली प्रत्येक वस्तु अपने मूल रूप की अपेक्षा अधिक सुन्दर लगने लगती है। इसी कारण साहित्यिक अथवा कलात्मक वस्तुएँ एक साथ सत्य, सुन्दर एवं मंगलकारिणी होती हैं।

सत्यं—शिवं—सुन्दरं की इस शब्दार्थमयी अभिव्यक्ति के सामंजस्य को साहित्य की संज्ञा प्रदान की ज़ाती है। ललिताभिव्यक्ति अथवा सौन्दर्याभिव्यंजना साहित्यिक समीक्षा का निकष प्रतीत होती है। साहित्य के विविध अंग भी सौन्दर्य के रूप में समझे जाते हैं। ध्वनि, रीति, गुण, अलंकार आदि को किसी भी रूप में साहित्य से मुक्त नहीं माना जा सकता है। साहित्यिक कृति में किसी न किसी रूप में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति अवश्य होती है।

सौन्दर्य का जैसा सम्बन्ध चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्यकला आदि से होता है ठीक वैसा ही सम्बन्ध साहित्य से भी होता है। इस अन्तर्सम्बंध के कारण किसी भी साहित्यिक कृति की गवेष्णात्मक विवेचना सौन्दर्य के आधार पर की ज़ा सकती है।

साहित्यिक कृतियों में विशेषतः मानवीय स्वरूप, प्राकृतिक स्वरूप, वस्तुगत स्वरूप तथा भाषागत् लालित्य पाया जाता है। समीक्षात्मक रूप से सौन्दर्य का अध्ययन करने की दृष्टि से भी किसी गवेषक का ध्यान मानवीय सौन्दर्य, प्रकृति सौन्दर्य, वस्तुगत सौन्दर्य तथा भाषागत् सौन्दर्य की ओर ही खिंचता है।

सामान्यत: साहित्य में सौन्दर्य का सम्बन्ध काव्य अथवा कविता से ही माना जाता है, साहित्य की अन्य किसी विद्या से नहीं। जबकि किसी साहित्यकार का सौन्दर्य बोध जैसे काव्य अथवा कविता के माध्यम से व्यक्त होता है, उसी तरह उसकी अभिव्यक्ति गद्य में भी होती है। ललित—निबन्ध एवं गद्य—काव्य से इस तथ्य का पोषण भी होता है कि सौन्दर्याभिव्यक्ति पद्य तथा गद्य दोनों में होती है और हो सकती है।

इंगित तत्व का आकलन अथवा अनुसन्धान अधिकतर काव्य के प्रसंगों में ही हुआ है। गवेषकों एवं समीक्षकों का ध्यान काव्येत्तर साहित्यिक विधाओं — विशेष रूप से नाट्य साहित्य में अभिव्यक्त सौन्दर्य विवेचन की ओर नहीं गया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा के साहित्य का अनुशीलन विविध दृष्टियों से हुआ है। उनके साहित्य से सम्बद्ध समीक्षात्मक एवं गवेष्णात्मक सामग्री पुष्कल रूप में उपलब्ध है पर उनके नाट्य साहित्य में व्यक्त सौन्दर्य का विवेचन अद्यावधि अस्पष्ट है। इस प्रकार विषय की मौलिकता एवं नवीनता निर्विवाद प्रतीत होती है। डॉ० वर्मा के नाट्य साहित्य में व्यक्त सौन्दर्य का अनुशीलन से शोध एवं समीक्षा के ज्ञात पक्षों का विस्तार एवं अज्ञात क्षितिजों का उद्घाटन हो सकता है।

डॉ० वर्मा को नाट्य—साहित्य की प्रेरणा बाल्यकाल में रंगमंच पर अभिनय करते समय प्राप्त हुई थी। उनकी प्रेरणा, परम्परा और आधुनिकता के जीवन संयोग में परिलक्षित है। वे अतीत की विगतता को सुरक्षित रखते हुए विगत की वर्तमानता को उभार पाने में सिद्धहस्त हैं। कलम और कल्पना के धनी डॉ० रामकुमार वर्मा ने संस्कृति के लगाव के कारण अपनी नाट्य—कृतियों में ऐतिहासिकता और सामाजिकता का अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया है। इतिहास की विशालता, संस्कृति की पावनता तथा समाज की सामाजिकता को समेटे डॉ०

वर्मा के नाट्य साहित्य में सौन्दर्य का अनुशीलन दुरूह अथवा दुःसाध्य भले न हो परन्तु कठिन अवश्य था। इस कठिनता के पीछे नाट्य साहित्य की विशालता नहीं अपितु डॉ० वर्मा की ऐतिहासिक और सामाजिक सोच के साथ अभिव्यक्त सौन्दर्य का अपना ही एक विशिष्ट अर्थ है।

इस शोध कार्य की सफलतापूर्वक सम्पन्नता में अनेक विद्वानों के लेखों, पुस्तकीय समाग्री एवं अन्य शोध कार्यों की सहायता भी प्राप्त की गई, जिनका उल्लेख यथास्थान किया भी गया है। शोधकार्य की सफलतापूर्वक सम्पन्नता में सहयोगी रहे लोगों को विस्मृत करना उनके प्रति कृतघ्नता होगी हालांकि सहयोग का कोई प्रतिदान नहीं हो सकता फिर भी उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना मेरे लिए आवश्यक हो जाता है।

मैं सर्वप्रथम विद्या की अधिष्ठात्री देवी माँ सरस्वती के पावन चरणों में नमन करता हूँ जिनके आर्शीवाद से मैं किंचित ज्ञान प्राप्त कर सका, साथ ही अपने पूज्य पिता स्व. श्री वीरेन्द्र सिंह यादव तथा पूज्य माता श्रीमती द्रोपदी यादव के श्री चरणों में भी नमन करता हूँ जिन्होंने कभी भी परिस्थितियों से हार न मानने की शिक्षा और आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

अपनी शोध पर्यवेक्षक डॉ०(श्रीमती) कुसुम गुप्ता, रीडर, हिन्दी विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी के सहयोग को भी नमन करता हूँ जिन्होंने हमेशा सहर्ष भाव से शोध कार्य के समय आने वाली शंकाओं एवं जिज्ञासाओं का समाधान कर, त्रुटियों को सुधार कर मेरे शोधकार्य को सम्पन्नता की मंजिल तक पहुँचाया।

अपने गुरू जी प्रो० इकबाल हुसैन, पूर्व प्राचार्य बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी तथा डॉ० आर० एन० रिछारिया, पूर्व प्रवक्ता, अंग्रेजी, लक्ष्णमदास दमेले इण्टर कालेज, मऊरानीपुर के आशीर्वाद का सदैव आकांक्षी

रहूँगा, जिनकी प्रेरणा से मैं नित नये सोपानों को तय करता रहा। अपने गुरूजनों के साथ—साथ परम श्रद्धेय, मनीषी डॉ० डी०पी० श्रीवास्तव, डी०लिट्०, पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, दयानन्द वैदिक पी०जी०महाविद्यालय, उरई (जालौन) के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जो अपनी अस्वस्थता के बाद भी मुझे विचारात्मक सहयोग देने को सदैव तत्पर रहे।

अपने परम मित्रों डॉ० जे०पी० गुप्त, पूर्व प्राचार्य, अग्रसेन पी०जी० महाविद्यालय, मऊरानीपुर तथा डॉ० एस०आर० आर्य, पूर्व सदस्य, लोक सेवा आयोग उ०प्र०, इलाहाबाद के सहयोग को किसी भी रूप में विस्मृत नहीं कर सकूँगा, जिन्होंने पग—पग पर मुझे शोध कार्य की ओर प्रवृत्त रहने को प्रेरित किया। इनके बिना शोध कार्य की सम्पन्नता की कल्पना करना भी कठिन था।

शोध कार्य की सफलता हेतु प्रिय डॉ० कुमारेन्द्र सिंह सेंगर, प्रवक्ता हिन्दी, गाँधी महाविद्यालय उरई (जालौन) एवं प्रिय डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव, प्रवक्ता हिन्दी, दयानन्द वैदिक पी०जी०महाविद्यालय, उरई (जालौन) के विचारात्मक सहयोग एवं समय—समय पर साहित्यिक पुस्तकीय मदद करने एवं मानसिक सम्बल देने को शोध कार्य की सम्पन्नता का आधार स्तम्भ मानता हूँ। आयु में छोटे दोनों प्रियवरों के उज्ज्वल भविष्य की हमेशा कामना करता हूँ।

अपनी शोध पर्यवेक्षक, गुरूजनों, मित्रों, सहयोगियों के साथ—साथ अपने परिवारीजनों के आत्मीय सहयोग के साथ मैं आसानी से अपने शोध कार्य को समाप्ति तक ले जा सका। अपनी धर्मपत्नी श्रीमती शीला यादव का सान्निध्य कदम कदम पर मुझे कठिनाइयों से उबारता रहा। मेरे छोटे भाइयों श्री गिरबर सिंह यादव, श्री महरूप सिंह यादव, एडवोकेट, श्री मिथलेश कुमार सिंह यादव, श्री लोकेन्द्र सिंह यादव, एडवोकेट एवं श्री शत्रुघन सिंह यादव ने परिवारिक दायित्वों से मुझे मुक्त रख मेरे शोध कार्य को आसान बनाये रखा। दोनों पुत्रों श्री सात्विकी

यादव एवं श्री सिद्धार्थ यादव तथा तीनों पुत्रियों श्रीमती भारती यादव, कु० विजय नन्दिनी यादव तथा कु० जान्हवी यादव ने मुझे लेखन, कम्प्यूटर टाइपिंग सुधार में सहयोग कर, मेरे विस्तारपूर्ण कार्य को संक्षिप्त कर उसे पुस्तकीय रूप प्रदान करने में मदद की। इन सभी लोगों के भावी जीवन के स्वर्णिम एवं सुखी होने की कामना सदैव ईश्वर से करता हूँ।

इसके अतिरिक्त विभिन्न विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों के विविध नगरों के निजी एवं राजकीय पुस्तकालयों के पुस्तकालयाध्यक्षों और कर्मचारियों के सहयोग को भी आभार, जिन्होंने अपने व्यस्ततम समय के बीच भी मुझे पुस्तकीय सहायता प्रदान की। स्थानाभाव के कारण उन समस्त लोगों को नामांकित कर पाना दुष्कर है किन्तु मैं हमेशा उन लोगों के प्रति कृतज्ञ रहूँगा जिन्होंने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मुझे शोध कार्य के दौरान सहायता प्रदान की।

मैं आभारी रहूँगा श्री अंजनी कुमार का एवं डॉ० हर्षेन्द्र सिंह सेंगर का जिन्होंने अपनी अनथक मेहनत के द्वारा अत्यन्त अल्प समय में मेरी हस्तलिखित प्रति को स्वच्छ, आकर्षक पुस्तकीय स्वरूप प्रदान किया।

मेरे इस प्रयास से भविष्य में शोधार्थियों, विद्यार्थियों को किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त होती है तो मैं स्वयं को कृतकृत्य समझूँगा। मेरी आकांक्षा है कि मेरा यह प्रयास सफल सिद्ध हो।

दिनांक —

स्थान —

रघुराज सिंह यादव
रघुराज सिंह यादव
एम.ए. (हिन्दी साहित्य)

अनुक्रमणिका

तृतीय अध्याय - मानवीय सौन्दर्य /६८-१२८

चतुर्थ अध्याय - प्रकृति सौन्दर्य /१२९-१६४

पंचम अध्याय - वस्तुगत सौन्दर्य /१६५-१९६

प्रथम अध्याय

सौन्दर्य का तात्त्विक विवेचन

(क) सौन्दर्य का तात्पर्य

(ख) सौन्दर्य विवेचन की परम्परा

(ग) सौन्दर्य का आधार

(घ) साहित्य में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति

(च) मानवीय सौन्दर्य

(छ) बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य

सौन्दर्य का तात्विक विवेचन

'सौन्दर्य' नामक अभिधान का जो अर्थ निकाला जाता है, उसके अनुसार सौन्दर्य की सज्जा जीवन, साहित्य, मनोजगत् एवं वस्तु आदि सभी में परिलक्षित होती है। सौन्दर्य के प्रति मानव चिरकाल से आकृष्ट होता रहा है। यही सौन्दर्य उसकी आत्मा में अपने प्रकाश को फैलाता रहता है। सौन्दर्य शब्द व्यक्ति के जीवन से इतना हिल—मिल गया है कि मन को अच्छी अथवा भली लगने वाली वस्तु को 'सुन्दर' शब्द से परिभाषित कर दिया जाता है। वह वस्तु चाहे प्राकृतिक सुषमा हो, कलाकृति हो, निर्जीव हो अथवा सजीव, उसके रूप लावण्य से अभिभूत व्यक्ति आह्लादित हो बैठता है। इसीलिए कहा गया है कि 'जिस गुण के कारण सजीव, निर्जीव वस्तुओं के प्रति आकर्षण और सम्मोहन होता है तथा क्लान्त प्राणी को सुख की अनुभूति होती है, उसे सुन्दर कहा जाता है।'[१]

'सुन्दर' की अनुभूति मुख्यतः दृश्य और श्रवण द्वारा होती है। सुन्दर वस्तु का नेत्रों द्वारा, कविता और राग की मधुरता का कानों द्वारा आभास होता है कि वह सुन्दर है अथवा नहीं। यदि वह मानव की इन्द्रिय संवेदनाओं को सुन्दर लगती है तो व्यक्ति के मन में उसके प्रति आकर्षण पैदा होता है; उसके प्रति सम्मोहित होता है और सुखद अनुभूति प्राप्त करता है। व्यक्ति चाहे वह कलाकार हो अथवा साहित्यकार सभी सौन्दर्य की खोज में लगे रहते हैं। सौन्दर्य की प्रेरणा समस्त प्रेरणाओं से सर्वोपरि है। यही कारण है कि प्रत्येक कलाकार, साहित्यकार सौन्दर्य का आराधक, स्रष्टा और द्रष्टा होता है। साहित्य हो अथवा कला का क्षेत्र सभी में सौन्दर्य का महत्व अधिक रहा है। विश्व साहित्य भी सौन्दर्य चित्रण से परिपूर्ण है।

सौन्दर्य की परम्परा आधुनिक नहीं है। प्राचीन काल में ऋग्वेद से लेकर वाल्मीकि द्वारा प्रवाहित की गई सौन्दर्य की धारा का विकासमान प्रवाह भक्त

कवियों, रीति कवियों, छायावादी कवियों और आधुनिक कवियों द्वारा किया जाता रहा है। काव्य ही नहीं गद्य साहित्य में भी सौन्दर्य का परिपाक विशद् रूप में हुआ है। उपन्यास, नाटक, कहानियों आदि में चरित्र चित्रण के लिए, प्राकृतिक सुषमा के वर्णन के लिए सौन्दर्य का निरूपण किया गया है।

रवीन्द्रनाथ, शरत चन्द्र, वृन्दावनलाल वर्मा, माणिक लाल मुंशी, इलाचन्द्र जोशी, जयशंकर प्रसाद आदि साहित्यकारों ने गद्य विधा में भी सौन्दर्य का अनुपम चित्रण किया है। भारतीय साहित्य ही नहीं वरन् पाश्चात्य साहित्य भी सौन्दर्य वर्णन में पीछे नहीं रहा है। कहा तो यहाँ तक जाता है कि 'सौन्दर्य तत्त्व पाश्चात्य जगत में दर्शन शास्त्र का एक प्रमुख विषय रहा है। इसे यूनानी दार्शनिकों ने पुरातन काल से ही अपने चिन्तन का विषय बनाया था। इस विषय को अन्य विषयों की भाँति स्वतन्त्र विषय बनाने का श्रेय १८वीं सदी के जर्मन दार्शनिक बामगार्टन को है।'[२] इसके अतिरिक्त पश्चिमी साहित्य में स्पेंसर, शैली, शेक्सपियर कीट्स आदि कवियों ने प्रमुख रूप से सौन्दर्य वर्णन में रुचि ली है।

'सौन्दर्य' शब्द अपने आप में जितना सहज और सरल प्रतीत होता है उसको परिभाषित करना उतना ही दुष्कर प्रतीत होता है। भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य के सौन्दर्य द्वारा समृद्ध होने के बाद भी आसानी से सौन्दर्य की परिभाषा दे पाना सम्भव नहीं हो सका है। सौन्दर्य क्या है? सौन्दर्य और कला का क्या सम्बन्ध है? सौन्दर्य—बोध की प्रक्रिया क्या है? सुन्दर और असुन्दर का भेद क्या है? भागवत सौन्दर्य, विचारगत सौन्दर्य, रूपगत सौन्दर्य की अवधारणा क्या है? आदि—आदि ऐसे सवाल हैं जो 'सौन्दर्य' शब्द की तरह सरल नहीं वरन् उनको परिभाषित करने के समान कठिन हैं।

सौन्दर्य क्या है? वह बाह्य पदार्थों का गुण धर्म मात्र है अथवा एक निरुपाधिक मानसिक भावना अथवा उन दोनों का एक मिश्रित परिणाम इस बात को

जानना आवश्यक है। मात्र यह कह देना कि 'वह वस्तु का एक गुण विशेष है जो मन को खींचता है और मुग्ध करता है और जिसमें यह चित्ताकर्षकता एवं मनोमुग्धकारिता है, वही सुन्दर है'[३] सौन्दर्य को परिभाषित नहीं करता है।

(क) सौन्दर्य का तात्पर्य

सौन्दर्योपासना मानव मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है। अनादि काल से आज तक उसकी उपासना अनवरत गति से चली आ रही है। मनुष्य ने संस्कृतियों, सभ्यताओं, विचारधाराओं के उदय और अस्त को देखा और महसूस किया किन्तु उसकी सौन्दर्योपासना में कोई भी व्यवधान नहीं आया। हाँ, उसके रूपों में कदाचित् परिवर्तन अवश्य ही दृष्टिगोचर होते रहे हैं। अनवरत सौन्दर्योपासना के कारण मानव के प्रत्येक कार्यों, व्यवहारों में चाहे वे आन्तरिक हों अथवा बाह्य, सौन्दर्य की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। सौन्दर्य किसी गुण विशेष अथवा वस्तु विशेष के रूप में परिभाषित करने योग्य नहीं है वास्तव में सौन्दर्य एक विशिष्ट बोध है, जिसके पीछे ज्ञान, आनन्द और क्रियात्मक वृत्ति आदि का सामंजस्य होता है।

सौन्दर्य का तात्पर्य उस अनुभूति से है जो कि मन को आह्लादित कर दे। 'सौन्दर्य शब्द की सर्वाधिक उपयुक्त एवं समीचीन व्यत्पत्ति वाचस्पत्य कोष की प्रतीत होती है। इसमे इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है— सु उपसर्ग — उन्द धातु, अरन् प्रत्यय। सु का अर्थ है सुष्ठु अथवा भली भाँति, उन्द का अर्थ है आर्द्र करना, अरन् कर्तृ वाच्य प्रत्यय है; इस प्रकार सुन्दर का अर्थ है भली भाँति आर्द्र करने वाला।'[४]

इसके अतिरिक्त 'सौन्दर्य शब्द की एक और व्युत्पत्ति हो सकती है — 'सुन्दराति इति सुन्दरम् तस्य भाव सौन्दर्यम्।' सुंद को जो लाता है वह सुन्दर और उसका भाव जहाँ हो वह सौन्दर्य कहलाता है।'[५]

इसी प्रकार 'गुण वचन ब्रह्मणादिभ्य: ष्यज' इस पाणिनि सूत्र से 'ष्जय्' प्रत्यायो— परंत सौन्दर्य शब्द व्युत्पन्न हुआ है। 'सुन्द' का अर्थ है 'कर्तनी' अर्थात् जो

कैंची की तरह कतरने वाला हो, उसको जो लाता हो वह सुन्दर हुआ। सौन्दर्य हृदय पर, नेत्र के द्वारा कैंची सा काटने वाला प्रभाव करता ही है यह कौन नहीं जानता है।'[६]

'अंग्रेजी में सौन्दर्य शब्द का वाचक शब्द है 'ब्यूटी'। ब्यूटी की एक व्युत्पत्ति इस प्रकार है 'ब्यू+टी', बो का अर्थ प्रिय अथवा रसिक शृंगारी पुरुष तथा 'टी' भाववाचक प्रत्यय है। अत: ब्यूटी का अर्थ रसिक का भाव या रसिकता अथवा शृगांरी पुरुष का गुण हुआ।'[७] इसी प्रकार ब्यूटी का कोषगत अर्थ है 'वह गुण या गुणों का संश्लेष जो इन्द्रियों को तीव्र आनन्द प्राप्त करता है, प्रधानत: चायुष आनन्द अथवा जो बौद्धिक या नैतिक शक्तियों को मोहित करता है।'[८]

शाब्दिक और कोषगत् अर्थ के अतिरिक्त 'ब्यूटी' शब्द का सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टि से भी विश्लेषण किया गया है। सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन के अनुसार ब्यूटी शब्द का अर्थ कुछ इस तरह दिया गया है — 'ऐन्द्रिय क्रम में तथा विस्तृत रूप में आध्यात्मिक क्रम में पूर्णता जो स्वयं अपने लिए आनन्द या परिशंसा प्रोत्तेजित करती है, वह गुण या दोषों का संश्लेष जो अपने आप में पूर्ण हो और जो त्वरित तथा निसंग आनन्द उत्पन्न करता हो। अत: वह (सौन्दर्य) जो सुन्दर है उसका गुण है, प्रत्यय है या आदर्श है, कलाकृतियों के लिए विशेषत: प्रयुक्त होता है।'[९]

वस्तुत: सौन्दर्य शब्द की अनुभूति जितनी सहज, सरल एवं आनन्ददायिनी है उसको परिभाषित करना उतनी ही जटिल समस्या है। सौन्दर्य के लालित्य में मन को पर्याप्त प्रसन्नता होती है। जीवन को क्रमबद्ध और व्यवस्थित करना सौन्दर्य का ही कार्य होता है। सौन्दर्य की चेतना जीवन में नवस्फूर्ति का संचरण करती है। मन का सौन्दर्य तन को भी प्रभावित करता है। सौन्द्रर्य की इतनी तीव्र अनुभूति के बाद भी सौन्दर्य की परिभाषा को आसानी से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। अलग—अलग भाषा के विद्वानों नें, विचारकों ने अपने अनुभव विश्लेषण और अनुभूति के आधार पर ही सौन्दर्य शब्द को परिभाषित किया है।

अंग्रेजी और हिन्दी भाषी विद्वानों के अतिरिक्त संस्कृत भाषा के विद्वानों ने सुखद विभागों के सम्पर्क में आकर अपने मन में जिस अनुभूति को पाया उसके लिए उन्होंने 'सुम', 'उम' और 'तुम' नाम दिया, परन्तु संस्कृत में उक्त आनन्दानुभूति के लिए 'सुम' शब्द का प्रयोग अधिक व्यापक रहा, जिसके फलस्वरूप जिस वस्तु के साथ इन्द्रिय सन्नितार्थ होने पर उक्त 'सुम' नामक आनन्दानुभूति होती थी उसको सुन्दर कहा जाता था।"[१०]

सौन्दर्य के विशिष्ट बोधात्मक वृक्ति होने के कारण इसको सर्वमान्य रूप से परिभाषित करना सम्भव भी नहीं होता है। इस सौन्दर्य का आनन्द स्वतन्त्र कोटि का होता है। सौन्दर्य की अनुभूति आंतरिक अथवा बाह्य कारणों से है अथवा दोनों के मेल से, यह कहना भी कठिन होता है। यह तो सर्वमान्य मत है कि सुन्दरता में, सौन्दर्य के आकर्षण, सम्मोहन और सुख की अनुभूति होती है परन्तु न तो सभी समय, सभी वस्तुओं में और न सभी समय एक ही वस्तु में सौन्दर्य की अनुभूति होती है। सौन्दर्य में आकर्षण होते हुए भी रुचि भेदादि के कारण 'मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्ना:' के अनुसार सौन्दर्य को अलग–अलग विद्वानों ने अलग–अलग तरह से परिभाषित किया है।

'गेटे के अनुसार – "सौन्दर्य वह आदिम विषय है जो स्वयं कभी प्रकट नहीं होता है परन्तु जिसका प्रतिबिम्ब सृजनशील मन की सहस्रों विविध उक्तियों में उद्भाषित होता रहता है और जो जितना वैविध्यपूर्ण है जितनी स्वयं प्रकृति।"[११] जबकि काण्ट ने अपनी परिभाषा में सौन्दर्य का निरूपण कुछ इस तरह किया है – "वही वस्तु सुन्दर कही जाती है जो बिना किसी प्रयोजन के प्रसन्नता प्रदान करे। (That is Beauty which pleases without interest)"[१२] कुछ इसी तरह के भावार्थ की बात रवीन्द्र जी ने की थी। वे भी सौन्दर्य के पीछे स्वार्थ की भावना को निषेध मानते हैं। उनके अनुसार – "जल में तैरने वाली मछली के सौन्दर्य का साक्षात्कार उसको

पकड़ने वाला मछुआरा नहीं कर सकता है। स्वार्थ में लिप्त निजत्व की भावना रखने वाला व्यक्ति सच्चे सौन्दर्य का आत्म साक्षात्कार नहीं कर सकता।''[१३]

वस्तुत: सौन्दर्य का आधार इतना व्यापक है कि उसके समस्त तत्वों एवं स्वरूप की और स्पष्ट संकेत करने वाली परिभाषा की कल्पना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य ही है। प्रत्येक व्यक्ति की सौन्दर्य दृष्टि भिन्न—भिन्न होती है। किसी को पर्वतों की ऊँचाई भाती है तो कोई सागर की गहराई में सौन्दर्य खोजता है। किसी को बादलों का गर्जन भाता है तो कोई नदियों की कल—कल निहारता है। किसी के लिए कोयल की पिक—पिक में सौन्दर्य छलकता है तो किसी को सिंह गर्जन में सौन्दर्य का आभास होता है।

प्रकृति के जितने रूप, सौन्दर्य के उतने ही स्वरूप। नाचते मोर, गाती कोयल, गुनगुनाते भँवरे, मँडराती तितलियाँ, सुगन्ध बिखेरते फूल, काँटेदार कैक्टस, घने जंगल, हरे—भरे खेत, रिमझिम बारिश, सतरंगी इन्द्रधनुष, सूर्य रश्मियाँ, धवल चाँदनी, टिमटिमाते तारे, चमकते जुगनू ..... कितना—कितना है जिसमें सौन्दर्य को सहेजा, समेटा जा सकता है। सौन्दर्य की निश्चित परिभाषा की कठिनाई के बारे में डॉ० हरद्वारी लाल शर्मा कहते हैं —''हमारे मत में सुन्दर परिभाषा की सीमा से इसलिए बाहर है कि वह हमारी सरलतम और निकटतम अनुभूति है।''[१४]

सौन्दर्य की अनुभूति की जा सकती है उसे शब्दों में बाँधना सम्भव नहीं होता है। शास्त्रीय विवेचन द्वारा भी अनुभूति दूसरे को नहीं कराई जा सकती है। कहा जा सकता है कि सौन्दर्य वस्तु में होता हैं। सौन्दर्य का बोध साधारण व्यावहारिक दृष्टि से नहीं हो सकता है। इसके लिए निर्विकार, विकसित सौन्दर्य चेतना चाहिए। सौन्दर्य का भावन सदा आनन्ददायक होता है।

कतिपय सौन्दर्यशास्त्रियों ने 'सुन्दर' शब्द को एक भ्रामक शब्द के रूप में प्रयोग किया हैं। इसका प्रयोग दार्शनिक एवं सौन्दर्यशास्त्री दो अर्थों में करते आये

हैं; कभी वस्तु के लिए, कभी विशेषण के लिए। वास्तव में सौन्दर्य रागात्मक अनुभूति की प्रतीति का बोध कराने वाली संज्ञा है। यह किसी न किसी वस्तु स्थिति में निहित रहता है। इसके भावन के लिए कोई न कोई द्रष्टा, सहृदय प्रेक्षक अवश्य चाहिए होता है। कहा जा सकता है कि ''सौन्दर्य जिज्ञासा तृप्ति का विषय नहीं है, यह आनन्द प्रधान अनुभूति है जिसका स्रोत इन्द्रिय संवेदनाएँ हैं।''[१५]

चिरकाल से सौन्दर्य को परिभाषित करने का प्रयास विद्वानों द्वारा किया जाता रहा है। भारतीय विचारक हों अथवा पाश्चात्य सभी ने अपनी—अपनी दृष्टि में सौन्दर्य को परिभाषित किया है। सौन्दर्य एक रागात्मक अनुभूति है, अतः इसकी परिभाषा गणित के अनुरूप नहीं की जा सकती है। यह मनुष्य की मूल और सरलतम अनुभूति है, जिसे शब्दों में प्रकट करना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि सौन्दर्य विषयक मान्यताओं, परिभाषाओं में हमेशा मतभेद रहा है। भारतीय विचारकों और पाश्चात्य विचारकों ने अपनी—अपनी मान्यताओं और संस्कृतियों के अनुसार सौन्दर्य को परिभाषित किया है।

(ख) सौन्दर्य विवेचन की परम्परा

मनुष्य आरम्भ से ही सौन्दर्योपासक प्राणी रहा है। सौन्दर्य के अन्वेषण में वह हमेशा लगा रहा है। सौन्दर्य के विभिन्न रूपों से वह आत्मसात करता हुआ उनका विवेचन करता रहा है। सौन्दर्यानुभूति जीवन की विशिष्ट अनुभूति होती है। इसका प्रभाव अमिट और उन्मादकारी होता है। सौन्दर्य की भावना से हमारी वृत्तियों और चेतना का विकास होता है। सौन्दर्य बोध की प्रक्रिया में द्रष्टा, दृश्य, दृष्टि और दर्शन तत्त्वों का योगदान होता है। सौन्दर्य स्वयं सुन्दर होता है और दूसरे को भी सुन्दर बना देता है।

सौन्दर्य शब्द की व्यापकता के कारण ही विभिन्न विद्वानों ने इसे अलग—अलग ढंग से परिभाषित किया है। सौन्दर्य के मानव से अधिक निकट सम्बन्ध

होने तथा समय और देशकाल के अनुसार सौन्दर्य विषयक मान्यताओं में अन्तर होने के कारण भी विभिन्न विद्वानों की सौन्दर्य सम्बन्धी व्युत्पत्तियों में मतैक्य का अभाव रहा है।

सौन्दर्य विषयक परिभाषा में कठिनाई के बाद भी भारतीय और पाश्चात्य विचारकों ने सौन्दर्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। इस कारण भारतीय और पाश्चात्य विचारकों के सौन्दर्य सम्बन्धी दृष्टिकोण का संक्षिप्त दिग्दर्शन आवश्यक है।

१. भारतीय दृष्टिकोण

भारतीय परिप्रेक्ष्य में विचार करें तो सौन्दर्य की विवेंचना का प्रयास प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद के समय से ही हो रहा है। 'ऋग्वेद में ही सौन्दर्य के लिए अनेक शब्दों वपु: श्री, चारु, प्रिय, कल्याण, शुभ, स्वाद तथा दृश्य आदि को सौन्दर्य पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त किया गया है।'[१६]

अलंकार शास्त्रियों में सौन्दर्य शब्द की व्याख्या चारुत्व शब्द के द्वारा की गई है। वे अलंकार को चारुत्व—हेतु कहते हैं। 'वामन ने सौन्दर्यमलंकार: कहकर चारुत्व, सौन्दर्य एवं अलंकार तीनों की एक ही स्थिति मान ली है।'[१७]

कालिदास ने भी अपने साहित्य में सौन्दर्य को परिभाषित करते हुए कहा है ''सच्चा सौन्दर्य वह है जो पापवृत्ति की ओर अग्रसर न होकर सात्विकता की प्रेरणा देता है।''[१८] कालिदास के अनुसार सौन्दर्य नैसर्गिकता अथवा स्वाभाविकता में होता है, उसे अलंकरण अथवा मण्डन की आवश्यकता नहीं होती है। कालिदास ने सौन्दर्य में पवित्रता को विशेष महत्त्व दिया है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा भी है कि सौन्दर्य कभी भी विकार का कारण नहीं होता है। सौन्दर्य नैसर्गिक एवं दैवीय गुणों से युक्त होता है। अभिज्ञान शाकुन्तलम में एक स्थान पर सौन्दर्य को परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा है कि रम्य दृश्य का, मधुर शब्द का श्रवण कर सुखी मनुष्य

भी उत्कंठित होता है क्योंकि निश्चय ही वह जन्म जन्मान्तर के सौहार्द्र को अनजाने में स्मरण करता है, अन्तर के किसी न किसी आदर्श की पूर्ति सौन्दर्य द्वारा ही सम्भव है —

> ''रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्।
> पर्युत्सुकी भवति यत् सुखिनोऽद्रपि जन्तुः।।
> तव्चेतंसा स्मरति नूनम् अबोध पूर्वः।
> भावस्थिरानि जन्मान्तर सौहदानि।।'' — अभिज्ञान शाकुन्लम

माघ ने क्षण—क्षण में नवीनता धारण करने वाले रूप को ही सौन्दर्य की संज्ञा दी है, ''क्षणे—क्षणे यन्नवतां उपैति सदैव रूपं रमणीयतायाः।'' संस्कृत साहित्याचार्यो एवं कवियों के अतिरिक्त हिन्दी के विचारकों एवं कवियों ने भी सौन्दर्य को परिभाषित किया है।

भारतीय सौन्दर्य दृष्टि व्यंजना प्रधान रही है। वह वस्तु या रूप को ही सब कुछ नहीं मानती है। रूप अथवा वस्तु तो सौन्दर्य के वाहक मात्र कहलाये गये हैं। इसीलिए भारतीय सौन्दर्य बोध प्रतीकों पर आधारित है।

'श्री अरविन्द के अनुसार एक महती कला वस्तुओं के बौद्धिक सत्य का प्रतिनिधित्व करते ही सन्तुष्ट नहीं होती वह एक ऐसे गहनतर तथा मौलिक सत्य की खोज करती है जो केवल इन्द्रियों अथवा बुद्धि की दृष्टि से छूट जाता है, वह उनके अन्तर की आत्मा होता है, वह एक ऐसा अदृश्य सत्य होता है जो उनके बाह्य रूप तथा प्रक्रिया की नहीं वरन् आत्मा की वस्तु होता है।'[११]

सामान्यतः जिस वस्तु के देखने से हमें आनन्द होता है उसे हम सुन्दर, भली, अच्छी, आकर्षक कहते हैं। प्रेमचंद ने सौन्दर्य के प्रति कसी प्रकार की शंका व्यक्त न करके प्रकृति को सौन्दर्यमयी बताया है। वे कहते हैं —''हमने सूरज का उगना और डूबना देखा है। ऊषा और संध्या की लालिमा देखी है। सुन्दर, सुगन्ध भरे फूल

देखे हैं, मीठी बोली बोली बोलने वाली चिड़ियाँ देखीं हैं कल—कल निनादिनी नदियाँ देखी हैं, नाचते हुए झरने देखे हैं — यही सौन्दर्य है।''[२०]

प्रकृति के चितेरे कहे जाने वाले सुमित्रानन्दन पन्त भी प्रकृति के द्वारा ही सौन्दर्य को परिभाषित करते हैं। उनकी सौन्दर्यपरक परिभाषा व्यापक विस्तार लिए हुए है। वे कहते हैं —

''वही प्रज्ञा का सत्य—स्वरूप हृदय में बनता प्रणय अपार,
लोचनों में लावण्य अनूप लोक सेवा में शिव अविकार,
स्वरों में ध्वनित मधुर, सुकुमार सत्य ही प्रेमोद्‌गार,
दिव्य सौन्दर्य स्नेह—साकार भावनामय संसार।''[२१]

सौन्दर्य की अनुभूति की उज्ज्वलता मानव को अभिभूत करती है। प्राकृतिक अथवा नारी सौन्दर्य की जो अनुभूति होती है वह वास्तविक सौन्दर्यानुभूति नहीं होती है। सौन्दर्य की उज्ज्वल चेतना बताते हुए जयशंकर प्रसाद ने कहा है —

''उज्ज्वल वरदान चेतना का,
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं।''[२२]

उज्ज्वल चेतनामय सौन्दर्य का अपना एक विशिष्ट अर्थ होता है। यही चेतना हमारे अन्तर को प्रभावित करती हैं। जिस वस्तु की चेतना हमारे अन्तर को जितना अधिक प्रभावित करती है वह वस्तु हमें उतनी ही सुन्दर प्रतीत होती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सौन्दर्य को भावना के तदाकार करने की शक्ति पर आधारित बताते हुए कहा है — ''कुछ रूप रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में परिणत हो जाते हैं। हमारी अन्त:सत्ता की यही तदाकार परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है। जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान से या भावना से कदाचार परिणति जितनी ही अधिक

होगी उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर कही जायेगी।"[२३]

वस्तुओं के गुण, रूप, उसकी अनुभूति से उत्पन्न आनन्द ही मानव के हृदय को रोमांचित करता है। वस्तुओं के गुण और मानस चेतना दोनों को सौन्दर्य निर्धारण के उपकरण स्वीकार करते हुए डॉ० हरद्वारी लाल शर्मा लिखते हैं — "अपनी अनुभूति, स्मृति, कल्पना आदि द्वारा आनन्द को उत्पन्न करने वाले वस्तु के गुण को सौन्दर्य और वस्तु को सुन्दर कहते हैं।"[२४]

विश्व कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर सौन्दर्य की स्थिति सत्य तथा मंगल के सामंजस्य में मानते हैं। उनके अनुसार सौन्दर्य, सत्य, मंगल और आनन्द में कोई भेद नहीं है। उनके लिए सौन्दर्य नित्य वस्तु है। रवीन्द्र जी की दृष्टि में 'आनन्द रूपममृतं यद्विभाति' सूत्र सदा घूमता रहता है। उनकी सौन्दर्य व्याख्या आनन्द, अमृत रूप और प्रकाश पर आधारित है। उनके लिए सत्य, सुन्दर और मंगल वह आनन्द है जो अमृत रूप में प्रतीत हो रहा है। उनके लिए Truth is Beauty and Beauty is truth में कोई अन्तर नहीं है। उनके अनुसार 'बहिर्जगत और जीवन के साथ आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा से सौन्दर्य का जन्म होता है।'[२५] इस प्रकार रवीन्द्रनाथ ने आत्मीयता के अतिरिक्त सामंजस्य के आधार पर भी सौन्दर्य की व्याख्या की है।

डॉ० रामविलास शर्मा आनन्द तत्त्व को महत्त्व देते हैं। वे वस्तु के आनन्द प्रदान करने वाले गुण को सौन्दर्य मानते हुए लिखते हैं —"प्रकृति, मानव जीवन तथा ललित कलाओं के आनन्ददायक गुण का नाम सौन्दर्य है।"[२६]

इसी आनन्ददायक गुण को कहाकवि बिहारी ने नवीनता में सौन्दर्य की उपस्थिति का कारण माना है। आनन्द को बहुत से विद्वान सौन्दर्य का कारण मानते हैं। जबकि बिहारी आनन्द के अतिरिक्त नवीनता को सौन्दर्य के लिए आवश्यक मानते हैं। बिहारी की नायिका भी पल—प्रतिपल इसी नवीनता को धारण कर अपने

सौन्दर्य में वृद्धि करती है। उसके विशिष्ट सौन्दर्य को बिहारी कुछ इस तरह दर्शाते हैं —

"लिखन बैठी जाकी छबी गहि—गहि गरव गरूर।

भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।।"

सौन्दर्य को प्रत्येक विद्वान, कवि, साहित्यकार ने अपनी सौन्दर्य दृष्टि द्वारा परख कर विवेचित किया है। किसी की दृष्टि में सौन्दर्य नवीनतापरक है तो किसी की दृष्टि में आनन्ददायक, कोई इसे मानव चेतना और वस्तु के गुण में सामंजस्य से उत्पन्न मानता है तो कोई प्रकृति में सौन्दर्य की सत्ता परिभाषित करता है। हंसकुमार तिवारी सौन्दर्य को विशिष्ट बोध मानते हुए कहते हैं —"वास्तव में सौन्दर्य का एक विशेष बोध है जिसके पीछे ज्ञान, आनन्द, क्रियात्मक वृत्ति आदि का सामंजस्य है। इसलिए इसका कोई सर्वमान्य लक्षण देना संभव भी नहीं है। इस सौन्दर्य का आनन्द भी एक स्वतन्त्र कोटि का है जो कि अनुभववेद्य है। न तो वह प्रत्यक्ष अनुमित हो सकता है न प्रमाणित। लेकिन सौन्दर्य की उपलब्धि होती है।"[२७]

२. पाश्चात्य दृष्टिकोण

पश्चिम में सौन्दर्य शास्त्र विद्वानों का अत्यन्त प्रिय विषय रहा है। वहाँ इस विषय की विशद् विवेचना की गई है। वहाँ इस विषय को स्वतन्त्र विषय बनाने का श्रेय १८वीं सदी के जर्मन दार्शनिक बामगार्टन को है। जिन्होंने इस विषय पर एक विशाल ग्रन्थ की रचना लेटिन भाषा में की थी जिसका अन्य भाषाओं में रूपान्तरण होकर प्रकाशन नहीं हो सका।'[२८] पाश्चात्य विचारकों ने सौन्दर्य पर अनेक दृष्टियों से विचार किया है। कुछ विचारकों ने सौन्दर्य को वस्तु के बाह्य आकार में निहित माना है तो कतिपय विचारकों की दृष्टि में सौन्दर्य के आन्तरिक स्वरूप का महत्त्व है। इसी कारण से पाश्चात्य विचारकों में अनेक वर्ग बन गये हैं। एक ओर चेर्नीशेबस्की जैसे वस्तुनिष्ठ विचारक ने सौन्दर्य की परिभाषा इस प्रकार दी है — "Beauty is Life" तो

दूसरी ओर शेफ्ट्सवरी जैसे आत्मनिष्ठ चिन्तक ने कहा है — "Beauty and God are one and the same." इस तरह सौन्दर्य (विचारकों के हाथों में) दो अतिबिन्दुओं के बीच दोलक की तरह झूलता रहा है और कोई भी दो विचारक एक मत पर नहीं पहुँच सके हैं।[२९] फलत: सौन्दर्य की अनेक परिभाषाएँ हैं।

अस्तु कुछ परिभाषाएँ अवलोकनीय हैं — प्लेटो ने सौन्दर्य को शिवत्व से निष्पन्न मंगल विधायक माना है। उन्होंने कहा है — ''सुन्दर शिव और सत्य एक हैं। सुन्दर 'परम' है और पूर्ण है तथा सुन्दर के लिए नैतिक होना आवश्यक है।''[३०]

प्लेटो के समान प्लॉटिनस का भी विचार परम शक्ति में शिवतत्त्व की उपस्थिति का है। उनके अनुसार ईश्वर के शिवरूप में ही सौन्दर्य है। ''ऊँची धारणा और तर्क का सम्मिश्रण सौन्दर्य है। पुन: ऊँची धारणा और तर्क के सम्मिश्रण को सौन्दर्य ही रूप—विधान प्रदान करता है अर्थात् सौन्दर्य पूर्णत: भागवत है, अल्पाँश में भी वस्तुगत नहीं। इसलिए सौन्दर्य एक रहस्यात्मक सहजानुभूति है।''[३१]

काण्ट ने 'ट्रान्सेण्डेण्टल एस्थेटिस' की उद्भावना की है। वे नैतिकता को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इसके अनुसार —''सौन्दर्य चिन्तनशील धारणा का आनन्द है। इसका अस्तित्व वस्तुनिष्ठ नहीं है किन्तु इसका उद्देश्य नैतिक शिवत्व का स्थापन है।''[३२]

रस्किन ने सौन्दर्य को ईश्वरीय विभूति बताया है। उन्होंने मनुष्य में दो वृत्तियाँ मानीं हैं— सहज वृत्ति और काल्पनिक वृत्ति। सहज वृत्ति के अन्दर ही सौन्दर्यबोध आता है। इन्होंने सौन्दर्य की दो श्रेणियाँ मानी हैं — 'टिपिकल' और 'वायटल'। इन्होंने फिर 'वायटल' ब्यूटी के भी दो भेद माने हैं — 'रिलेटिव' और 'जेनेरिक'।[३३]

'अरस्तु मंगल को सुन्दर मानते हैं जो मांगलिक होने के कारण आनन्ददायक भी है।'[३४]

हीगेल के अनुसार — ''आइडियल की अभिव्यक्ति का प्रयास सौन्दर्य

सृजन है और इसका माध्यम अथवा अनुकरण ही सुन्दर है।''[३५]

बेलिन्स्की के अनुसार सौन्दर्य प्रगतिशील होने की प्रेरणा देता है। उनकी निगाह में सौन्दर्य मात्र आनन्द युक्त ही नहीं उपयोगी भी है। वे कहते हैं —''सौन्दर्य सामाजिक जीवन में जीवन यथार्थ का ऐसा प्रतिबिम्ब है, जो हमें आनन्द ही नहीं देता प्रगतिशील होने की प्रेरणा भी देता है।''[३६]

पाश्चात्य विचारकों में ही गेल और क्रोचे का विशेष महत्व है। इन दोनों विचारकों ने पाश्चात्य सौन्दर्य चिन्तन के तात्त्विक पक्ष को प्रभावित किया है। इन दोनों की मान्यताओं से पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्र का आधुनिक स्वरूप प्रभावित हुआ है। हीगेल का सौन्दर्य दर्शन प्रत्यय जगत पर निर्भर है। उसके अनुसार दृश्यमान जगत् आभास मात्र है।

क्रोचे ने अभिव्यंजनावाद के माध्यम से पाश्चात्य सौन्दर्य को विकास का एक नया आस्पद प्रदान किया है। क्रोचे ने उत्कृष्ट सौन्दर्य विधान को साधारण सहज ज्ञान न मानकर 'एन इण्ट्यूशन ऑव एन इण्ट्यूशन' कहा है। इसी तरह क्रोचे ने उत्कृष्ट सौन्दर्य—विधान का सम्बन्ध सहज ज्ञान के उस पक्ष से किया है जिसमें प्रभाव और संवेदन संचित रहते हैं। अत: उत्कृष्ट सौन्दर्य विधान अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति न होकर प्रभावों की अभिव्यक्ति हुआ करता है।''[३७]

इस प्रकार पाश्चात्य विचारकों ने अपने—अपने दृष्टिकोण से सौन्दर्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। कोई सौन्दर्य के आन्तरिक गुण से प्रभावित है तो कोई उसके नैतिक पक्ष से, कोई उसके बाह्य रूप को परिभाषित कर रहा है कोई उसमें शिव रूप की व्याख्या कर रहा है। अत: रुचि वैभिन्न एवं सौन्दर्य की विलक्षणता के कारण उसकी परिभाषाओं में पूर्णतया का प्राय: अभाव सा ही परिलक्षित होता है।

(ग) सौन्दर्य का आधार

सौन्दर्य शास्त्र के इतिहास में अब तक सौन्दर्य की पर्याप्त व्याख्या हो चुकी है। लेकिन कोई भी व्याख्या सार्वजनीन या सदा के लिए स्वीकार्य नहीं कही जा सकती है। लगभग सभी विद्वानों में इस मामले में मतैक्य नहीं हो सकता है, हाँ अधिकतर विद्वान इस बात से सहमत अवश्य हैं कि 'सौन्दर्य एक सहृदय अनुभूति है।'[३८] सौन्दर्य लालसा मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है। इसलिए कहा जाता है कि सौन्दर्य का शास्त्रीय विश्लेषण हमें सौन्दर्य की अनुभूति नहीं करा सकता है। इसके लिए हमें देखना होगा कि अपने आस–पास की वस्तुओं के प्रति हम कितने सजग हैं। क्या वे हमारे सौन्दर्य बोध को बढ़ाती हैं या हमारी सौन्दर्याभिरुचि को सन्तुष्ट कर सकती हैं। इस पर आगे विवाद होता है कि एक वस्तु किसी के लिए आनन्ददायक है तो किसी अन्य के लिए वही वस्तु रुचिकर नहीं है। क्या इस प्रकार रुचि का कोई सामान्य मानदण्ड स्थिर किया जा सकता है?

डॉ० आनन्द कुमार स्वामी ने इस रुचि वैचित्र्य पर विस्तार से विचार करते हुए कहा —"रुचि पर आधारित सुन्दर का निर्णय पूर्वाग्रहों से युक्त होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही रुचि को मान्यता देता है। सौन्दर्य निर्णय में वही उसका सर्वोच्च निष्कर्ष है। जब मजनूं से लोगों ने कहा कि संसार तुम्हारी लैला को बदसूरत मानता है तो उसने उत्तर दिया कि लैला की सुन्दरता देखने के लिए मजनूं की आँखें चाहिए।"[३९]

सौन्दर्य की परिभाषाओं के विवाद के बाद रुचि आधारित एक विवाद और सामने आता है वह है सौन्दर्य का वस्तुनिष्ठ अथवा व्यक्तिनिष्ठ होने को लेकर। कुछ विद्वान वस्तु के बाह्य रूपाकार में उसका अस्तित्व मानते हैं, जबकि कुछ उसकी स्थिति मन में मानते हैं। उसकी मानस–सत्ता को स्वीकारने वाले लोगों ने उसके आनन्ददायक गुण का विववेचन किया है।

इस प्रकार सौन्दर्य शास्त्रियों के इस आधार पर वर्ग बन गये हैं — एक वे जो वस्तुवादी अर्थात् दृश्य या वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य को स्वीकारते हैं; जिनके अनुसार सौन्दर्य वस्तु के बाहय रूपाकार में होता है। दूसरे वे जो व्यक्तिवादी अर्थात् द्रष्टा या वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य को महत्त्व देते हैं; इसके लिए सौन्दर्य मन सें ग्रहण करने वाली स्थिति है और आनन्द इसका प्रमुख गुण है। इसके अतिरिक्त तीसरे वर्ग में वे विद्वान आते हैं जो सौन्दर्य को किसी वर्ग विशेष में शामिल न कर उभयनिष्ठ मानते हैं।

वस्तुवादी अथवा दृश्य विचारधारा वाले विद्वानों ने सौन्दर्य को इन्द्रियों को सुख देने वाले गुणों अथवा रूप से समाहित माना है। पंचेन्द्रियों को सुखद लगने वाले उपकरण ही इनके सौन्दर्य के माप हैं। वस्तु की सुडौलता, आकार, रूप, स्पष्टता, वर्णदीप्ति, सुकुमारता, कोमलता, सामंजस्य, अनुपात, माधुर्य एवं उदात्तता आदि गुणों के आधार पर वस्तुवादी विचारक सौन्दर्य का निर्धारण करते हैं।

व्यक्तिवादी अथवा द्रष्टा विचारधारा के विद्वानों ने सौन्दर्य का सूक्ष्म रूप ग्रहण किया है। उनके अनुसार सृष्टि में एक परमसत्ता व्याप्त है। उस परमसत्ता की अनुभूति आनन्द अथवा आह्लाद के रूप में होती है और यह आनन्द अथवा आह्लाद ही सौन्दर्य स्वरूप होता है। इसमें सौन्दर्य को व्यक्तिगत, मानसिक, आध्यात्मिक, आत्मनिष्ठ, विषयीगत माना जाता है। इस वर्ग की मान्यता स्थापित करने वाले विद्वानों का विचार है कि सौन्दर्य की सत्ता सुन्दर वस्तु से पृथक है।

उक्त दोनों वर्गों के अतिरिक्त एक ऐसा वर्ग भी उभर कर सामने आया जो सौन्दर्य की समन्वयवादी अथवा उभयनिष्ठ धारणा पर बल देता है। इसमें दोनों धारणाओं द्रष्ट और दृश्य का समन्वय कर सौन्दर्य का सन्तोषजनक रूप प्रस्तुत किया गया है। इस वर्ग के विद्वानों का कहना है कि 'सौन्दर्य उभयपक्षीय होता है, वहीं कलाकृतियाँ पूर्ण सौन्दर्य सृजन में सफल मानी जाती है जिनमें भौतिक, वस्तुगत सौन्दर्य के साथ—साथ आध्यात्मिकता का आन्तरिक उद्‌बोध हो।'[४०] इस वर्ग के

विद्वानों ने सौन्दर्य को अन्त: एवं बाह्य का समन्वय माना है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने समन्वयवादी विचारधारा का प्रबल समर्थन किया है। उन्होंने सामंजस्य में ही सौन्दर्य स्वीकारा है। 'सुन्दरता सामंजस्य में होती है और सामंजस्य का अर्थ होता है किसी चीज का बहुत अधिक और किसी का बहुत कम न होना। इसमें संयम की बड़ी जरूरत है इसलिए सौन्दर्य—प्रेम में संयम होता है। उच्छृंखलता नहीं।'

यह बात सत्य है कि सामंजस्य से ही सौन्दर्य का बोध होता है। व्यक्ति और वस्तु, दृष्टि और दृश्य के सम्मिलन से सौन्दर्य का आविर्भाव होता है। जोन फ्रीमैन ने कहा भी है —''ओ सौन्दर्य! मेरी आँखों ने ही तुम्हें दीप्तिमान बनाया है।''[४१] आगे हजारी प्रसाद द्विवेदी इस बात को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ''दृष्टव्य वस्तु में सौन्दर्य एक ऐसी शक्ति या धर्म है जो द्रष्टा को आन्दोलित और हिल्लोलित कर सकता है और द्रष्टा में भी ऐसी शक्ति है, ऐसा एक संवेदन तत्त्व है जो दृष्टव्य के सौन्दर्य से चालित और हिल्लोलित होने की योग्यता देता है।''[४२] यदि यह उभयनिष्ठ आकर्षण नहीं होता तो प्रत्येक वस्तु प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से प्रभावित करती।

सौन्दर्य की व्यक्तिनिष्ठा और वस्तुनिष्ठा पर विचारपूर्वक चर्चा करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं —''हम जो कुछ देखते हैं वह मानवगृहीत सत्य है, मानव निरपेक्ष सत्य हमारी पहुँच के बाहर है। ठीक यही बात सौन्दर्य के विषय में कही जा सकती है। कोई वस्तु अपने आप में कितनी सुन्दर है अथवा उसका वस्तुनिष्ठ वास्तव स्वरूप क्या है, यह हमारी पहुँच के बाहर की चीज हैं। जो वस्तु हमें सुन्दर लगती है वह मानवगृहीत रूप में हमारे मानस को चालित आन्दोलित करती है। वह भी एक मानवगृहीत सौन्दर्य है। सीधी भाषा में ऐसा समझिए कि एक प्रकार का व्यापक मानवचित्त है, जो विश्वनीय है। जो वस्तु इस समष्टि मानव चित्त

को सुन्दर लगती है, वही सुन्दर है।''[४३]

सौन्दर्य की व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ धारणाओं को डॉ० आनन्द कुमार स्वामी ने और स्पष्टतता से विवेचित किया है। वे कहते हैं कि सौन्दर्य का अस्तित्व सौन्दर्य की अनुभूति में है, जैसे प्रेम, प्रेम की क्रिया पर निर्भर है। वे वस्तु और व्यक्तिवादी दृष्टियों को एक दूसरे से पृथक नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि सत्य का वहीं अस्तित्त्व होता है जहाँ ज्ञेय और वैद्य का, ज्ञान और संवेदन की क्रिया से तादाम्य हो जाता है और दोनों को अलग कर नहीं सोचा जा सकता।'[४४]

समन्वय, तादाम्य के स्थापित होने के कारण को लेकर ही समन्वयवादी विचारक विषय और विषयी के समन्वय में सौन्दर्य का अस्तित्व मानते हैं। विषयी के गुण रूप दोनों पर ही विषय के गुण की परख होती है। हीरे के गुण की परख के लिए जौहरी की आँख चाहिए। स्वाति की बूँदों की गुणवत्ता का ज्ञान पपीहा को होता है। चन्द्रमा की किरणों का माधुर्य चकोर से पूछा जा सकता है। सौन्दर्य की परख सरल और सहृदय ही कर सकते हैं। महाकवि बिहारी ने इसी बात को कुछ इस तरह समझाया है —

''समय—समय सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोई।
मन की गति जैती जिते, तित तेती रुचि होय।'

सौन्दर्य विवेचन करते हुए डॉ० आनन्द कुमार स्वामी ने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया है कि सौन्दर्य कहाँ है? यदि ऐसा कहा जाये कि सौन्दर्य कुछ वस्तुओं में है कुछ में नहीं तो यह गलत होगा। आगे डॉ० स्वामी कहते हैं कि तो क्या यह कहा जाये कि सर्वत्र सौन्दर्य है? इसको निषेध करते हुए वे, सौन्दर्य को सभी जगह खोजा जा सकता है, कहते हैं।

वाल्ट व्हिटमैन इसी तरह की धारणा का पोषण करते हुए कहते हैं —''सम्पूर्ण वास्तुकलाएँ क्या हैं? जब इन्हें देखकर आप इसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया

व्यक्त करते हैं। इसका सौन्दर्य श्वेत या पीले पत्थरों या रेखाओं, मेहराबों में नहीं होता। 'वाद्ययन्त्र आप में जो जाग्रत करते हैं, आप में अबोध पूर्वास्मृति जगाते हैं वही संगीत है। वाद्ययन्त्र संगीत नहीं होते। न गायक का स्वर, वह तो इनसे बहुत परे होता है।'[४५]

सौन्दर्य के वस्तुनिष्ठ, व्यक्तिनिष्ठ, द्रष्टा—दृश्य के विवाद को महाकवि बिहारी की एक उक्ति सुलझा सकती है — 'रूप रिझावन हार सखि नैन रिझवार'।

वस्तुत: सौन्दर्य—बोध एक संश्लिष्ट इकाई है। सौन्दर्य प्रकृति में भी है। इसकी अनुभूति व्यक्तिगत भी होती है और समाजगत भी। व्यक्तिगत समाज का अंग है इसलिए न तो समाज निरपेक्ष व्यक्ति की सत्ता होती है, न समाज निरपेक्ष सौन्दर्यानुभूति की सम्भावना होती है।'[४६] विषयीगत (द्रष्टा) सहृदय व्यक्ति में सौन्दर्य मानने वाला तो रस सिद्धान्त ही है जिसने अन्य सभी सिद्धान्तों पर विजय पाई है और वह सौन्दर्य को विषयीगत मानने के बाद भी वस्तु की अवहेलना नहीं करता है। अत: कहा जा सकता है कि सौन्दर्य का सच्चा स्वरूप आन्तरिक और बाह्य, विषयी और विषय, द्रष्टा और दृश्य के सामंजस्य में ही निहित है।

समन्वयवादी या उभयनिष्ठ सौन्दर्य शास्त्रियों ने अपने विचारों और तर्कों परिभाषाओं से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि सौन्दर्य का सच्चा स्वरूप समन्वयकारी विचारधारा से ही सम्भव है। इन विचारकों में 'पाश्चात्य के प्लेटो, बोसांके, हीगेल, टालस्टाय आदि'[४७] तथा भारतीय विचारकों में अधिकतर 'संस्कृत आचार्य, रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० हरद्वारी लाल शर्मा आदि प्रमुख हैं।'[४८]

भारतीय एवं पाश्चात्य समन्वयकारियों ने अपने—अपने दृष्टिकोणों से अन्त: एवं बाह्य का समन्वय स्थापित किया है। यद्यपि यह सत्य भी हो सकता है फिर भी विवेचन के लिए पाश्चात्य व भारतीय विचारकों के वस्तुगत और व्यक्तिगत, द्रष्टा का आधार बनाया और क्यों दृश्यों की बात कही है? किस आधार पर सौन्दर्य

को व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ में बाँटकर उसके स्वरूप और आनन्द का निर्धारण किया है? इसकी जानकारी के लिए वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ अथवा दृश्य और द्रष्टा को आधार बनाकर सौन्दर्य को लेकर भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों के विचारों को संक्षिप्त रूप से संज्ञान में लेना भी आवश्यक हो जाता है।

१. द्रष्टा (व्यक्तिगत सौन्दर्य)

सौन्दर्यशास्त्रियों का एक वर्ग सौन्दर्य को व्यक्तिगत, मानसिक, आध्यात्मिक, आत्मनिष्ठ, विषयीगत मानता है। वे सौन्दर्य को भौतिक एवं वस्तुगत न मानकर पूर्णत: मानसिक अथवा आध्यात्मिक जगत की वस्तु मानते हैं। इन विचारकों का मानना है कि सौन्दर्य की सत्ता सुन्दर वस्तु से पृथक है।

(i) पाश्चात्य दृष्टिकोण

वस्तुवादी विचारकों के समान ही पश्चिम में सौन्दर्य की इस व्यक्तिवादी अथवा आत्मवादी विचारधारा को मानने की लम्बी परम्परा रही है। उनके विचारों की आधारभूति अत्यन्त सूक्ष्म नहीं है। उन्होंने किसी न किसी रूप में सौन्दर्य को आध्यात्म से सम्बन्धित कर उसको परिभाषित किया है। इन विचारकों का मानना है कि आध्यात्म की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित किए बिना वास्तविक सौन्दर्य की अनुभूति नहीं होती है। इस वर्ग के विचारकों में प्लेटो, प्लॉटेनिस, वामगार्टन, शेफ्टशबरी, ह्यूज, आस्कर, वाइल्ड, काण्ट, क्रोचे, शैली एवं कीट्स आदि मुख्य हैं।

'अरस्तु के गुरू प्लेटो नैतिकता को महत्त्व देने वाले आदर्शवादी विचारक हैं। उनकी धारणा है कि सृष्टि का सौन्दर्य सदैव एकरस एवं अखण्ड रहता है। यही सौन्दर्य समस्त सृष्टि में व्याप्त है। यह समस्त सृष्टि परमसत्ता के सौन्दर्य की अनुकृति है।'[४९]

'वामगार्टन सौन्दर्य को हमारी वृत्तियों का आदर्श लक्ष्य मानते हैं। उन्होंने कहा है कि सौन्दर्य शास्त्र हमारी चेतना अनुभूतियों अथवा वृत्तियों का धर्म है।'[५०]

प्लॉटिनिस के अनुसार 'सौन्दर्य भौतिक पदार्थों में नहीं होता यह शाश्वत भावों में होता है जो भौतिक पदार्थों के माध्यम से प्रतिबिम्बित होता है, उसके दर्शन बाहरी नेत्रों से नहीं होते, उसके लिए आन्तरिक नेत्र चाहिए।'[५१]

काण्ट सौन्दर्य के भौतिक अस्तित्त्व को स्वीकार करता है। इसकी अनुभूति वास्तविक जगत की वस्तुओं से परे की वस्तु है। 'काण्ट के लेखों में इस बात का सूत्रपात हुआ है कि सौन्दर्य मन की वस्तु है। वह मानव मन के विशिष्ट अंश को प्रभावित करता है। उसके अनुसार मस्तिष्क की अस्त—व्यस्त अनुभूतियों को बुद्धि एवं कल्पना एकत्रित एवं समन्वित करके, एक रूप प्रदान करती है। यही सौन्दर्य होता है। सौन्दर्यमय रूप वही है, जिससे आनन्द की उपलब्धि होती है।'[५२]

'क्रोचे ने मानसिक क्रियाओं को ही एक मात्र मान्यता प्रदान की है तथा बाह्य उपकरणों को केवल गौण साधन के रूप में ग्रहण किया है। उसने मानसिक व्यापारों की दो कोटियाँ मानी हैं —सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक। सौन्दर्य दर्शन का सम्बन्ध प्रथम कोटि से है तथा तर्कशास्त्र का दूसरा कोटि से।'[५३]

पाश्चात्य विचारकों में आई.ए.रिचर्ड्स, जार्ज सत्याना आदि ने अपने पूर्ववर्ती सौन्दर्य शास्त्रियों से अलग एक नई और मौलिक विचारधारा प्रस्तुत की। सौन्दर्य को जीवन से अलग न मानकर सौन्दर्य और आनन्द में सम्बन्ध स्वीकारा है। इस प्रकार पाश्चात्य विचारकों ने सौन्दर्य को आत्मगत मानकर उसे मानव—मानस की क्रियाओं का फल बताते हुए अपने—अपने सौन्दर्यपरक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

(ii) भारतीय दृष्टिकोण

भारतीय सौन्दर्य साधना का विकास सत्यं, शिवं, सुन्दरं की विशाल, व्यापक और पावन भावना के साथ हुआ है। भारतीय दार्शनिकों ने 'परम सुन्दरम' की कल्पना की है। ब्रह्म का व्यक्त स्वरूप, यह समस्त सृष्टि भी सुन्दर है। सौन्दर्य के प्रति भारतीय दृष्टिकोण आध्यात्मिक रहा है। इसकी आध्यात्मिक दृष्टि की ओर संकेत

करते हुए रामेश्वर लाल खण्डेलवाल लिखते हैं — "वस्तुतः भारतीय विचारधारा में कोरा बाहरी सौन्दर्य अपने आप में क्षुद्र है। वह ब्रह्म भावना से युक्त होकर ही रमणीक व आकर्षक होता है।"[५४]

व्यक्ति के मन में कुछ भाव अचेतनावस्था में स्थायी रूप में विद्यमान रहते हैं। काव्य में वर्णित भाव जब हृदयास्थित अचेतन भाव को उद्घाटित कर उसके साथ सामंजस्य स्थापित करते हैं तो रस अथवा काव्यानन्द की अनुभूति होती है। सामान्य भारतीय विचारधारा के अनुसार रवीन्द्र नाथ भी सौन्दर्य को स्वानाभूतिमूलक मानते हैं। किसी भी चीज को इसका माध्यम बनाया जा सकता है। भद्दी चीज भी इस दृष्टि से निरर्थक नहीं है। कला में मनुष्य अपने को प्रकाशित करता है न कि अपने वर्ण्य विषयों को। उनका कहना है —"सौन्दर्य विश्व की प्रत्येक वस्तु में व्यापक है, इसलिए प्रत्येक वस्तु हमारे आनन्द का स्रोत बन सकती है।"[५५]

यह सत्य है कि भारतीय दृष्टिकोण से सौन्दर्य को वस्तुगत रूप में परिभाषित नहीं किया गया है। सागर की लहरों का अध्ययन यदि हुआ है तो मानव हृदय की हिलोरों को भी स्थान मिला है। कालिदास हिमालय की प्रशंसा करते हैं तो अन्य कवियों ने भी उसके वस्तुगत सौन्दर्य को न उभार कर उसके मनोभावों को चित्रित किया है। तर्क से हम परमात्मा का चिन्तन कर सकते हैं और सौन्दर्य हमें साक्षात् ब्रह्म का दर्शन कराता है। हमारी आत्मा सौन्दर्य विवेकनी शक्ति के रूप में सौन्दर्य को सुन्दर बनाती है।

वास्तविक रूप में भारतीय सौन्दर्य विचारकों ने अपनी दृष्टि को सामंजस्यपूर्ण बनाये रखा है। उन्होंने सौन्दर्य के आत्मगत और वस्तुगत—द्रष्टा एवं दृश्य दोनों स्वरूपों को दृष्टि में रखते हुए अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। उनकी सामंजस्यपूर्ण दृष्टि यकीनन अवलोकनीय कही जा सकती है।

२. दृश्य (वस्तुगत सौन्दर्य)

कुछ विद्वानों का मत है कि सौन्दर्य किसी सुसंगठित पदार्थ में ही विद्यमान रहता है, वह दर्शक को प्रभावित भी करता है। इस प्रकार वह भौतिक जगत की ही वस्तु है न कि किसी आध्यात्मिक जगत की। वस्तुवादी विचारकों ने सौन्दर्य—बोध कराने वाली वस्तु के बाह्य रूप को अपनी विवेचना का आधार बनाया है।

(i) पाश्चात्य दृष्टिकोण

पश्चिम में सौन्दर्यशास्त्रियों की एक लम्बी परम्परा रही है — परन्तु उनमें भी मतैक्य का अभाव रहा है। ग्रीक युग में वहाँ के दार्शनिक सौन्दर्य को बाह्य मानकर प्राकृतिक गुणों का प्रदर्शन करते हैं। यूनान की प्राचीन मूर्तिकला देवी देवताओं से समृद्ध है उन्हें यह रूप पूर्ण मानव के आदर्श स्वरूप से प्राप्त हुआ है। वहाँ ईश्वर की कल्पना श्रेष्ठ मानव के रूप में स्वीकारी गई है। अपोलो और डायना की मूर्तियाँ इसी मान्यता पर आधारित हैं। अरस्तु ने कला को प्रकृति का अनुकरण मानकर सौन्दर्य के बाह्य रूप को प्रमुखता प्रदान की।

पश्चिमी विचारकों में सौन्दर्य को वस्तुगत मानने वाले विचारक सौन्दर्य के बाहरी रूप, संगठन, आकृति और सुडौलता आदि गुणों को अधिक महत्त्व देते हैं। इस वर्ग में वहाँ सुंकरात, अरस्तु, लेसिंग, होगार्थ, बर्क, एलिसन, रिचर्ड, प्राइस, हरबर्ट स्पेन्सर, गेरार्ड, स्टुअर्ट आदि प्रमुख हैं।

इन विचारकों में अरस्तु ने सौन्दर्य के बाह्य रूप को स्वीकार कर सौन्दर्य में निश्चित आकार और आयाम को महत्त्व दिया है —'किसी भी सुन्दर वस्तु में चाहे वह जीवधारी हो अथवा अवयवों से संघटित कोई अन्य पूर्ण पदार्थ, अंगों का व्यवस्थित अनुक्रम मात्र पर्याप्त नहीं है, वरन् उसका एक निश्चित आयाम भी होना चाहिए क्योंकि सौन्दर्य आयाम और व्यवस्था पर ही निर्भर होता है। इसलिए

कोई अत्यन्त सूक्ष्म प्राणी सुन्दर नहीं हो सकता क्योंकि उसे देखने में इतना कम, प्राय: नहीं के बराबर समय लगता है कि उसका बिम्ब सर्वथा अस्पष्ट रह जाता है। इसी तरह अत्यन्त विराट आकार का पदार्थ भी सुन्दर नहीं हो सकता क्योंकि हमारी दृष्टि उसके समग्र रूपकों को एक साथ ग्रहण नहीं कर सकती, जिसके फलस्वरूप द्रष्टा के मन में उसकी पूर्णता और एकत्व की भावना खंडित हो जाती है मानों किसी एक हजार मील लम्बे पदार्थ को देखने का प्रयास हो। अत: ऐस जीवधारियों में एक निश्चित आकार आवश्यक होता है — ऐसा आकार जिसे दृष्टि एक साथ समग्र रूप में धारण कर सके।'[५६]

सौन्दर्य को बाहय रूप में स्वीकार करने के कारण उसकी ऊपरी रेखाओं पर अधिक ध्यान दिया जाता है। साहित्य के अन्तर्गत अरस्तु ने नाटक की वस्तु के समुचित विभाजन और विकास एवं उसके सम्पूर्ण अंगों के प्रभाव आदि को अधिक महत्त्व दिया है। उनके अनुसार कथानक का आयाम निश्चित होना चाहिए। उसका आरम्भ एवं अन्त प्रभावशाली और स्पष्ट होना चाहिए।

होगार्थ ने सौन्दर्य को सम्माता, स्पष्टता एवं आयतन में देखा है। वर्क ने वस्तु की लघुता, स्निग्धता, कोमलता, मसृणता, पवित्रता और वर्णदीप्ति में सौन्दर्य का अवलोकन किया है। रस्किन ने सौन्दर्य के अन्तर्गत एकता, स्थिरता, सम्मात्रा, शुद्धता आदि को परिगणित किया है। लेसिंग को मूर्ति की असुन्दरता सहन नहीं थी। अत: उसने समानता एवं सुडौलता में सौन्दर्य देखा है।'[५७]

इसी तरह अन्य पाश्चात्य विचारकों में 'प्लेटो ने समता में ही सौन्दर्य की अवधारणा स्वीक़ार की है। ह्यूम अंगों की सुसंगठित रचना को सौन्दर्य मानते हैं जो हमारी संस्कारजन्य आत्मा को सुख शान्ति प्रदान कर सके।

इस वर्ग को मानने वाले पाश्चात्य विचारकों ने सौन्दर्य को वस्तुगत मानकर उसके बाह्य रूप को परिभाषित किया है। अन्तत: सौन्दर्यशास्त्रियों ने

सामंजस्य, लय, एकान्विति, सम्मात्रा आदि में सौन्दर्य के दर्शन कर अपने वस्तुगत सौन्दर्य के मत को पुष्ट किया है।

(ii) भारतीय दृष्टिकोण

सौन्दर्य के प्रति भारतीय दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक और विशद रहा है। इसके अनुसार कला अथवा सौन्दर्य सच्चिदानन्द के रूप में अभिव्यक्ति है। इस सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में उस सत्यं, शिवं, सुन्दरं का सौन्दर्य आभासित होता है, ऐसा भारतीय विचारकों का मत है। इसी व्यापक दृष्टिकोण के कारण ही भारतीय आचार्य अतिवाद के आरोपों से मुक्त रहे हैं। इन्होंने सौन्दर्य के एकांगी रूप पर ही विचार नहीं किया है। उनके लिए हिमालय एवं विंध्यगिरि की पर्वत श्रेणियाँ भी उतनी सुन्दर हैं जिनती मानव हृदय में उठने वाली उदात्त एवं मधुर भावनाएँ।

भारतीय सौन्दर्यशास्त्रियों ने सौन्दर्य के बाह्य पक्ष के विषय में इतना अधिक चिन्तन नहीं किया है जितना कि उसके आन्तरिक पक्ष के विषय में। उनका ध्यान सौन्दर्य के आह्लादकत्व की ओर अधिक रहा है न कि उसके बाह्य आकर्षण की ओर। रसवादी एवं ध्वनिवादी आचार्यों के अतिरिक्त प्रायः अन्य आचार्य वस्तुवादी ही हैं। 'अलंकारवादियों ने सौन्दर्य को अलंकारों में ही समाहित माना है। वामन ने अलंकारों के द्वारा काव्य को ग्राह्य बताते हुए सौन्दर्य एवं अलंकार का तादाम्य स्थापित किया है। उनके अनुसार सौन्दर्य ही अलंकार है।'[५९]

भामह और उद्‌भट तो शुद्ध अलंकारवादी अथवा वस्तुवादी हैं। वे तो अलंकारों के बिना काव्य को स्वीकार ही नहीं करते। उनके अनुसार अलंकार अथवा वक्रोक्ति ही काव्य का सर्वस्य है। आचार्य क्षेमेन्द्र भी वस्तुवादी विचारकों में आते हैं। कुन्तक ने भी भामह और उद्‌भट की परम्परा में ही सहयोग दिया है। इस प्रकार रीति, अलंकार, औचित्य, वक्रोक्ति आदि सम्प्रदाय वालों ने सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता को स्वीकारा है।

(घ) साहित्य में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति

किसी साहित्यकार की दृष्टि आलोचक एवं साधारण जन की अपेक्षा कुछ भिन्न होती है। वह विश्व की प्रत्येक वस्तु को अपनी कल्पना के नेत्रों से देखता है। किसी भी वस्तु का स्वरूप उसकी कल्पना के द्वारा रूप धारण करता है। उस कल्पनात्मक अतीन्द्रिय स्वरूप की रसात्मकता एवं रागात्मकता के कारण हृदय में प्रेम एवं आनन्द की अनुभूति होती है।

कालिदास ने सौन्दर्य की व्यापक विवेचना प्रस्तुत की है, वहीं जयशंकर प्रसाद ने सौन्दर्य की चेतना का उज्ज्वल वरदान मानकर साहित्य में उसकी प्रतिष्ठा की है। साहित्य की सौन्दर्य के प्रति दृष्टि की विवेचना परमानन्द शर्मा की इस बात से स्पष्ट हो जाती है—''यथार्थ का चित्रण यदि यथार्थ की सीमा में ही घेर कर किया जायेगा तो साहित्य की ऐसी इतिवृत्तात्मक क्रिया हमें खींचकर बहुत पीछे कर देगी। हमें साहित्य और उसके ऊपर सभी अंगों के चित्रण में जितनी मात्रा में कल्पना, भावना, अनुभूति तथा सरसता की आवश्यकता पड़ेगी, रचना में ही देना पड़ेगा।''[६०]

सौन्दर्य में मुख्यत: तीन तत्त्व कार्य करते हैं — भोग तत्त्व, रूप तत्त्व और अभिव्यक्ति तत्त्व। इन्हीं तीनों तत्त्वों के आपसी सामंजस्य से ही सौन्दर्य के रूप को परिभाषित किया जाता है। इन्हीं तत्त्वों के कारण हमें सुन्दर अथवा असुन्दर का संज्ञान होता है। सौन्दर्य की अनुभूति की जा सकती है। इसी अनुभूति को मूर्त रूप देने के लिए किसी वस्तु का आश्रय लेना पड़ता है। अत: वे पदार्थ जिनके माध्यम से सौन्दर्य अपनी आभा का प्रसार करता है, भोग तत्त्व कहलाते हैं। सौन्दर्य चेतना भोग तत्त्व का आधार लेकर ही मूर्त रूप में प्रकट होती है।[६१] 'ये अंश वस्तु के विशिष्ट रंग, रस, स्पर्श, गन्ध आदि हैं जो स्वभावत: ही हमें प्रिय लगते हैं और व्यक्ति में भोग की भावना उत्पन्न करते हैं।'[६२]

रूप तत्त्व सौन्दर्य का दूसरा तत्त्व है। भोग तत्त्व ही रूप तत्त्व में आकार

ग्रहण करता है। वस्तु की उचित संरचना द्वारा ही रूप का निर्माण होता है। इसी रूप के उचित संघटन द्वारा सौन्दर्य की सृष्टि सम्भव होती है। शरीर के अंगों का स्थान परिवर्तन कर देने से रूप सौन्दर्य से आनन्द की प्राप्ति नहीं होती है।

अन्तिम तत्त्व के रूप में अभिव्यक्ति तत्त्व को परिभाषित किया जाता है। इसके द्वारा भोग और रूप तत्त्वों द्वारा उद्भूत भावों की व्यंजना का आभास होता है। साहित्यकार अथवा कलाकार अपनी सौन्दर्यानुभूति को जिस रूप में प्रकट करता है वही अभिव्यक्ति तत्त्व है।'[६३] साहित्यिक अनुभव भी इसी अभिव्यक्ति तत्त्व का एक रूप है।

साहित्य में भी सौन्दर्य की प्रभाव—व्यंजनाओं का ही सर्वोपरि महत्त्व है। 'शब्द और अर्थ की एक दूसरे से होड़ मचाने वाली सुन्दरता को ही, जिसे प्राचीन पण्डित परस्पर स्पर्द्धिचारुता कहा करते थे, हम साहित्य नहीं कहते, बल्कि उस सुन्दरता से उत्पन्न होने वाले प्रभावों की बात सोचते हैं।'[६४] मानव की सौन्दर्य पिपासा को शान्त करने वाले सौन्दर्य के दो रूप हैं — साहित्येतर एवं साहित्यिक। प्रथम में व्याप्त इन्द्रियानुभूत रूप, रस, स्पर्श एवं गंध द्वारा आस्वादनीय सौन्दर्य की संज्ञा है, द्वितीय में वे विशिष्ट रूप हैं जो साहित्य एवं अन्य कलाओं से प्राप्त हैं।

साहित्य में अंकित सौन्दर्य पाठक के मन में गहरा प्रभाव छोड़ता है। सहृदय पाठक न केवल पतझड़ कालीन प्रकृति के दृश्य का आनन्द लेता है अपितु उसके मानवीय सुषमा से ओतप्रोत सौन्दर्य से अभिभूत भी हो उठता है। वह पुनः—पुनः इस सौन्दर्य का रसास्वादन करना चाहता है, क्योंकि इसमें कलाकार के अध्यात्मक लोक का आलोक तथा माधुर्य, संगीत और सजीवता रहती है।

'साहित्य में अभिव्यक्त सौन्दर्य का कोई नैतिक अथवा अनैतिक पक्ष नहीं होता है। जो 'आदर्श एवं सुन्दर है वह नैतिक तो अवश्य होता है। सुन्दर कभी भी नीति विरोधी नहीं होता है। साहित्य केवल बाह्य रूपाकार तक सीमित नहीं

होता, हृदय की गहनातिगहन एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं तक का भी उद्घाटन करता चलता है।'[६५]

साहित्य और उसके सौन्दर्य में वही सम्बन्ध होता है जो एक व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व में होता है। सौन्दर्य की सर्जना कला कहलाती है और साहित्य भी अपने आप में एक कला है। अन्य ललित कलाओं के विपरीत यह शब्दों के द्वारा परिभाषित की जाती है। यही शब्द हृदय में सुप्त सौन्दर्य की चेतना को जाग्रत कर देते हैं। 'साहित्यिक सौन्दर्य हृदय के सौन्दर्य साँचे में ढली हुई विशुद्ध अनुभूतियाँ हैं और साहित्य कलाकार के हृदय में संचित भावनाओं का सम्प्रसारण है।'[६६]

साहित्य और साहित्यिक सौन्दर्य दोनों ही जीवन से विलग नहीं हैं। साहित्य की अपनी स्वतन्त्र सत्ता होती है। 'जो साहित्यकार जीवन के जितना अधिक निकट होता है वह उतना ही महान होता है। महान साहित्यकारों की रचनाएँ शाश्वत जीवन को स्पन्दित करती हैं उनमें स्थायित्व होता है।'[६७] साहित्य में अभिव्यक्त सौन्दर्य जीवन से रंग पाकर ही साहित्य को रंगता है। माता—पिता को वात्सल्य स्वरूप से, भाई—बहिन के पवित्र प्रेम से, पति—पत्नी के उन्मुक्त सम्बन्धों से साहित्यकार स्वयं को अलग नहीं कर पाता है। साहित्यकार यदि एक ओर विलासिता आदि से पूर्ण, सुख—वैभव से सम्पन्न जीवन की अनुभूति करता है तो दूसरी ओर दारिद्र, अभावमय पीड़ा को भी सहता है। इन्हीं 'परस्पर भावों का सामंजस्य ही साहित्य का सौन्दर्य है।'[६८] यही सामंजस्य सौन्दर्य का प्रस्फुटन करके साहित्य पाठकों के हृदय में समरसता एवं आनन्द उत्पन्न करता है।

प्रातःकालीन उषा की अरुणिमा, सन्ध्या सूर्यास्त की लालिमा, भोर के पंछियों का कलरव, शाम को वन स्थली से लौटती गायों की घंटियों की मधुर गूँज, नदियों की कल—कल, भौरों की गुँजन आदि—आदि संगीत की सृष्टि करती हैं। यही संगीत आदिकाल से साहित्यकारों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। इसी से

आकर्षित होकर वह कुछ देर के लिए इसके सौन्दर्य से अभिभूत होकर आत्मविभोर हो जाता है। इसी रागात्मक वृत्ति के अलावा साहित्य से उपजी करुणा का सौन्दर्य भी पाठकों से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है। एक ओर आनन्द का सौन्दर्यपरक उद्घाटन पाठकों के मन को रोमांचित कर जाता है तो दूसरी ओर करुणा पाठकों के मन में अलग सृष्टि करती है; यही करुणा और इसकी सृष्टि ही साहित्य का सौन्दर्य कहलाती है।

साहित्य आत्मा की कला है, अत: साहित्य और उसका सौन्दर्य आत्मा का सौन्दर्य कहलाता है। काव्य जिन मानस—प्रत्ययों द्वारा अथवा चित्रों के माध्यम से सहृदय पाठक को सौन्दर्यानुभूति कराता है वे चक्षु, कर्ण, जिव्हा, नासिका द्वारा प्रदत्त रूप शब्द, रस, गंध आदि मानस प्रत्यय अथवा चित्र ही तो हैं। इन्हीं चित्रों या प्रत्ययों के द्वारा मानव को सौन्दर्यानुभूति प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ —

''हिलते द्रुम दल कल किसलय,
देती गल बाँही डाली
फूलों का चुम्बन, छिड़ती—
मधुपों की तान निराली।''[६९]

यही सौन्दर्यानुभूति साहित्य का अभीष्ट है। सौन्दर्य को कतिपय शब्दों द्वारा मूर्त स्वरूप प्रदान करना ही साहित्य कला है। कला के रूप की अभिव्यक्ति साहित्य से होती है। साहित्य और सौन्दर्य में साधन—साध्य का सम्बन्ध है। सौन्दर्य साहित्य निर्माण का साधन है। साहित्य में जीवन की अनुभूतियों का उसी परिवेश में आदर्श स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। इसी आदर्श रूप से प्रेरणा प्राप्त करके उसके अनुकरण द्वारा जीवन के उच्चतम मूल्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। साहित्य के इस उद्देश्य की प्राप्ति सौन्दर्य द्वारा ही सम्भव होती है।

साहित्य का सौन्दर्य शाश्वत तथा अनिश्वर है। उस पर देशकाल का

प्राय: प्रभाव नहीं पड़ता है। आत्मा अजर–अमर है और उसका सौन्दर्य ही साहित्य में प्रतिष्ठित है अत: साहित्यिक सौन्दर्य अमर है। साहित्य आत्मा का आत्मा से सम्बन्ध स्थापित करवाता है। यही कारण है कि तुलसी के राम, कालिदास की शकुन्तला, शेक्सपियर की पोर्सिया, प्रसाद की देवसेना व कामायनी आज भी उतनी सुन्दर एवं प्रिय हैं, जितनी कि वे उस समय थीं, जबकि उनका साहित्य में आगमन हुआ था।'[७०]

यह साहित्यिक सौन्दर्य की विशेषता है कि वह पाठकों के हृदय पर सीधा एवं अमिट प्रभाव डालता है। इस सौन्दर्य का प्रभाव सात्त्विक और पवित्र होता है। इसके आकर्षण में वासना एवं पाप की ज्वाला नहीं पवित्रता एवं सरसता की शीतलता होती है। इस प्रकार साहित्यिक सौन्दर्य से उत्पन्न आनन्द रूप, रस, स्पर्श आदि भौतिक अनुभूतियों के आनन्द से ऊपर एक ऐसी अनुभूति है, जिसमें हृदय की समस्त शुभवृत्तियाँ सजग हो उठती हैं। उसमें किसी तरह की वासनात्मकता नहीं होती। पाठक एक ऐसे लोक में पहुँच जाता है जहाँ विशुद्ध आनन्द के और कुछ नहीं होता है। सौन्दर्य के प्रभाव से मृत्यु भी जीवन के आनन्द से परिपूर्ण प्रतीत होती है।

'जीवन और सृष्टि के विभिन्न रूप सुन्दर हैं और साहित्य में समाहित हैं। साहित्य सौन्दर्य–निर्माता भी है और सौन्दर्य की सृष्टि भी है। सारे समाज को सुन्दर बनाने की साधना का नाम ही साहित्य है। इस प्रकार सौन्दर्य द्वारा साहित्य का निर्माण होता है और साहित्य द्वारा सौन्दर्य की सृष्टि।'[७१]

साहित्य और सौन्दर्य उसी प्रकार एक दूसरे के पूरक हैं जिस प्रकार शरीर और आत्मा। आत्मा का दृष्ट रूप सुन्दर शरीर है और शरीर की सार्थकता उसकी आत्मा के कारण है। आत्मा से हीन निष्प्राण शरीर और बिना शरीर धारण किये आत्मा अपरिलक्ष्य है, इसी प्रकार साहित्यकार भी सुन्दर भावों, शब्द संयोजनों, छन्दादि के द्वारा निर्मित साहित्य तन को गीतात्मकता और अलंकारों के आभूषणों से

सौन्दर्य प्रदान करता है। रूप और सौन्दर्य के सामंजस्य से ही साहित्य का निर्माण होता है। सौन्दर्य और साहित्य में साधन–साध्य का सम्बन्ध है। सौन्दर्य साहित्य निर्माण का साधन है। क्रिया रूप में वह जीवन की अभिव्यक्ति है और प्रतिक्रिया रूप में इसका निर्माता और पोषक है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सौन्दर्य द्वारा साहित्य निर्माण के समर्थन में कहा है —"जो जाति सौन्दर्य की पूजा करती है और असुन्दर की उपेक्षा करती है और वह साहित्य और कला की सृष्टि करती है।"[७२]

साहित्य में सौन्दर्य को लेकर भी विद्वानों में मतैक्य की स्थिति नहीं रही है। कलावादियों का विचार 'कला के लिए कला' अर्थात् सौन्दर्य सृजन केवल सौन्दर्य सृष्टि के लिए ही है, किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं है। इसका निषेधन करते हुए जैनेन्द्र ने स्पष्ट शब्दों में कहा है —"हमारे यहाँ कला एक आनन्दमय साधना मानी गई है। आनन्दहीन साधना इतनी ही निरर्थक है जितना साधनहीन आनन्द निष्फल है।"[७३] देखा जाये तो साहित्यकार आम आदमी की श्रेणी से ऊपर उठा हुआ सर्वाधिक संवेदनशील प्राणी है। उसकी आत्मा अनुभूति के सौन्दर्य से मण्डित होती है। वह प्रत्येक परिस्थिति में, सृष्टि के प्रत्येक उस बिन्दु से भी सौन्दर्य को खोज लेता है जहाँ साधारण मनुष्य की दृष्टि नहीं पहुँचती है। वह इधर–उधर बिखरे हुए, सांमजस्यविहीन, असन्तुलित सौन्दर्य को भी खोज लेता है। वह अनुराग विह्वल प्राणियों की प्रणय लीलाओं में आकण्ठ डूब जाता है तो उनकी वियोग वेदना की आग में भी झुलसता है।

भारतीय और पाश्चात्य मनीषियों ने सौन्दर्य को ही साहित्य का सर्वस्व स्वीकार कर उसके महत्त्व को प्रतिपादित किया है। आचार्य रामचन्द्र शुल्क ने 'भला–बुरा, शुभ–अशुभ, मंगल–अमंगल, पाप–पुण्य आदि शब्दों को काव्य क्षेत्र के बाहर का माना है। उनके अंनुसार उपयोगी–अनुपयोगी, भली–बुरी बातें काव्य में नहीं होती हैं। सब बातें केवल दो रूपों में दिखाई पड़ती हैं — सुन्दर, असुन्दर।'[७४]

रामेश्वर लाल खण्डेलवाल साहित्य में सौन्दर्य को चिरकाल से स्थित मानते हैं। वे कहते हैं कि यदि संसार के सब देशों और सब कालों के साहित्य का मंथन करके उसमें से कोई शाश्वत तत्त्व निकाला जाये तो वह तत्त्व होगा प्रेम और सौन्दर्य की भावनाएँ।'[७५]

पाश्चात्य विचारकों में 'लेहन्ट' सौन्दर्य के महत्त्व की चर्चा करते हुए कहते हैं कि 'मानव के सत्य, सौन्दर्य तथा शक्ति के भावावेगों का नाम ही कविता है, जिसमें कवि अपनी कल्पना के आश्रय से विचारों को मूर्तिमान एवं स्पष्ट रूप प्रदान करता है।'[७६]

मेथ्यू अरनाल्ड के अनुसार 'कविता काव्यात्मक सत्य और काव्यात्मक सौन्दर्य द्वारा निश्चित स्थितियों में जीवन की आलोचना है।'[७७]

भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों के मतावलोकनों द्वारा कहा जा सकता है कि साहित्य में सौन्दर्य के उद्दीपन से साहित्यकार के मानस में अनुभूतियाँ प्रतिबिम्बित होती रहती हैं। साहित्य हृदय को सच्ची अनुभूतियाँ होती रहती हैं। अनुभूति कभी असुन्दर नहीं होती है। इसी अनुभूति के कारण व्यक्ति आनन्द का आस्वादन करता है। इस आनन्द की अलौकिकता के कारण ही इसे ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। इस प्रकार साहित्य उद्गम ही सौन्दर्य है और उसका अवसान भी सौन्दर्य में ही है। सौन्दर्य से प्राप्त आनन्द भी अपनी अलौकिकता से सुन्दर ही कहा जाता है। संक्षेपत: साहित्य में अभिव्यक्त सौन्दर्य सहृदय को आनन्द प्रदान करता है। सृष्टि के अनन्त सौन्दर्य की अनुभूति कराकर विश्व के सौन्दर्य स्वर्ग का अनुभव कराता है और हमें लोकोत्तर आनन्द की अनुभूति कराता है।

(व) मानवीय सौन्दर्य

मानव विधाता द्वारा रचित सृष्टि की सर्वोत्तम रचना स्वीकारी गई है।

विधाता की यह सुन्दर रचना जन्म के बाद से अवसान तक विविध रूपों में सौन्दर्य का परिपाक करता है। जन्म के तुरन्त बाद माँ की ममतामयी थपकियों, पिता के अनुशासित वात्सल्य, जीवन सहयोगी के विश्वासपरक सान्निध्य से उसका परिचय होता है। मानव का मानव के विभिन्न रूपों के साथ आकर्षण समय—समय पर बढ़ता रहता है। साहित्यकार, कलाकार भी मानव सौन्दर्य से सबसे अधिक प्रभावित होता है। यद्यपि मानवीय सौन्दर्य के अतिरिक्त किसी कलाकार—साहित्यकार को प्राकृतिक सुषमा भी अपनी ओर आकृष्ट करती है किन्तु साहित्यकार द्वारा मानवीय सौन्दर्य की ओर अधिक आकर्षण देखा गया है।

विधाता की इस सुन्दरतम रचना का सौन्दर्य विविध रूपों में परिलक्षित होता है। कभी उसकी बाह्य आकृति, रूपाकार अपनी ओर आकृष्ट करता है तो कभी उसके द्वारा किये गये कल्याणकारी कार्य; कभी मानवीय सौन्दर्य की विशिष्ट रूप सज्जा नेत्रों को अपनी ओर आकर्षित करती है तो कभी अन्तर का सौन्दर्य अपनी ओर ध्यान खींचता है। विधाता की सौन्दर्यपरक सुन्दर रचना को नारी, पुरुष और बालक में अलग—अलग वर्गीकृत किया गया है। इसी वर्गीकरण के अनुसार क्रमिक रूप से पुरुष, नारी और बाल सौन्दर्य को संक्षिप्त रूप से परिभाषित करने का प्रयास किया गया है।

१. पुरुष सौन्दर्य

प्रकृति के विकास के लिए स्त्री—पुरुष का सामंजस्य, सहयोग अपेक्षित है। पुरुष स्वभावत: कठोर है वहीं नारी मधुर और कोमल। नारी कोमल माधवी लता के समान है जो कि पुरुष रूपी वृक्ष का अवलम्ब खोजती है। कोमलता और मधुरता को महत्त्व प्रदान करने वाली पुरुषता एवं दृढ़ता पुरुष की ही है। ऋग्वेद काल से ही पुरुष सौन्दर्य के आदर्श गुण—बल, वीर्य, शौर्य एवं तेजस्विता को महत्त्व दिया जाता रहा है। सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी, वायु के समान बलशाली पुरुष ही पोषण

और रक्षण का कार्य करता है।

हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर वर्तमान तक नारी सौन्दर्य की भाँति पुरुष सौन्दर्य को परिभाषित किया गया हे। यह और बात है कि नारी सौन्दर्य की अपेक्षा पुरुष सौन्दर्य अत्यल्प हुआ है। साहित्यकारों की दृष्टि रमणी—रूप में अधिक होने के कारण नारी सौन्दर्य का पर्याप्त विकास हुआ है। अत्यल्प सौन्दर्य चित्रण होने के बाद भी पुरुष सौन्दर्य का जितना उद्घाटन हुआ है वह अपने आप में पूर्ण कहा जा सकता है।

वीरगाथा काल में पुरुष का वीरोचित् स्वभाव, दर्पपूर्ण आकृति उसके सौन्दर्य का प्रतीक है तो भक्तिकाल में दुष्ट संहारक के रूप में पुरुष सौन्दर्य की मंगलकारी, कल्याणकारी प्रतिस्थापना हुई है।

आधुनिक काल में भी साहित्य की प्रतिष्ठित पुरुषोचित विशेषताओं के साथ उसकी कमियों को भी समाहित कर उसका सौन्दर्य चित्रण किया गया है। राष्ट्र की रक्षा में बलिदान हो जाना वह अपना सौभाग्य समझता है, शत्रुओं को पराजित करने हेतु हुंकार भरता है परन्तु प्रणय—प्रसंगों में अत्यन्त निरीह और कोमल स्वभाव का हो जाता है। पुरुष सौन्दर्य में साहित्यकारों ने उसकी दृढ़ता को दर्शाया है, साथ ही उसकी कोमल भावनाओं को भी दर्शाया है। अत्यन्त उदार होने के बाद भी वह प्रणय पर एकाधिकार चाहता है। इर्ष्याग्नि में उसका रोम—रोम जल उठता है। आधुनिक साहित्य में पुरुष सौन्दर्य उसके गुणों और अवगुणों से एक साथ दीप्ति होकर और अधिक तेजमय होकर उभरा है।

नारी की तरह, पुरुष सौन्दर्य की मांसलता, शारीरिकता का चित्रण साहित्य में अत्यल्प है। कहीं—कहीं उसके बाहय सौन्दर्य को दर्शाने के लिए उसके शारीरिक अवयवों के सौन्दर्य को परिभाषित किया गया है, अधिकतर उसके आन्तरिक गुणों को ही विकसित करके पुरुष सौन्दर्य को सजाया—सँवारा गया है।

२. नारी सौन्दर्य

ममतामयी, वात्सल्य की मूर्ति, स्नेह की मंदाकिनी और अपनी शारीरिक सुषमा के सौरभ से जगत् को सुवासित करने वाली नारी का सौन्दर्य आदि काल से मानव—सौन्दर्यानुभूति का केन्द्र रहा है। सृष्टि के विकास के केन्द्र में नारी को ही रखा गया है। नारी ही पुरुष की शक्ति है, प्रेरणा है। नारी की शक्ति और प्रेरणा के द्वारा ही पुरुष का विकास और पोषण हुआ है। स्त्री—पुरुष के आपसी समागम से ही सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है।

भारतीय सांस्कृतिक विचारधारा के अनुसार नारी पुरुष की अर्द्धांगिनी है। 'वह सृष्टि का साधन और प्रकृति का मूर्त रूप होकर पुरुष के लिए सौन्दर्य, प्रेम, अनन्यता और आनन्द का कारण बनती है। इसलिए वह मान्या है, पूज्या है, आराध्या है, इसीलिए उसमें देवत्व है, और इसीलिए वह श्री है, शक्ति है, चिति है।'[७८] यही कारण है कि भारतीयों ने अपनी कला की देवी का रूप नारी रूप में कल्पनामयी बनाया है।

नारी को यकीनन सौन्दर्य और कला के समन्वय का मूर्त रूप कहा जा सकता है। कला संसार की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है जो नारी से ही प्रेरणा, आलम्बन एवं आधार ग्रहण करती है। इसी कारण कला एवं नारी को एक दूसरे का पूरक कहा जा सकता है। नारी के सौन्दर्य को शोभा माना जाता है। उसके द्वारा ही सौन्दर्य शोभायमान होता है। तुलसीदास ने नारी की सुन्दरता को सुन्दर बनाने वाला कहा है।

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द्र तो अपने उपन्यास गोदान के पात्र द्वारा अपनी अभिव्यक्ति कुछ इस तरह करते हैं —"संसार में जो कुछ सुन्दर है उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूँ।"[७९]

पन्त ने नारी हृदय में ही स्वर्ग की कल्पना की है —

"यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर

तो वह नारी उर के भीतर।''[८०]

साहित्य के इतिहास में आदिकाल से अद्यतन कवि की, साहित्यकार की प्रेरणा नारी ही रही है। यह और बात है कि उसके स्वरूप, उसकी छवि में परिस्थितियों और परिवेश के अनुसार परिवर्तन होता रहा है। 'वैदिक काल में वह मंगलमयी उषा—सुन्दरी, विदुषी नारी के स्वरूप में प्रकट हुई है। संस्कृत काल में कालिदास की कला के सम्पर्क में यदि एक ओर वह कान्चनवर्णी तन्वंगी अंगों के बाह्य सौन्दर्य की दीप्ति फैला रही थी तो दूसरी ओर उसके हृदय में भी सुन्दर भावनाओं का सागर लहरा रहा है।'[८१]

वैदिक काल की मंगलमयी, विदुषी नारी वीरगाथा काल में नारी सौन्दर्य के चरम रूप को प्राप्त करती है। वह वीर पत्नी, वीर प्रसविनी एवं वीर भगिनी के रूप में अवतरित हुई है। सौन्दर्य कां उसका उदात्त, साहसी स्वरूप अपने भाई—पिता आदि को युद्ध में वीरतापूर्ण क्रियाकलापों को प्रेरित करता है।

वीरगाथा काल की नारी साहस की प्रतिमूर्ति है, वहीं वह रीतिकाल में जीवन और जगत् से दूर वैभव और विलास में डूबी दिखाई गई है। रीतिकाल में नारी के मांसल सौन्दर्य को आधार बनाकर उसकी शारीरिक छवि, उसकी माँसलता, उसके अंग प्रत्यंगों का वर्णन किया गया था। बाद में पुनः वह अपनी श्रृंगारिकता को छिपाकर पवित्र प्रणय की पूर्णता प्राप्त करती है।

नारी का पवित्र एवं सुन्दर स्वरूप छायावाद में प्रतिष्ठित हुआ है। इस काल की नारी में वासना की लालसा नहीं होती है वरन् वह अपने आपको प्राकृतिक सौन्दर्य की पावनता से एकाकार कर लेती है। प्रकृति का सौन्दर्य ही नारी के पवित्र सौन्दर्य में प्रतिबिम्बित हो उठता है —

''जो जगत् की स्वामिनी, भामस्विनी तुम धन्य,

तुम प्रकृति के मुकुर का प्रतिबिम्ब रूप अनन्य।''

सरलता और सहजता उसका आभूषण बन जाते हैं। इस नारी के अंग–प्रत्यंग में छायावादी कवि को स्वर्गानुभूति होती है –

"स्नेहामयि, सुन्दरतामयि तुम्हारे रोम–रोम से नारि
मुझे है स्नेह अपार, तुम्हारा मृदु उर की सुकुमारि,
मुझे है स्वर्गागार।"[८२]

प्रसाद ने भी नारी के रूप, विलास, यौवन को उभारा है परन्तु उसमें रीतिकालीन वासनात्मकता प्रकट नहीं हुई है। तन के ही नहीं, प्रसाद जी ने नारी के मन के चित्रों को उकेरा है। वक्षस्थल में दया, ममता, मधुरिमा से पूर्ण स्पन्दन को प्रसाद जी ने अपनी नारी का सौन्दर्य बनाया है। उनके लिए नारी विश्वास की प्रतिमा है। वह साक्षात श्रद्धा है। श्रद्धा में जिस प्रकार श्रद्धेय के सम्मान एवं मानव मांगल्य का सामंजस्य होता है, उसी प्रकार का सामंजस्य एवं समन्वय नारी में निहित है –

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पगतल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।"[८३]

साहित्य में नारी का चित्रण अत्यधिक हुआ है। यद्यपि कुछ कालों में साहित्यकारों ने नारी के नख–शिख वर्णन, उसकी मांसलता को ही वर्णित किया है किन्तु ज्यादातर कवियों, साहित्यकारों ने नारी के महिमामयी, वात्सल्य, ममतामयी, करुणा के रूप को ही चित्रित किया है। नारी भावना का अलौकिक स्वरूप नारी सौन्दर्य के रूप में उभरकर सामने आया है। कहना अतिश्योक्ति न होगी कि साहित्यकारों अथवा कवियों ने नारी को श्रद्धा, गरिमा, लज्जा, करुणा, ममता, दुलार, सहिष्णुता के अप्रतिम सौन्दर्य से अलंकृत कर उसकी पावन प्रतिष्ठा की है।

३. बाल सौन्दर्य

पुरुष और नारी सौन्दर्य की भाँति बाल सौन्दर्य का भी साहित्य में

अपना विशेष महत्त्व है। कवि शिरोमणि सूरदास को तो वात्सल्य का ही कवि कहा गया है। उनकी बाल छवि का सौन्दर्य अभी तक हिन्दी साहित्यकारों को आलोकिक करता है। बालक की सरल, सहज, स्वाभाविक चेष्टाएँ, उसकी भोली मनोहर आकृति, भाव भगिमाएँ अपना अलग अनुपम सौन्दर्य प्रकट करती हैं।

साहित्य में बाल चित्रण की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। बाल रूप में कृष्ण और राम का चित्रण अत्यधिक हुआ है। 'कृष्ण' के बाल रूप को माध्यम बनाकर सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी काव्य रचनाओं में सौन्दर्य की प्रतिस्थापना की है। आधुनिक युग में बाल रूप का वर्णन उतनी विकसित अवस्था में नहीं हुआ है जितना कि बाल कृष्ण का हुआ है। अवसरानुसार जहाँ जैसा अवकाश मिला है बाल छवि को उसी तरह वर्तमान साहित्यकारों ने प्रकट किया है। विस्तृत रूप में देखा जाये तो भक्ति काल की अपेक्षा बाल सौन्दर्य का चित्रण कम ही अथवा नहीं के बराबर हुआ है।

(छ) बाह्य सौन्दर्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य

मानव का बाह्य सौन्दर्य हमेशा से साहित्यकारों को अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है। कवियों ने मानव के विशेष रूप से नारी के, बाह्य सौन्दर्य को लेकर काव्य रचनाएँ की हैं। महाकाव्यों में नायिका के नख—शिख वर्णन, उसके अंगों—उपांगों के सौन्दर्य का चित्रण बाह्य सौन्दर्य के अन्तर्गत ही किया गया है। बाह्य सौन्दर्य के अन्तर्गत नारी अथवा पुरुष की बाह्य रूपरेखा, गठन, वर्ण दीप्ति और उसके विभिन्न अंगों का चित्रण किया जाता है। नारी पुरुष के शारीरिक चित्रण के अलावा उनके द्वारा उपयोग किये जा रहे प्रसाधनों और वस्त्राभूषणों के सौन्दर्य को भी साहित्यकार मंडित करता है।

साहित्यकार को नारी—पुरुष के बाह्य सौन्दर्य में उसके शारीरिक अंगों—उपांगों—मुख, कपोल, नेत्र, केश, कटि, कर आदि में सौन्दर्य का बोध होता है।

और वह अपनी सौन्दर्य दृष्टि द्वारा इन अंगों की शोभा को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। अंगों—उपांगों के सौन्दर्य के अतिरिक्त मानव द्वारा धारण किये गये वस्त्रों और आभूषणों के द्वारा आकर्षित होने पर अथवा मानव की भाव भंगिमाओं से आकृष्ट होकर उसके सौन्दर्य को साहित्यकार अपनी लेखनी से दर्शाता है।

बाह्य सौन्दर्य में मानव की बाहरी आकृति, वेशभूषा को ही चित्रित किया जाता है। बाह्य आकृति के गुण मात्र नेत्रों को ही संतप्त करते हैं परन्तु व्यक्ति के गुणों के द्वारा हृदय आनन्दित होता है। हृदय के आनन्दमय होने के कारण सारा जगत् सौन्दर्यमयी दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि धैर्य, दृढ़ता, वीरत्व, पराक्रम, सत्यनिष्ठा आदि गुणों का सौन्दर्य व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट करता है। उक्त गुणों की मंगलकारी वृत्तियों के साथ लज्जा, सहानुभूति, करुणा, प्रेम आदि वृत्तियाँ इस तरह मिल जाती है कि कभी—कभी व्यक्ति के बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य अधिक सुखद प्रतीत होता है। इन वृत्तियों के आनन्द में साहित्यकार इतना निमग्न हो जाता है कि वह उसका अंकन किये बिना नहीं रहता है।

बाह्य सौन्दर्य में नख—शिख वर्णन, अंगों—उपांगों का वर्णन, मांसलता का उत्तेजक चित्रण मन मस्तिष्क को एकाएक तो उल्लासित कर देता है, उसमें एकाएक आनन्द का संचार हो जाता है परन्तु यह चिरस्थायी नहीं होता है। आन्तरिक सौन्दर्य के परिचायक गुणों से व्यक्ति जब साक्षात्कार करता है तो मानवीय सौन्दर्य उसके नेत्रों के रास्ते हृदय पर अंकित हो जाता है। व्यक्ति का आन्तरिक सौन्दर्य चिरकाल तक स्थायी रहता है और हृदय को, तन—मन को आनन्दित करता है। आनन्दानुभूति कराना सौन्दर्य का उद्देश्य होता है और इसमें बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य ज्यादा सफल सिद्ध हुआ है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि सौन्दर्य का सम्बन्ध हमारी इन्द्रिय, ग्रहण शक्ति, रुचि, देशकाल, आत्मसंस्कार और वस्तुनिष्ठ गुणों आदि से होता है।

सौन्दर्यानुभूति जितनी तीव्रता से एक सहृदय व्यक्ति में देखने को मिलती है उतनी तीव्रता से किसी वीतरागी हृदय वाले मनुष्य में देखने को नहीं मिलती है। सौन्दर्यानुभूति सभी के लिए अलग–अलग ही होती है क्योंकि सौन्दर्य देशकाल, वातावरण, परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है। यही कारण है कि चन्द्रमा किसी को सुखद प्रतीत होता है तो किसी को उससे ताप महसूस होता है।

सौन्दर्य का साक्षात्कार मानव हृदय की संकीर्णता आदि को त्याग कर व्यापक और निरपेक्ष रूप में किया जा सकता है। हृदय की सच्ची अनुभूति के कारण सौन्दर्य भी सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। अरुचिकर व कुरूप वस्तुएँ भी इसी कारण सर्वथा असुन्दर प्रतीत नहीं होती हैं। सौन्दर्य की सच्ची और सात्त्विक अनुभूति के कारण ही मजनूं को श्यामांगी लैला में भी सौन्दर्यानुभूति प्राप्त होती है।

साहित्य अपनी उपादेयता के पथ से सत्य और सौन्दर्य दोनों को मदद करता है। यद्यपि भारतीय साहित्य में सौन्दर्य का चित्रण पाश्चात्य सौन्दर्य चित्रण की अपेक्षा कम हुआ है फिर भी इस दिशा में संतोषजनक कार्य हुआ है। साहित्य में सौन्दर्य के आन्तरिक एवं बाहय रूपों पर दृष्टि डाली गई है। हमारे साहित्य में वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य की अपेक्षा व्यक्तिनिष्ठ सौन्दर्य चित्रण अधिक हुआ है। वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य आनन्द का व्यक्त रूप होता है जबकि व्यक्तिनिष्ठ सौन्दर्य में हृदय के मनोभावों को स्थान मिलता है।

मानव हृदय में स्थित पवित्र अनुभूतियों के कारण सौन्दर्य को सत्यं, शिवं, सुन्दरं का स्वरूप माना जाता है। यह सौन्दर्य का आन्तरिक एवं पावन रूप है। अतः कहा जा सकता है कि सौन्दर्य का सच्चा स्वरूप वही है जिसमें वस्तुगत और व्यक्तिनिष्ठ सौन्दर्य के रूप और गुणों का मणिकांचन योग हो। कलाकार इस मणिकांचन सौन्दर्य पर अपनी प्रतिभा का आलोक डालकर उसे सहज, सुलभ और आकर्षक बना देता है।

सन्दर्भ सूची

१. सौन्दर्य बोध एवं ललित कलाएँ – डॉ० सरोज भार्गव, पृ० १७

२. वही, पृ० ७

३. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन – वीणा माथुर, पृ० १

४. वही, पृ० १

५. जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला – रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, पृ० २६३

६. वही, पृ० २६३

७. हिन्दी के महिला उपन्यासकारों में अभिव्यक्त प्रेम, सौन्दर्य और जीवनदृष्टि – कु. किरन सिंह पृ० १७८

८. वही, पृ० १४८

९. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र का तात्त्विक विवेचन – डॉ० रामलखन शुक्ल, पृ० २४

१०. कामायनी सौन्दर्य – फतेह सिंह, पृ० ३६

११. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन – वीणा माथुर, पृ० २

१२. सौन्दर्य बोध एवं ललित कलाएँ – डॉ० सरोज भार्गव, पृ० १८

१३. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन – वीणा माथुर, पृ० २–३

१४. वही, पृ० ३

१५. सौन्दर्य बोध एवं ललित कलाएँ – डॉ० सरोज भार्गव, पृ० १९

१६. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन – वीणा माथुर, पृ० ३

१७. वही, पृ० ३

१८. वही, पृ० ४

१९. साहित्य और सौन्दर्य बोध – डॉ० रामशंकर द्विवेदी, पृ० ११७

२०. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन – वीणा माथुर, पृ० ५

२१. पल्लव– सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ८७

२२. कामायनी – जयशंकर प्रसाद

२३. चिंतामणि भाग –१ – रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ४३

२४. सौन्दर्यशास्त्र – हरद्वारी लाल शर्मा, पृ० १०

२५. साहित्य और सौन्दर्य बोध – डॉ० रामशंकर द्विवेदी, पृ० ८२

२६. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन – वीणा माथुर, पृ० ५

२७. वही, पृ० ६

२८. सौन्दर्य बोध एवं ललित कलाएँ – डॉ० सरोज भार्गव, पृ.७

२९. सौन्दर्य शास्त्र के तत्त्व – डॉ० कुमार विमल, पृ० ९९

३०. वही, पृ० ९९

३१. वही, पृ० ९९

३२. वही, पृ० ९२

३३. वही, पृ० ९३

३४. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन – वीणा माथुर, पृ० ९९

३५. सौन्दर्य शास्त्र के तत्व – डॉ० कुमार विमल, पृ० ९२

३६. वही, पृ० ९३

३७. वही, पृ० १०१

३८. वही, पृ० १०१

३९. साहित्य और सौन्दर्य बोध – डॉ० रामशंकर द्विवेदी, पृ० १२०

३९. वही, पृ० १२१ " To see the beauty of Laila requires the eyes of Majnun "

(The Dance of of shiva - Dr. A.K. Coormarshamy - 62)

४०. सौन्दर्य बोध एवं ललित कलाएँ – डॉ० सरोज भार्गव, पृ० २३

४१. साहित्य और सौन्दर्य बोध – डॉ० रामशंकर द्विवेदी, पृ० १२२

(It was my eyes Beauty that made thee bright - Johm Freeman)

४२. कालिदास की लालित्य योजना – हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ८८

४३. वही, पृ० ८९

४४. साहित्य और सौन्दर्य बोध — डॉ० रामशंकर द्विवेदी, पृ० १२३

४५. वही, पृ० १२४

४६. आस्था और सौन्दर्य — रामविलास शर्मा, पृ० ३२

४७. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन — वीणा माथुर, पृ० १६

४८. वही, पृ० २२

४९. वही, पृ० ११

५०. वही, पृ० ११

५१. सौन्दर्य बोध एवं ललित कलाएँ —.डॉ० सरोज भार्गव, पृ० २१

५६. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन — वीणा माथुर, पृ० १३

५७. वही, पृ० १३—१४

५८. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य —. रामेश्वर लाल खण्डेलवाल, पृ० ४६

५९. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन — वीणा माथुर, पृ० २०

६०. वही, पृ० २४

६१. वही, पृ० २५

६२. सौन्दर्य शास्त्र — हरद्वारी लाल शर्मा, पृ० १२

६३. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन — वीणा माथुर, पृ० २६

६४. वही, पृ० २६

६५. वही, पृ० ३०

६६. वही, पृ० ३५

६७. सूर साहित्य — डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० १४९

६८. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन — वीणा माथुर, पृ० ३६

६९. आँसू — जयशंकर प्रसाद, पृ० २६

७०. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन – वीणा माथुर, पृ० ३२

७१. वही, पृ० ३९

७२. वही, पृ० ४०

७३. वही, पृ० ४१

७४. चिंतामणि भाग–१ – रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १६७

७५. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य – रामेश्वर लाल खण्डेलवाल; पृ० १०१

७६. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन – वीणा माथुर, पृ० ४४

७७. वही, पृ० ४४

७८. वही, पृ० ४२

७९. गोदान – प्रेमचन्द, पृ० १०८

८०. ग्राम्या – सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ८२

८१. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन – वीणा माथुर, पृ० ४३

८२. पल्लव – सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ८१

८३. कामायनी – जयशंकर प्रसाद, पृ० १०६

द्वितीय अध्याय

डॉ० रामकुमार वर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(क) व्यक्तित्व

(ख) कृतित्व

डॉ० रामकुमार वर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

हिन्दी नाट्य साहित्य में डा. रामकुमार वर्मा का नाम बड़ी ही श्रद्धा और आदर के साथ लिया जाता है। अपने रंगीन व्यक्तित्व के कारण डॉ० वर्मा में हमेशा युवाओं जैसा उत्साह रहा है। डॉ० वर्मा एक नाटककार के साथ–साथ एकांकीकार, समालोचक, कवि तथा संपादक की विशिष्टता को अपने में समाहित किये थे। इनके एकांकी का बहुप्रशंसित होना डॉ० वर्मा को एकांकी का जनक तक सिद्ध कर गया। पृथ्वीराज की आँखें, रेशमी टाई, दीपदान आदि एकांकी इसी श्रेणी में आते हैं।

डॉ० वर्मा का नाट्य साहित्य शीतलता प्रदान करता है तो उनका काव्य मनोहारी उषा की भाँति लालिमा बिखेरता है। डॉ० वर्मा साहित्य–सृजन, चिंतन और अनुशीलन में सदैव निमग्न रहे। अनेक अलंकारों और पुरस्कारों से सम्मानित डॉ० वर्मा हिन्दी के सर्वमान्य गौरव हैं।

(क) व्यक्तित्व

डॉ० रामकुमार वर्मा अपने माता–पिता की ग्यारहवीं संतान थे। डॉ० वर्मा के पूर्वज उत्तर प्रदेश के कानपुर की एक तहसील घाटमपुर की अनर्गल स्टेट में निवास करते थे। 'डॉ० वर्मा के प्रतिपितामह श्री विश्राम सिंह ने सन् १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया था। इसमें तात्या टोपे की ललकार पर श्री विश्राम सिंह ने १२० अंग्रेजों के सिर काटकर उन्हें फूलबाग के एक कुँए में डाल दिया जो बाद में मेमोरियल वेल, कहलाया।'[१] श्री विश्राम सिंह ने झांसी रानी की सेना की ओर से भी युद्ध किया था। घायल होने के बाद ये काफी समय तक भूमिगत् रहे और बाद में सपरिवार नरसिंहपुर में आ बसे। विश्राम सिंह अपने भाई

छत्रसाल सिंह के साथ हरसिंपुर में ही बस गये। इन्हीं छत्रसाल सिंह के पुत्र हुए श्री शोभराम और श्री शोभराम के पुत्र हुए श्री लक्ष्मीप्रसाद वर्मा। तत्कालीन समय में श्री लक्ष्मीप्रसाद वर्मा डिप्टी कलेक्टर थे और इनकी पत्नी श्रीमती राजरानी देवी कवयित्री और संगीतज्ञा थीं। वे 'वियोगिनी' उपनाम से कविताएँ भी लिखतीं थीं। इन्हीं दम्पत्ति की संतान थे डॉ० रामकुमार वर्मा।[२]

जन्म

डॉ० रामकुमार वर्मा का जन्म संवत् १९६१ भाद्र शुक्ला ६ गुरूवार तदनुसार १५ सितम्बर १९०४ को सागर में हुआ था। परिवार के लोग इनको कुमार के नाम से पुकारते थे।

माता-पिता

डॉ० रामकुमार वर्मा श्री लक्ष्मीप्रसाद वर्मा तथा श्रीमती राजरानी देवी की ग्यारहवीं संतान थे। इनके घर का वातावरण पूर्णत: धार्मिक एवं सात्विक प्रवृति का था। डॉ० वर्मा की माता स्वयं 'वियोगिनी' के नाम से कविताएँ लिखा करतीं थी। वे संगीत की अच्छी ज्ञाता थीं और गायन में भी पारंगत थीं। सूर तुलसी और मीरा के भजन ये बड़ी तन्मयता के साथ गातीं थीं।

डा० वर्मा के पिता श्री लक्ष्मीप्रसाद वर्मा डिप्टी कलेक्टर के पद पर तैनात थे। इस कारण से इनका बराबर स्थानान्तरण होता रहता था। अपने माता—पिता के साथ रहकर ही इनका लालन पालन हुआ। जब इनके पिता नागपुर के रामटेक स्थान पर गये तो कुमार जी की शिक्षा मराठी भाषा में हुई पर इनकी माता ने घर पर इन्हें हिन्दी की शिक्षा प्रदान की।

शिक्षा

डॉ० रामकुमार की प्रारम्भिक शिक्षा नरसिंहपुर और जबलपुर में हुई। डॉ० वर्मा के भीतर साहित्य का अंकुर बचपन में ही पैदा हो गया था। इनके गुरू

पं० विशम्भर प्रसाद शर्मा बड़े ही साहित्य—प्रेमी थे। वे अपनी कविताओं की प्रतिलिपि डा० वर्मा से ही करवाते थे। इसके अतिरिक्त कुमार जी विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। 'कक्षा—८ में कुमार जी को सर्वप्रथम स्थान प्राप्त हुआ और उस समय रु० ६/— प्रतिमाह की प्रतिभा छात्रवृत्ति भी इनको प्रदान की गई।'[३] हाईस्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के बाद रामकुमार जी ने सन् १९२३ में जबलपुर के राबर्टसन कालेज में प्रवेश लिया। यहाँ से इण्टरमीडिएट की परीक्षण ससम्मान उत्तीर्ण कर सन् १९२५ में 'प्रयाग विश्वविद्यालय' में प्रवेश लिया। प्रयाग विश्वविद्यालय के 'हालैण्ड हाल' में प्रतिभावान, प्रथम श्रेणी के छात्रों को ही प्रवेश दिया जाता था। रामकुमार वर्मा ने अपनी प्रतिभा योग्यता के बल पर वहाँ प्रवेश किया। सन् १९२७ में यहीं से डॉ० वर्मा ने बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९२९ में इन्होंने एम०ए० (हिन्दी) की परीक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। तदुपरांत प्रयाग विश्वविद्यालय में ही आप अध्यापन कार्य करने लगे। सन् १९४० में डॉ० वर्मा ने नागपुर विश्वविद्यालय से डाक्टरेट उपाधि ग्रहण की।

हिन्दी के प्रोफेसर होने के बाद डॉ० वर्मा ने सोवियत संघ और श्रीलंका की यात्राएँ कीं। भारत सरकार ने इनकी साहित्यिक प्रतिभा का सम्मान करते हुए इन्हें 'पदम भूषण' की उपाधि से सम्मानित किया था।

परिवार

डॉ० रामकुमार वर्मा तत्कालीन उप—जिलाधिकारी श्री लक्ष्मीप्रसाद वर्मा तथा संगीतज्ञ एवं कवयित्री श्रीमती राजरानी देवी के योग्य पुत्र थे। डॉ० वर्मा कुल मिला कर पन्द्रह भाई—बहिन थे। इनमें ६ बहिनें थीं। डॉ० वर्मा के पितामह परम वैष्णव भक्त और राम के अनन्य उपासक थे। 'राम' का नाम किसी न किसी रूप में उनके मुखारविन्द से निकलता रहे, इस कारण इन्होंने अपने सभी

पौत्रों का नाम 'राम' शब्द के अर्थ से आरम्भ किया था। रघुवीर प्रसाद, रघुनन्दन लाल, रामेश्वर दयाल, रामशरण लाल, रामानुज प्रसाद, रामकुमार, रामअनुग्रह प्रसाद, राम सनेही।

सन् १९२९ में एम.ए. (हिन्दी) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के बाद इनको मंडला जिले के डिप्टी कलेक्टर के पद का नियुक्ति—पत्र प्राप्त हुआ। इसके साथ ही प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक पद पर नियुक्ति की सूचना प्राप्त हुई। इस दुविधा की स्थिति में रामकुमार वर्मा जी ने डिप्टी कलेक्टर के स्थान पर प्राध्यापक पद को ग्रहण करना उचित समझा। घर पर सभी ने उनके इस निर्णय की बहुत आलोचना की। इनके पिता जी कुछ अन्यमनस्क अवश्य थे पर इनकी हार्दिक इच्छा जानकर इन्हें प्राध्यापक पद स्वीकारने की सहर्ष अनुमति दे दी किन्तु इनकी माताजी ने कुछ नहीं कहा।'[४]

डॉ० रामकुमार वर्मा का विवाह इसी वर्ष सन् १९२९ में २४ वर्ष की आयु में लक्ष्मी देवी के साथ सम्पन्न हुआ। डॉ० वर्मा की धर्मपत्नी भी डिप्टी कलेक्टर श्री रामानन्द प्रसाद की पुत्री थीं। श्रीमती लक्ष्मी देवी धर्मपरायण गृहस्थ महिला थीं। वे नियमत: नित्य 'रामचरितमानस' और 'श्रीमद्भगवद गीता' का पाठ करतीं थीं। तीर्थ यात्रा में अधिक रुचि होने के कारण अपनी सुपुत्री राजलक्ष्मी के साथ प्रतिवर्ष किसी न किसी तीर्थ स्थान की यात्रा पर जातीं थीं, इसके अतिरिक्त गर्मियों का एक माह वे हरिद्वार में व्यतीत करतीं थीं।

डॉ० रामकुमार वर्मा का प्रथम शोध ग्रंथ १९३१ में 'कबीर का रहस्यवाद' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। हिन्दी समालोचना क्षेत्र में कबीर पर अपनी तरह का यह अद्वितीय ग्रंथ था। डॉ० वर्मा लगातार साहित्यिक, सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेते रहे। १९४० में नागपुर विश्वविद्यालय के कुलपति के पत्र से आपको सूचना दी गई कि 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' ग्रंथ पर नागपुर

विश्वविद्यालय द्वारा पी—एच०डी० उपाधि प्रदान की जाती है। इधर बाद के वर्षों में आपके एकांकी और नाटकों ने डॉ० वर्मा की लोकप्रियता को और ऊचाइयाँ प्रदान कीं। सन् १९५७ में वे सोवियत संघ की यात्रा पर भी गये। जहाँ हिन्दी उन्नयन के लिए उन्होंने अनेक योजनाओं पर कार्य किया। सन् १९६३ में नेपाल एवं सन् १९६७ में श्रीलंका की यात्रा के दौरान शिक्षा विशेषज्ञ के रूप में उनका व्यक्तित्व निखरा।

विभिन्न ग्रंथों की रचना, विविध देशों की यात्राएँ, अनेक सम्मान, अनेक समितियों के पदाधिकारी बन डॉ० वर्मा ने अपनी अद्‌भुत कार्यक्षमता प्रदर्शित की। मृदुभाषी, अद्‌भुत स्मरणशक्ति के धनी, अभिनय के शौकीन डॉ० रामकुमार वर्मा अपनी अंतिम यात्रा तक जीवंत बने रहे। दि० ०४.१०.९१ को अस्वस्थता के बाद ०५.१०.९१ को डा० वर्मा मृत्युलोक को छोड़ अनन्त यात्रा को निकल पडे। उनकी इकलौती संतान सुपुत्री डॉ० राजलक्ष्मी ने ०६.१०.९१ को रसूलावाद घाट, इलाहाबाद में अंतिम संस्कार किया।'[५] अपने निवास साकेत से अंतिम बार बाहर निकले डॉ० वर्मा सभी को रोता बिलखता छोड़ प्रभु धाम में प्रभुपादम्बुजों की सुगन्धि में समाहित होने चले जाते हैं। हिन्दी साहित्य में अपनी कृतियों के सहारे लोकप्रिय डॉ० वर्मा हमारे मध्य सदैव जीवित रहेंगे।

(ख) कृतित्व

डॉ० रामकुमार वर्मा हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभा के धनी लेखक रहे। वे दशकों तक एक लक्ष्य रूप में साहित्य साधना करते रहे। डा० वर्मा लेखकीय प्रतिभा में अलग—अलग विधाओं में अलग—अलग रूप में उभर कर सामने आये हैं। वे कवि, एकांकीकार, नाटककार, सम्पादक, समीक्षक, आलोचक आदि रूपों में साहित्य सर्जना करते रहे। डॉ० वर्मा ने जब नाटक के क्षेत्र में पदार्पण किया तो वे हिन्दी एकांकी के जनक माने गए और अब तक डेढ़ सौ के लगभग ऐतिहासिक,

सांस्कृतिक, पौराणिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक कथा—वस्तुओं पर रंगमंचीय एकांकियों की रचना कर चुके हैं। जब वे एकांकी से पूर्णकालिक नाटकों की ओर उन्मुख होते हैं तो यहाँ भी वे उसी सर्जनात्मक ऊर्जा और कलात्मकता से नाट्य सृष्टि करते हैं।[६] डॉ० रामकुमार वर्मा ने कवि, नाटककार एकांकीकार, आलोचक आदि रूपों में हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है।

नाटक

डॉ० रामकुमार वर्मा नाटकों के माध्यम से भारतीय सांस्कृति को सामने लाना चाहते थे। नाटकों की ओर डॉ० वर्मा का रुझान एकाएक नहीं हो गया। डॉ० वर्मा अपने बचपने से ही नाटकों में अभिनय किया करते थे। अभिनय करते वक्त पात्रों के संवादों, उनकी मनोवैज्ञानिक स्थिति को लेकर उनके मन में हलचल मची रहती । वे पात्रों के कथोपकथन को और अधिक प्रभावशाली बनाने की बात सोचते रहते । इसी क्रम में धीरे—धीरे वे नाट्य रचनाओं की ओर मुड़ गये। डॉ० वर्मा के नाटकों को मुख्यरूप से निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१ — ऐतिहासिक नाटक

२ — सामाजिक नाटक

३ — साहित्यिक नाटक

डॉ० वर्मा भारतीय सांस्कृति को कोने—कोने में पहुँचाना चाहते थे। भारतवर्ष की कीर्ति उसके इतिहास में दबी छिपी थीं। इसी शौक के कारण वे ऐतिहासिक नाटकों की रचना की ओर प्रवृत्त हुए। यदि वर्माजी के ऐतिहासिक नाटकों का भी वर्गीकरण किया जाये तो हमें इसमें भी कई स्वरूप प्राप्त होंगे—

अ — बौद्धकालीन व जैनकालीन नाटक

ब — हिन्दूकालीन नाटक

स — मुस्लिमकालीन नाटक

द — अंग्रेजकालीन नाटक

य — स्वतंत्रता के बाद के नाटक[७]

बौद्धकालीन व जैनकालीन नाटकों की रचना करते समय डॉ० वर्मा ने महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी को केन्द्र में रखा है। 'ई० पूर्व ६०० से ई० पूर्व २६१ तक के एतिहासिक कथानकों को वर्माजी अपने नाटकों के विषय के रूप में चुना। इस कालखण्ड से सम्बन्धित रचे गये नाटक हैं—

१. जय वर्धमान २. कला और कृपाण ३. अग्नि शिखा

४. विजय पर्व ५. अशोक का शोक ६. गौतम बुद्ध[८]

हिन्दूकालीन नाटकों की रचना करते समय डॉ० वर्मा ने हिन्दू राजाओं से सम्बन्धित घटनाओं को अपने नाटकों का विषय बनाया है। इन नाटकों में इतिहास की प्रसिद्ध घटनाएं केन्द्र में रहीं हैं। 'सातवी शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के मध्य के हिन्दु राजाओं से सम्बन्धित कथानकों का चयन कर डॉ० वर्मा ने १. जय आदित्य २. सत्य का स्वप्न नाटकों की रचना की।'[९]

'मुस्लिमकालीन नाटकों की रचना में डा० वर्मा ने सन् १५६१ से लेकर सन् १६७९ तक के कालखण्ड के राजाओं से सम्बन्धित घटनाओं का चयन किया है। इसमें १. सारंग स्वर २. महाराणा प्रताप ३. जौहर की ज्योति नाटक हैं।[१०]

अंग्रेजकालीन नाटकों की रचना में डॉ० वर्मा ने मात्र एक नाटक की रचना की है। इस कालखण्ड से घटनाओं का चयन कर डॉ० वर्मा ने एकमात्र नाटक 'नाना फड़नवीस' की रचना की है।

स्वतंत्रता के बाद के नाटकों में भारत और पाकिस्तान युद्ध के बाद नये बने देश बांग्लादेश को लेकर एक नाटक की रचना डॉ० वर्मा ने की थी।

'जय बांगला' नाटक में डा० वर्मा ने उन ऐतिहासिक क्षणों में रचा था जब भारतीय सेना ने पाकिस्तान की सेना को परास्त कर अशोक चक्रांकित तिरंगा झंडा ढाका में फहरा दिया था।'[११]

डॉ० वर्मा ने अपने नाटकों की रचना करते समय उसके रंगमंचीय विधान को भी ध्यान में रखा है। नाटकों की रचना इस प्रकार से की गयी है कि वे रंगमंच की जटिलता से दूर रह कर सरलता की ओर जा सकें। इसमें देशकाल और वातावरण के साथ—साथ पात्रों की वेशभूषा और संवाद योजना को भी विशेष महत्व दिया गया है। नाटक की आत्मा के रूप में डॉ० वर्मा रस सिद्धान्त के साथ मनोविज्ञान के सहभाव पर बल देते हैं। वे कहते हैं कि रस का स्थान आज मनोविज्ञान ने ले लिया है। मैं दोनो के समन्वय का पक्षपाती हूँ।

डॉ० वर्मा ने नाटकों में भारतीय संस्कृति को दर्शाने का प्रयास अधिक से अधिक किया है। इसी कारण उनके नाटकों में इतिहास, संस्कृति एवं राष्टीयता से ओत—प्रोत भारतीयता का स्वर प्रमुखता से मिलता है। जयशंकर प्रसाद के बाद डॉ० वर्मा हिन्दी के सशक्त ऐतिहासिक नाटककार के रूप में सामने आये हैं। इतिहास के प्रति व्यापक दृष्टिकाण एवं समझ रखने के कारण डॉ० वर्मा ने अपने नाटकों में इतिहास को साकार एवं जीवंत बना दिया है।

डॉ० वर्मा का नाटक संसार[१२] —

१. शिवाजी — १९४५

२. कौमुदी महोत्सव — १९४९

३. विजय पर्व — १९५४

४. कला और कृपाण — १९५८

५. अशोक का शोक — १९६७

६. जौहर की ज्योति — १९६७

७.	सत्य का स्वप्न	—	१९६७
८.	महाराजा प्रताप	—	१९६७
९.	नाना फड़नवीस	—	१९६९
१०.	सारंग —स्वर	—	१९७०
११.	पृथ्वी का स्वर्ग	—	१९७१
१२.	जय बांग्ला	—	१९७१
१३.	अग्निशिखा	—	१९७१
१४.	संत तुलसीदास	—	१९७३
१५.	जय आदित्य	—	१९७३
१६.	जय वर्धमान	—	१९७४
१७.	जय भारत	—	१९७५
१८.	भगवान बुद्ध	—	१९७५
१९.	समुद्रगुप्त पराक्रमांक	—	१९७८
२०.	सम्राट कनिष्क	—	१९७८
२१.	देवीश्री आहिल्याबांई	—	१९८०
२२.	स्वयंवरा	—	१९८०
२३.	अनुशासन पर्व	—	१९८०
२४.	मालव कुमार भोज	—	१९८१
२५.	कुन्ती का परिताप	—	१९८३
२६.	सरजा शिवाजी	—	१९८५
२७.	कर्मवीर	—	१९८५
२८.	वत्सराज उदयन	—	१९८५

एकांकी

डॉ० वर्मा भारतीय मनीषा के संस्कृति पुरुष थे। हिन्दी साहित्य को उनकी कृतियों से अपना खजाना समृद्ध करने में मदद मिली है। डॉ० वर्मा ने प्रभावपूर्ण एकांकियों की रचना कर हिन्दी एकांकी संसार को समृद्ध किया। इसी कारण से बिना किसी दोराय के डॉ० वर्मा को एकांकी का जनक स्वीकारा गया है। डॉ० वर्मा ने एकांकियों को विषय के रूप में लगभग सभी विषयों पर लिखा है। अपने अनूठे नाट्य—शिल्प के कारण वर्मा जी के एकांकी रंगमंच के सर्वथा अनुकूल रहे।

डॉ० रामकुमार वर्मा के एकांकियों को विषय की दृष्टि से निम्न वर्गों esa foHkDr fd;k tk ldrk gS[१३]

१— ऐतिहासिक एकांकी
२— सामाजिक एकांकी
३— पौराणिक एकांकी
४— वैज्ञानिक एकांकी
५— साहित्यिक एकांकी
६— दार्शनिक एकांकी
७— आध्यात्मिक एकांकी
८— जीवनीपरक एकांकी
९— हास्य एकांकी
१०— चित्र एकांकी
११— विचित्र एकांकी
१२— रेडियो एकांकी
१३— समस्यायुक्त एकांकी

पूर्णकालिक नाटकों की अपेक्षा एकांकी की रचना में नाटककार को विशेष सजगता और जागरूकता बरतनी होती है। डॉ० वर्मा ने भी यह ध्यान रखा है कि एकांकी समय और पात्रों की दृष्टि में लम्बे न हो जायें। इसके साथ—साथ डॉ० वर्मा ने एकांकी की रचना करते समय इस बात का भी ध्यान रखा है कि वे विषय की दृष्टि से भारतीय संस्कृति और सम्मान के प्रतिकूल न हों।

हिन्दी एकांकी संसार में यदि डॉ० वर्मा एकांकी के जनक हैं तो

उसी के साथ—साथ वे एकांकी सम्राट भी हैं। संख्या की दृष्टि से लगभग डेढ़ सौ एकांकियों की रचना डॉ० वर्मा ने की है। इतने अधिक एकांकी किसी अन्य लेखक द्वारा नहीं रचे गये हैं। उनके एकांकी संग्रहों की सूची निम्नवत है—[१४]

१. पृथ्वीराज की आँखें — १९३५

२. रेशमी टाई — १९४१

३. चारूमित्रा — १९४२

४. शिवाजी — १९४२

५. सप्तकिरण — १९४७

६. रूपरंग — १९४८

७. कौमुदी महोत्सव — १९४९

८. ध्रुवतारिका — १९५०

९. रम्यरास — १९५०

१०. ऋतुराज — १९५१

११. रजत रश्मि — १९५२

१२. दीपदान — १९५३

१३. रिमझिम — १९५५

१४. पांचजन्य — १९५७

१५. साहित्यिक एकांकी — १९५८

१६. मेरे सर्वश्रेष्ठ एकांकी — १९५८

१७. मयूर पंख — १९६५

१८. ललित एकांकी — १९६६

१९. इतिहास के स्वर — १९६९

२०. अमृत की खोज — १९७१

२१. खट्टे–मीठे एकांकी — १९७३

२२. बहुरंगी एकांकी — १९८२

२३. चित्र एकांकी — १९८३

२४. समाज के स्वर — १९८४

काव्य

डॉ० रामकुमार वर्मा यद्यपि नाट्य विधा के कारण भारतीय हिन्दी साहित्य की धरोहर रहे हैं परन्तु उनका कवि रूप भी उतना आलोकित था जितना कि उनका नाटककार स्वरूप। 'प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, रामकुमार और भगवतीचरण — इन पंच स्वरों ने हिंदी काव्य जगत् में नवगति और नवचेतना का संचार किया।'[१५] डॉ० वर्मा की विशेषता यह रही है कि जितने कोमल, सरस भावों का सम्मिश्रण वे गीतों की रचना में करते थे उतनी कोमलता और मधुरता से उसका गायन भी करते थे।

डॉ० वर्मा सुन्दरम के कवि रहे। प्रेम, सौन्दर्य, रूप और रहस्य की चतुर्धारा के साथ डॉ० वर्मा का काव्य संसार पाठकों–श्रोताओं को आनन्दित करता रहा। 'डॉ० वर्मा की प्रथम काव्य कृति वीर हम्मीर सन् १९२३ में प्रकाशित हुई थी और तब से लेकर सन १९८८ तक उनका कवि सत्रह रचनायें साहित्य संसार को दे चुका; जिनमें गीत संग्रह हैं, खण्ड काव्य हैं और महाकाव्य हैं।'[१६]

डॉ० वर्मा की लम्बी काव्य यात्रा में प्रचुर वैविध्य विद्यमान हैं। उनके समग्र काव्य संसार को तीन भागों में बाँटा जा सकता है —

१. मुक्तक रचनाएँ — गीति–काव्य

२. प्रबन्धात्मक रचनाएँ — खण्ड–काव्य

३. प्रबन्धात्मक रचनाएँ — महाकाव्य

गीति काव्य

डॉ० वर्मा ने छायावादी युग के गीतकारों में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। उनके गीत—काव्यों में मानव मन की वेदना, प्रफुल्लता, उल्लास आदि सभी कुछ मिलता है। डॉ० वर्मा ने अपने गीति—काव्य में प्रेम एवं सौन्दर्यमूलक गीत, राष्ट्र—प्रेम सम्बन्धी गीत, रहस्यवादी गीत,रूपक गीत आदि प्रमुखता से मिलते हैं। डॉ० वर्मा अपने काव्य में कोमलकांत छोटे—छोटे शब्दों का प्रयोग आलंकारिकता के साथ करते थे। इससे उनका काव्य जनसाधारण के मध्य भी लोकप्रिय रहा ।

प्रबन्धात्मक रचनाओं में डॉ० वर्मा ने महाकाव्य तथा खण्ड—काव्य की रचना की है। 'खण्ड—काव्य के रूप में डॉ० वर्मा ने तीन खण्ड काव्यों—वीर हम्मीर, चित्तौड़ की चिता, अभिशाप— की रचना की है।[१७] इसमें वीर हम्मीर डॉ० वर्मा का प्रथम खण्ड—काव्य है।

तीन खण्ड काव्यों की रचना कर कवि रूप में सफल सिद्ध होने वाले डॉ० वर्मा ने तीन महाकाव्यों की रचना की। 'इनके द्वारा प्रणीत तीन महाकाव्य हैं—एकलव्य, उत्तरायण, ओ अहल्या।[१८] चूँकि डॉ० वर्मा भारतीय संस्कृति से हमेशा प्रभावित रहे और अपने लेखन में हमेशा इतिहास को कल्पना के सम्मिश्रण से प्रस्तुत करते रहे। यही कारण है कि उनके तीनों खण्ड काव्य और तीनों महाकाव्यों में ऐतिहासिक घटनाओं की उपस्थिति रही।

डॉ० वर्मा के काव्य संसार को निम्नवत समझा जा सकता है—[१९]

गीतिकाव्य

१.	अंजलि	—	१९३०
२.	निशीथ	—	१९३२
३.	रूपराशि	—	१९३३
४.	चित्ररेखा	—	१९३५

५. चन्द्रकिरण — १९३७

६. आधुनिक कवि.३ — १९३९

७. संकेत — १९४८

८. आकाशगंगा — १९४९

९. कृतिका — १९६६

१०. ये गजरे तारों वाले — १९६६

११. संत रैदास — १९७८

खण्ड काव्य

१. वीर हमीर — १९२३

२. चित्तौड़ की चिता — १९२९

३. अभिशाप — १९३०

महाकाव्य

१. एकलव्य — १९५७

२. उत्तरायण — १९६७

३. ओ अहल्या — १९८५

अन्य

हिन्दी साहित्य में डॉ० रामकुमार वर्मा का नाम अग्रिम पंक्ति में आता है.। डॉ० वर्मा ने साहित्य में अपनी लेखनी के द्वारा हिन्दी साहित्य को नाटक, एकांकी, काव्य, समालोचना, शोध ग्रंथ आदि दिए। हिन्दी साहित्य के इतिहास को समझने के पश्चात उसे साहित्य के विद्यार्थियों के लिए डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' नामक ग्रंथ में भक्ति काल तक की सामग्रीं प्रस्तुत की है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने मात्र नाट्य साहित्य की रचना ही नहीं की। कबीर के व्यक्तित्व, रचनाओं का गहन अध्ययन कर कबीर के ऊपर भी ग्रंथ की रचना कर अध्यापकों और विद्यार्थियों का भला किया। कबीर विषयक डॉ० वर्मा d snksx ak gS& 1- d chj d k jgL;okn 2- l a d chjA[२०]

डॉ० वर्मा ने संस्मरणों से सम्बन्धित भी रचनाएं हिन्दी साहित्य को दीं। 'संस्मरण — साहित्य से सम्बन्धित डॉ० वर्मा की तीन कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं— १. हिमहास २. स्मृति के अंकुर ३. संस्मरणों के सुमन। इन रचनाओं में वर्मा ने अपने जीवन से सम्बन्धित अनेक स्मृतियों और संस्मरणों का वर्णन सरल और ललित भाषा में किया है।[२१]

डॉ० वर्मा ने साहित्य—सर्जना के साथ—साथ हिन्दी की विभिन्न कक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों का भी सम्पादन किया। ये पुस्तकें निम्नंवत् हैं—[२२]

१. हिन्दी गीति काव्य	२. कबीर पदावली
३. गद्य परिचय	४. आधुनिक काव्य संग्रह
५. आधुनिक हिन्दी काव्य	६. गद्य गौरव
७. काव्यांजलि	८. काव्य कुसुम
९. सरल एकांकी नाटक	१०. हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों की विवरणात्मक सूची

डॉ० रामकुमार वर्मा के नाट्य—साहित्य, काव्य—संसार और संपादित उक्त पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य सृजित ग्रंथों, पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित हैं—[२३]

शोध ग्रंथ

१.	कबीर का रहस्यवाद	—	१९३१
२.	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	—	१९३८

३. सन्त कबीर — १९४७

४. साहित्य—शास्त्र — १९५७

५. रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन — १९८४

आलोचनात्मक ग्रंथ

१. साहित्य —समालोचना — १९३०

२. हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन — १९४७

३. विचार —दर्शन — १९४८

४. समालोचन समुच्चय — १९४९

५. एकांकी कला — १९५२

६. अनुशीलन — १९५७

७. साहित्य चिन्तन — १९६५

८. कबीर : एक अनुशीलन — १९८८

९. कबीर: बायोग्रैफी एण्ड फिलासफी (अंग्रेजी में)

संस्मरण

१. हिम—हास — १९३६

२. स्मृति के अंकुर — १९३०

३. संस्मरणों के सुमन — १९८२

डॉ० वर्मा ने संस्कारों, संस्कृति के साथ अपना साहित्य संसार रचा। डॉ० वर्मा ने अपनी रचनाओं में हमेशा यथार्थ का चित्रण किया परन्तु इसे वे विद्रूपता से बचाते रहे। 'एकलव्य' महाकाव्य के द्वारा किसी अछूत को नायक बना कर प्रस्तुत करने का साहस डॉ० वर्मा जैसा लेखक ही कर सकता था।

डॉ० वर्मा ने अपने नाटकों, एकांकियों, काव्य—रचनाओं के साथ—साथ अन्य ग्रंथों के द्वारा हिन्दी साहित्य को समृद्ध ही किया है। नि:संदेह डॉ० वर्मा

ऐसे साहित्यकार कहे जा सकते हैं जिन्होंने अपनी लेखनी के सहारे इतिहास जैसे कठिन और नीरस विषय को सरलता, सरसता के साथ प्रस्तुत कर आम पाठकों के मध्य भी ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों को जीवन्त बना दिया। डॉ० वर्मा के साहित्य संसार और उनकी युगचेतना प्रतिभा से युगों—युगों तक हिन्दी साहित्य—आकाश में नक्षत्र की भाँति जगमगाते रहेंगे।

सन्दर्भ सूची

१. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली (भाग—३)— सं०:डॉ० कमलकिशोर गोयनका एवं डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, पृ० ४४२

२. वही, पृ० ४४२

३. वही, पृ० ४४४

४. वही, पृ० ४५०

५. रामकुमार वर्मा एकांकी रचनावली (भाग—१) — सं०:डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, पृ० ४२/४५

६. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली (भाग—१) — सं०:डॉ० कमलकिशोर गोयनका एवं डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, पृ० ०६

७. डॉ० रामकुमार वर्मा की साहित्य साधना — डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, पृ० १३५

८. वही, पृ० १३५

९. वही, पृ० १३६

१०. वही, पृ० १३६

११. वही, पृ० १३८

१२. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली (भाग—२) — सं०:डॉ० कमलकिशोर गोयनका एवं डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, पृ० ४८२

१३. रामकुमार वर्मा एकांकी रचनावली (भाग—१) — सं०:डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा

१४. वही, पृ० १०

१५. डॉ० रामकुमार वर्मा की साहित्य साधना — डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, पृ० ५४

१६. वही, पृ० ५६

१७. वही, पृ० ७७

१८. वही, पृ० ९१

१९. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली (भाग—३) — सं०:डॉ० कमलकिशोर गोयनका एवं

डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, पृ० ४८१

२०. डॉ० रामकुमार वर्मा की साहित्य साधना — डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, पृ० १७०

२१. वही, पृ० १७१

२२. वही, पृ० १७१

२३. रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली (भाग—३) — सं०:डॉ० कमलकिशोर गोयनका एवं

डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, पृ० ४८४

तृतीय अध्याय

मानवीय सौन्दर्य

(क) पुरुष सौन्दर्य

(ख) नारी सौन्दर्य

(ग) बाल सौन्दर्य

(घ) मानवेतर चेतन जगत्
अर्थात् पशु पक्षी आदि

मानवीय सौन्दर्य

साहित्यकारों ने हमेशा ही साहित्य रचना में सौन्दर्य को विशेष महत्त्व दिया है। सौन्दर्य के प्रति विशेष रुचि होने के कारण साहित्यकारों ने सौन्दर्य को विविध रूपों में दर्शाया है। कहीं उसने सौन्दर्य के प्रदर्शन के लिए प्रकृति का चयन किया है तो कहीं उसको मानवीय स्वरूप अधिक पसंद आया है। संसार में वैसे भी मानव परमात्मा की सर्वोत्तम कृति है। इसी मानव ने कभी प्रकृति को तो कभी मानव को सौन्दर्य परिधि में रख कर साहित्य संसार की रचना की है। कविवर पंत ने प्रकृति को सुन्दर मानते हुए भी सृष्टि में मानव को सुन्दरतम माना है। जन्म से ही माँ की ममतामयी थपकियाँ, पिता का स्नेहिल अनुशासन मानव का विकास करता है। अपने विकास के उत्तरोत्तर क्रम में वह समाज के विविध अंगों के सम्पर्क में आता है और इसी सम्पर्क के कारण वह मानव के विभिन्न रूपों की ओर आकर्षित होता है। इसी सौन्दर्यानुभूति के कारण वह मानवीय सौन्दर्य में भी प्रकृतिगत सुषमा का और प्राकृतिक सौन्दर्य में मानवीय सौन्दर्य का आरोपण करता है।

साहित्य में मानवीय रूप चित्रण की परम्परा बहुत पुरानी है। आदिकाल से लेकर वर्तमान आधुनिक युग तक कलाकारों, साहित्यकारों ने मानवीय सौन्दर्य के विविध स्वरूपों की ललित अभिव्यक्ति की है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी अपने नाट्य—साहित्य में अपने पात्रों के द्वारा मानवीय सौन्दर्य को निरूपित करने का प्रयास किया है। वर्माजी यद्यपि नाटकों के अभिनीत करने को सर्वोपरि स्वीकारते थे फिर भी वे अपने पात्रों के सौन्दर्य को यथासंभव सामने रख पाये हैं। वर्माजी के नाट्य— साहित्य के पात्रों के मास स्वयं को अभिव्यक्त करने का एकमात्र साधन संवाद रहे हैं। इन संवादों के द्वारा वर्माजी के पात्रों का आन्तरिक सौन्दर्य

निरूपण हो सका है। बाह्य सौन्दर्य को वर्माजी ने कथा के अनुसार वेशभूषा के माध्यम से दर्शाया है। नाटकों, एकांकियों में पात्रों के विस्तार की संभावना कम होती है। यदा कदा उनकी स्थिति, दृश्यात्मकता चित्रित करने की दृष्टि से ही वर्माजी ने पात्रों के सौन्दर्य निरूपण को दर्शाया है। पुरुष, स्त्री तथा बच्चे विविध पात्रों के रूप में वर्माजी के नाट्य—साहित्य में पाठकों के सामने आते रहे हैं और प्रत्येक के सौन्दर्य को वर्माजी ने अपनी दृष्टि से सौन्दर्य प्रदान करने का प्रयास किया है।

(क) पुरुष सौन्दर्य

'पुरुष और प्रकृति के सहयोग से ही इस अनन्त सौन्दर्यमयी सृष्टि की रचना हुई है।'[१] आदिकाल से लेकर वर्तमान तक इस सृष्टि का परिचालन स्त्री और पुरुष के सहयोग से ही होता आ रहा है। यदि एक ओर नारी को कोमलता की प्रतिमूर्ति स्वीकारा गया है तो पुरुष का सौन्दर्य उसके पुरुषत्व में है। यदि पुरुष की विशालता का आश्रय पाकर नारी का मृदु—मधुर मन विकास पाता है तो पुरुष का सौन्दर्य भी नारी की कोमलता का स्पर्श पाकर विकसित होता है।

साहित्यकार का भावुक मन पुरुष सौन्दर्य के प्रति भी अभिभूत होता रहा है। नारी की कोमलता को अपने पुरुषत्व का आधार प्रदान करने वाले पुरुष सौन्दर्य की ओर आकर्षित होकर सौन्दर्यप्रेमी साहित्यकार ने पुरुष सौन्दर्य का चित्रण भी किया है। वैदिक काल में वर्णित देव सौन्दर्य वर्णन के द्वारा पुरुष सौन्दर्य चित्रण की परम्परा का आविर्भाव हो गया था। हिन्दी साहित्य में भी प्रत्येक युग में पुरुष सौन्दर्य का चित्रण साहित्यकारों ने किया है। आदिकाल में पुरुष सौन्दर्य उसके शौर्य एवं वीरता के गुणों द्वारा अभिव्यक्त हुआ है वहीं भक्तिकाल में वह ईश्वरीय गुणों एवं अलौकिकता से विभूषित होकर अवतरित हुआ। रीतिकालीन साहित्य में एक ओर जहाँ वासनात्मक पुरुषों, दरबारी, विलासी

पुरुषों का अंकन किया गया वहीं दूसरी ओर शिवाजी, छत्रसाल आदि वीर पुरुषों के आन्तरिक गुणों के दिव्य सौन्दर्य को प्रतिष्ठित किया गया था। यह अवश्य है कि हिन्दी साहित्य में नारी सौन्दर्य की परम्परा पुरुष सौन्दर्य की अपेक्षा अधिक समृद्ध रही है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नाट्य—साहित्य में जहाँ संभव हो सका है वहाँ पुरुष सौन्दर्य अभिव्यक्त किया है। उनके नाट्य—साहित्य में ऐतिहासिक तथा सामाजिक नाटक एवं एकांकी हैं। इसी कारण उनके पुरुष पात्रों में यदि राजा, शासक, सेनापति, मंत्री, सैनिक, दास, राजगुरु आदि आये हैं तो आम आदमी, प्रोफेसर, वैज्ञानिक, लुटेरे, ऋषि, साधू—संत भी आये हैं। वर्माजी के ये सारे पात्र अपनी स्वाभाविकता को स्थापित करते हुए अपने सौन्दर्य का दर्शन पाठकों को करवाते हैं। वर्माजी के पात्रों ने बाह्य सौन्दर्य से पाठकों को अभिभूत तो किया है वहीं संवादों के माध्यम से प्रकट होने वाले उनके आन्तरिक सौन्दर्य से भी पाठक अभिभूत हुए हैं।

१. बाह्य सौन्दर्य

डा० रामकुमार वर्मा ने अपने नाट्य—साहित्य में पात्रों का बाह्य सौन्दर्य नाटक की कथा के अनुरूप ही विकसित किया है। जहाँ जैसा अवकाश लेखक को प्राप्त हुआ है उसी के अनुसार पात्रों के बाह्य सौन्दर्य को वेशभूषा आदि के माध्यम से चित्रित किया है। डॉ० रामकुमार वर्मा के एतिहासिक पुरुष पात्र रहे हों अथवा सामाजिक नाटकों के पुरुष पात्र सभी अपनी उपस्थिति के आधार पर सौन्दर्य से विभूषित किये गये हैं। राजा महाराजाओं के रूप में 'चन्द्रगुप्त'[२] 'सम्राट अशोक'[३] 'समुद्रगुप्त'[४] 'श्रीमंत मल्लहारराव'[५] 'औरंगजेब'[६] का सौन्दर्य चित्रण हो अथवा राजकुमारों के सौन्दर्यबोध को दर्शाते 'अजीत सिंह'[७] 'देवदत्त'[८] आदि हों सभी में वर्माजी ने कथा संचालन की दृष्टि से सौन्दर्य आरोपित किया है। ये

पात्र नाट्य कथा के अनुसार दृश्य चित्रण करने के साथ—साथ पाठकों को सौन्दर्य बोध भी कराते हैं। राजा—शासकों, राजकुमारों के अतिरिक्त डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'सेनापति दुर्गादास'[९] सहित अन्य 'अधिपतियों' 'सैनिकों'[१०] की वेशभूषा के साथ उनका सौन्दर्य दर्शाने का प्रयास किया है।

राजाओं, सेनापतियों आदि के सौन्दर्यबोध को चित्रित करने के अतिरिक्त डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने सामाजिक नाट्य—साहित्य के सामान्य व्यक्तियों की वेशभूषा के द्वारा उनका भी सौन्दर्य वर्णन किया है। इसमें 'अध्यापक'[११] 'आम आदमी दीनबन्धु'[१२] 'प्रोफेसर'[१३] 'पत्रकार'[१४] आदि के परिधान सम्बन्धी सौन्दर्य को दर्शाने के साथ—साथ नवयुवकों की परिधान शैली को भी चित्रित किया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने पात्रों के बाह्य सौन्दर्य को दर्शाने में मात्र परिधानों का सहारा लिया है। परिधानों को पात्रों की स्थिति के अनुसार चित्रित कर उनका सौन्दर्य बोध सभी के समक्ष रखा है। नाट्य शैली की सीमाओं के कारण दृश्यांकन में पात्रों का परिचय पाठकों को देते समय वर्माजी ने उनके सौन्दर्य को उभारने का प्रयास किया है। पात्रों की स्थिति के अनुसार वर्माजी पात्रों की वेशभूषा का चित्रण देशकल के अनुसार करने में सफ़ल रहे हैं। कुसुमपुर के मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त नन्दवंश को पराजित करने के बाद अपने राज्य में वापस आते हैं। वापसी के इस गौरवशाली क्षण पर सारी प्रजा अपने प्रिय सम्राट को देखंने हेतु लालायित है। विजयोन्माद में डूबी जनता, सेना के साथ सम्राट चन्द्रगुप्त की वेशभूषा, शारीरिक हाव—भाव उनको प्रकीर्णित करता है। 'विस्तीर्ण ललाट, उठी हुई नासिका—और बड़े—बड़े अरुण नेत्र। उनकी भौंहों में स्वाभाविक रूप से बल पड़े हुए हैं जैसे दृष्टि के ऊपर आकांक्षाएँ वक्र के होकर दुहरी हो गई हैं। घुँघराले मुक्त केशों पर मुकुट है जिसकी कलंगी सिर के हिलने मात्र से लज्जाशील नारी की दृष्टि की भाँति झुक जाती है। भुज—दण्डों में शक्ति का संचय है, ज्ञात

होता है जैसे वे राज्य के मेरू—दण्ड हैं। सैनिकों जैसा वेश, हृदय पर मोतियों की माला, कमर में मखमली म्यान के भीतर खंग! बड़ा उत्साहपूर्ण वेश—विन्यास है उनका।'[१५] सम्राट चन्द्रगुप्त का विजयोन्मत्त होकर ऐसी वेशभूषा में राज्य आगमन का चित्रण नाटक के एक दृश्य को चित्रित करने के साथ—साथ सौन्दर्य की अभिव्यक्ति भी करता प्रतीत होता है।

राजाओं, महाराजाओं की प्रतिष्ठा के अनुरूप डॉ० वर्मा वेशभूषा का सौन्दर्यपरक चित्रण करने में महारथ हासिल किये थे। डॉ० वर्मा को इतिहास की विषय— वस्तु का, देशकाल, वातावरण का भी ज्ञान था। इसी कारण वे अपने पात्रों के साथ सदैव न्यायोचित स्थिति में दिखे हैं। सम्राट अशोक की स्थिति को दर्शाने में भी डॉ० वर्मा ने कहीं कमी नहीं रखीं हैं। 'माँसपेशियों से गठा शरीर। मुख पर तेज और नेत्रों में आकर्षण। स्वर में स्पष्टता और वज्र जैसी दृढ़ता। अंशुक की कसी हुई धोती पहिने हुए हैं जिसके कमर के समीप भाग में हंस—मिथुन के चिन्ह हैं। कंधों को ढकती हुई तथा बाँयी बाहु पर होती हुई रेशमी चादर है, जिसमें रत्नों के फुँदने लगे हुए हैं। चीनांशुक के बने हुए डोरी वाले कमरबंद, जिनके सिरे छाती के समीप रत्न कंटक से कसे हुए हैं। शीर्षपट के साथ एक मयूरपक्ष के रंग का उष्णीष जिसके दोनों ओर एक एक मोती की माला बँधी हुई है। पैर में तिपटल मंजीठ रंग के उपानह। हाथ में कृपाण।'[१६] सम्राट अशोक की वेषभूषा का यह चित्रण भले ही शारीरिक सौन्दर्य की पूर्ति न करवाता हो पर तत्कालीन वातावरणीय परिधान के सौन्दर्य को भली भाँति चित्रित करता है।

मराठा राज्य के शासकों, सूबेदारों का चित्रण करते समय डॉ० वर्मा ने पात्रों के शारीरिक सौन्दर्य का निरूपण उनकी वेशभूषा के आधार पर ही किया है। होल्कर राज्य के सूबेदार श्रीमंत मल्लहारराव का सौन्दर्य चित्रण करते समय

वर्माजी ने उनकी वेशभूषा, रत्न, मुक्ता, मणियों, पगड़ी आदि का सौन्दर्य दर्शाते हुए श्रीमंत की प्रतिष्ठा को सुशोभित किया है। 'मल्लहाराव मोतियों की माला से सजी पगड़ी पहने हुए हैं। माथे पर तीखे रेखाओं में खींचा हुआ त्रिपुण्ड है। आँखों में विशेष चमक, लम्बी नाक, चौड़ी मूँछें जो गालों पर जाकर गुच्छे में धूम जाती हैं। कानों में मोती के कुण्डल, गले में मोतियों की तीन लड़ों की माला—सामने तीन पदिक हैं। जरी के फूलों का अंगरखा जो छाती के पास तनियों से कसा हुआ है— कसा हुआ पैजामा। कमर में मखमली म्यान में सजी हुई तलवार।'[१७]

डॉ० वर्मा ने मल्लहारराव का वेशभूषापरक चित्रण इस प्रकार किया है कि वे सूबेदार प्रतीत होते भी हैं। श्रीमंत मल्लहारराव के साथ ही रिश्तेदार मणकोजी शिन्दे का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्म रूप में किया गया है इसके पीछे नाट्य— शैली के प्रतिबन्धों का पालन करना प्रमुख रहा होगा। दृश्य— विधान के अनुसार मुख्य पात्र को विस्तृत रूप में चित्रित किया गया है। अन्य पात्रों के रूप में मराठा राज्य के ही मणकोजी शिंदे को उनके 'माथे पर त्रिपुण्ड और सिर पर पगड़ी सफेद अंगरखा और गले में सेल्ही'[१८] मात्र से सुशोभित दिखाया है।

डॉ० वर्मा पात्रों की शारीरिक स्थिति को उनकी स्थिति के अनुसार प्रदर्शित करते हैं। राज्य करते राजाओं की सौन्दर्याभिव्यक्ति में वेशभूषा, परिधानों, आभूषणों को यदि प्रभावोत्पादक दर्शाया है तो बन्दीगृह में राजाओं की शारीरिक स्थिति, वेशभूषा को उसी स्थिति के अनुरूप दर्शाया है। मुगल शासक औरंगज़ेब को दोनों रूपों में डा० वर्मा ने चित्रित किया है। एक ओर जहाँ वह शासक के रूप में शिवाजी को कैद कर लेता है तब उसकी वेशभूषा और शरीरिक हावभाव रौबदार होते हैं पर समय के साथ आगे बढ़ते जब वह स्वयं कैद में डाल दिया जाता है तो उसकी स्थिति उलट हो जाती है।

शासक के रूप में 'औरंगजेब के शरीर पर तुर्रेदार जरी की पगड़ी,

जरीदार सफेद शेरवानी और पैजामा, पैर में रत्न जटित जूते और कम में तलवार हैं। फुँदनेदार कमरबंद जिसमें कटार खुसी हुई है'[१९] का यह चित्रण उसके रोब का सौन्दर्य दर्शाता है।

इस तरह की सौन्दर्यपरक स्थिति के ठीक उलट राज्य की जर्जर स्थिति, सेना की अनुशासनहीनता, आर्थिक संकट आदि के साथ औरंगजेब की वृद्धावस्था ने उसके रोब, सौन्दर्य को मलीन कर दिया था। ८९ वर्ष की अवस्था में वह बीमार अहमदनगर के किले में पड़ा रहता है। दुबला पतला शरीर कटी छटी सफेद दाढ़ी। नाक लम्बी, किन्तु वृद्धावस्था के कारण कुछ झुकी हुई। सफेद लम्बा कुर्ता पहने हुए है जो रेशमी तनी से दाहिने कंधे पर कसा हुआ है। गले में मोतियों की एक बड़ी माला पड़ी हुई है। जिसके मध्य में एक बड़ा नीलम जड़ा है। हाथ में तसबीह है।'[२०] औरंगजेब का एक ओर सौन्दर्य का सकारात्मक मोहक स्वरूप प्रस्तुत करता चित्रण है वहीं दूसरी ओर उसकी कृशकाय स्थिति की दयनीयता दर्शाता चित्रण है। वर्माजी ने दोनों अलग—अलग स्थितियों को अलग—अलग तरीके से परिभाषित कर बाह्य सौन्दर्य के विभेद को भी प्रस्तुत किया है।

कैदी, राजाओं की स्थिति को वर्माजी ने दृश्य—विधान के अनुसार चित्रित किया है। राजाओं की स्थिति के अनुसार उनका शारीरिक सौष्ठव और मनोदशा को चित्रित किया गया है। राजा पृथ्वीराज चौहान को शहाबुद्दीन गोरी कैदी बना लेता है। कैद में पृथ्वीराज चौहान की वेशभूषा मैली कुचैली दर्शायी गई पर शारीरिक सौष्ठव में क्षत्रियों का जुझारूपन अभी भी बना रहता है।

'पैंतालीस वर्ष के पौढ़ व्यक्ति हैं। उनके शरीर से शौर्य अब भी फूट रहा है। चढ़ी हुई मूँछें और रोबीला चेहरा'[२१] उनके शारीरिक सौष्ठव और आत्मविश्वास का सौन्दर्य दर्शाता है वहीं 'बाल बिखरे हुए, दाढ़ीं बढ़ गई है।

वस्त्र बहुत मैले हो गये हैं। कहीं—कहीं जलने के निशान भी पड़ गये हैं। घुटनों के पास फटा हुआ चूड़ीदार पाजामा है, जिस पर रक्त के धब्बे दिखायी पड रहे हैं, पैर में पुराना जूता है,जिस पर गर्द छा रही है'[२२] के चित्रण से पृथ्वीराज की दयनीय वेशभूषा का पता चलता है।

इसी तरह कैद में पड़े वत्स राज्य के अधिपति उदयन का चित्रण वर्माजी ने उनकी मनोदशा के अनुसार ही किया है। 'पीत उत्तरीय और नील अधोवस्त्र। हृदय पर मोतियों की मालाएँ, बाहुओं में केयूर। पुष्ट शरीर, दैदीप्यमान मुखमण्डल, विस्तीर्ण मस्तक और विशाल नेत्र किन्तु उनके मुख पर उदासीनता की रेखाएँ दृष्टिगत होती हैं।'[२३] इस तरह के चित्रण से यद्यपि मनोहारी सौन्दर्य भले ही उपस्थित न होता हो पर पुरुष पात्र राजा की वास्तविक स्थिति ज्ञात होती है। सौन्दर्य का करुण पक्ष यहाँ वर्माजी चित्रित करते नजर आते हैं।

राजाओं का, शासक की स्थिति में चित्रण और बन्दी, असहाय स्थिति में चित्रण करने के साथ—साथ वर्माजी ने परिस्थितिगत राजा भरत का चित्रण अत्यंत सूक्ष्म रूप में किया है। भरत नन्दीग्राम में राजा राम की खड़ाऊँ को सिंहासन में स्थापित कर ऋषि वेश में राज्य संचालन करते रहते हैं। 'काषाय वस्त्र और कृष्ण मृग चर्म धारण किये हुए हैं! सिर पर जटाओं का जूट है। शरीर से कृश और मन से उदास हैं। देखने में सूर्य के समान तपस्वी हैं।'[२४] भरत का इस प्रकार का संक्षिप्त सूक्ष्म चित्रण भी उसके सौन्दर्य की पूर्ति के साथ दृश्य—विधान की पूर्ति करता प्रतीत होता है।

राजाओं, शासकों के साथ—साथ डॉ० वर्मा के पुरुष पात्रों में यदा कदा राजकुमारों का चित्रण भी दिखाई देता है। अन्य पात्रों के सौन्दर्य की तरह इनका सौन्दर्य बोध भी पाठकों के समक्ष दृश्य—विधान हेतु होता है। कपिलवस्तु राज्य के राजकुमार देवदत्त के सौन्दर्य का चित्रण सूक्ष्म रूप में मात्र उनकी

वेशभूषा आदि निरूपण के लिए किया गया है। 'राजसी वस्त्रों में हैं। माथे पर शिरस्त्राण। कण्ठ में कण्ठहार। रजत सूत्रों से रेखांकित पीला पाट वस्त्र,अरुण अधोवस्त्र। पैरों में उपानह। हाथ में धनुष—बाण'[२५] का चित्रण देवदत्त की उपस्थिति को ही दर्शाता है। इसी अत्यन्त लघु चित्रण में राजकुमार के सौन्दर्य को चित्रित करने का प्रयास वर्माजी ने किया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने ऐतिहासिक पात्रों के सौन्दर्य निरूपण में इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि पात्रों की पदेन स्थिति के अनुसार उनकी वेशभूषा, आभूषण आदि का सौन्दर्य स्थापित किया जा सके। राजाओं—शासकों के सौन्दर्य चित्रण में उन्होंने परिधानों, आभूषणों को महत्ता दी है वहीं राजकुमारों को साधारण राजसी वस्त्रों में दर्शाया है। मेवाड़ के उत्तराधिकारी के रूप में राजकुमार अजीत सिंह के सौन्दर्य को वर्माजी ने साधारण रूप में दर्शाकर सौन्दर्य बोध उत्पन्न करने की चेष्टा की है। 'अजीत सिंह लगभग अठारह वर्ष का नवयुवक है। केश घुँघराले और आँखे बड़ीं, प्रशस्त वक्षस्थल, जिस पर मोतियों की एक बड़ी माला झूल रही है। वह हल्के पीले रंग का एक अंगरखा और हल्के गुलाबी रंग का चूड़ीदार पाजामा पहने हुए है। पैर में जयपुरी जूते। राजस्थान का ऐश्वर्य उसके विस्तीर्ण ललाट पर अंकित है।'[२६]

डॉ० वर्मा ने ऐतिहासिक नाटकों की रचना में ऐतिहासिकता को प्रमुखता दी है। किसी भी स्थिति में उन्होंने संस्कृति, देशकाल, वातावरण आदि को तिरोहित नहीं किया है। देशकाल परिस्थितियों और प्रस्थिति के अनुसार ही उन्होंने अपने पात्रों की वेशभूषा का निर्धारण किया है एवं उनके सौन्दर्य को उभारने का प्रयास किया है। राजाओं, राजकुमारों के अतिरिक्त सैनिक, सेनापति, अधिपति भी उनके नाट्य—साहित्य का अंग रहे हैं। इनके सौन्दर्य को इनकी वेशभूषा, परिधानों, शास्त्रों के द्वारा दर्शाया गया है।

महाराष्ट्र देश के अधिपति सोनदेव की प्रतिष्ठा राज्य में, महाराज शिवाजी की दृष्टि में अत्यधिक है। इसी प्रतिष्ठा को भी दृष्टिगत रखते हुए डॉ० वर्मा ने सोनदेव के सौन्दर्य को अनुपम रूप से उभारा है। 'बलिष्ठ शरीर। चाल में गंभीरता। बड़े—बड़े नेत्र, शक्ति और साहस के प्रतीक, रेशमी वेशभूषा। लाल रंग का अंगरखा और नीले रंग का चूड़ीदार पैजामा। मराठी ढंग से पगड़ी जिसमें एक कलंगी लगी हुई है। गेंहुआँ रंग। माथे में त्रिपुण्ड और हाथ में तलवार। कमर में जरी की पेटी और वक्ष पर मोतियों की कुछ मालाएँ।[२७] ऐसा चित्रण अपने आप में अनूठा सौन्दर्य तो दर्शाता ही है साथ ही नाटक में दृश्य—विधान का सौन्दर्य भी प्रदर्शित करता है। पात्र की विशेषता के साथ—साथ सौन्दर्य का परिपाक पाठक करते जाते हैं।

विठूर के उत्तराधिकारी और स्वाधीनता संग्राम की प्रथम क्रांति के नेता श्रीनाना साहब स्वयं को सदा क्रांतिकारी स्वरूप में सामने रखते थे। वर्माजी ने भी नाना साहब के स्वरूप के सौन्दर्य को उभार कर पाठकों के समक्ष उनका सौन्दर्य बोधक चित्र प्रस्तुत किया है। 'पुष्ट शरीर, गोल चेहरा, सिंह के समान सब ओर घूमने वाली तेजस्वी और भेदक दृष्टि, बंक—भ्रू रेखा, मस्तक पर रत्न जटित कलंगी लगा उष्णीष। कमखाब का अंगरखा पहने हुए हैं। कमर में रत्नों की प्रभा से मंडित म्यान, हाथ में तलवार। चौखाने का सटा पैजामा, पैर में विशेष रूप से ऊपर उठी हुई नोक वाले जूते'[२८] जैसा चित्रंण स्वतः ही शौर्य, वीरता भरा बाह्य सौन्दर्य प्रदर्शित करता है।

प्रधान अमात्य गोविन्दपंत महारानी अहिल्याबाई के राज्य संचालन में सहायक सिद्ध होते हैं। उनकी मुद्रा और वेशभूषा तत्कालीन परिस्थिति, वातावरण को दर्शाने का कार्य करती है— 'माथे पर त्रिपुण्ड जिसके मध्य में अरुण बिन्दु है। घनी मूँछें, कानों में मोतियों के बाले। जरीदार पगड़ी और तनीदार अंगरखा। पैरों में

मुड़े हुए(चढ़ाव) पद—त्राण, कमर में जरीदार पेटी जिसमें तलवार लटक रही है।'[२९]

सेनापतियों, अधिपतियों के अतिरिक्त डॉ० रामकुमार वर्मा ने सैनिकों का भी चित्रण एकाधिक स्थानों पर सैनिकों का चित्रण भी किया है। डॉ० वर्मा के नाट्य—साहित्य में सैनिकों की वेशभूषा भी परिस्थितिजन्य है। कहीं सैनिक 'सिर पर उठी पगड़ी, शरीर पर अंगरखा और पैजामे में हैं। कमर में तलवार है'[३०] तो कहीं 'सिपाही के सिर पर होल्करी पगड़ी अंगरखा, कमर में पेटी जिसमें म्यान में सजी कटार है'[३१] के द्वारा राजाओं, महाराजाओं की सेना के सैनिकों का चित्रण वर्माजी ने किया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा की यह विशेषता कही जायेगी कि ऐतिहासिकता की ओर उनका झुकाव होने के कारण वे किसी काल विशेष की परिस्थितियों से भली—भाँति परिचित थे। इसके अतिरिक्त उन्हें रंगमंच का भी ज्ञान था। इस कारण वे अपने पात्रों की वेशभूषा को तत्कालीन देशकाल के अनुसार समायोजित कर देते थे और उस पात्र को कितनी और किस प्रकार की उपस्थिति देकर उसके सौन्दर्य से पाठकों को अभिभूत करना है, यह भी ज्ञात रहता था। इस व्यापक दृष्टि और इतिहास तथा रंगमंच की गहरी समझ से जहाँ उनके ऐतिहासिक पुरुष पात्रों ने अपने सौन्दर्य को कम नहीं होने दिया, भले ही वे कम समय को अपने शारीरिक सौन्दर्य को पाठकों के समक्ष रख सके हों, वहीं सामाजिक नाटकों के पात्रों ने भी नाट्य—कथा के अनुरूप सौन्दर्य का विस्तार पाया है।

सामाजिक नाटकों में डॉ० वर्मा ने अध्यापक, प्रोफेसर, साधारण नवयुवकों, गुण्डों आदि का चित्रण नाट्य कथानुसार किया है। अपने इन सामाजिक पात्रों के सौन्दर्य को वे वेशभूषा आदि के द्वारा ही चित्रित करते नजर आये हैं। पुरानी पीढ़ी के साधारण पात्र साधारण वेशभूषा में तथा नवयुवक आधुनिक शैली के परिधान में दर्शाये गये हैं। इस तरह की परिधान शैली वर्माजी ने नाट्य—कथा

में समायोजन के कारण रची है। वृद्ध अध्यापक राजेश का चित्रण करते समय डॉ० वर्मा का पूरा ध्यान उनकी जीवन शैली और अवस्था पर भी रहा है— 'सफेद बाल और दाढ़ी जो छाती तक लहरा रही है। आँखों में विशेष चमक है। कुंचित भौंहें और प्रशस्त ललाट। सफेद लम्बा कुरता और ढीला पायजामा पहने gq g[illegible]*[32]

डॉ० वर्मा ने अपने सामाजिक पुरुष पात्रों में वर्गवार उनकी स्थिति के अनुसार वेशभूषा का सौन्दर्य दर्शाया है। वृद्ध अध्यापक घर में आराम की मुद्रा में कुर्ता, पायजामा में दर्शाया गया है तो वहीं प्रोफेसर को उसी के अनुसार वेशभूषा में चित्रित किया है। प्रो० हरिनारायण रहे हों अथवा वैज्ञानिक डॉ० रुद्र दोनों के परिधानों के चित्रण में उनकी पदानुसार गम्भीरता डॉ० वर्मा ने बनाये रखी है।

प्रोफेसर हरिनारायण का सौन्दर्य चित्रण करते समय डॉ० वर्मा लिखते हैं 'हरिनारायण एक अंग्रेजी पुस्तक पढ़ने में लीन हैं। उनकी आँखों में सुनहले स्प्रिंग का चश्मा है। वस्त्रों में सादगी है।खुले गले की कमीज और धोती। पैरों में फ्लैक्स के स्लीपर हैं'[33] जबकि इसी के उलट वैज्ञानिक डॉ० रुद्र को अंग्रेजी वेशभूषा धारण किये दिखाया गया है। 'अंग्रेजी वेशभूषा जो लापरवाही से पहनी गई है। सोने की कमानी का चश्मा हाथ में छड़ी।'[34]

वैज्ञानिक पात्र के चित्रण के अतिरिक्त वर्माजी ने तत्कालीन वातावरण में सम्पन्न परिवारों का चित्रण करते समय भी अपने पात्रों को सूट आदि में दिखाया है। चालीस वर्ष के आनन्द मोहन 'हल्के बादामी रंग का सूट पहने हुए हैं। पैरों में पालिश से चमकता ब्राउन 'शू' है। सफेद कमीज के ऊपर गहरे चाकलेट रंग की टाई उभर कर उनके वेश—विन्यास की सजीवता चारों ओर बिखेर रही है।'[35]

चालीस वर्षीय व्यक्ति के अतिरिक्त चौबीस वर्षीय नवयुवक भी

अंग्रेजी लिबास में वेश—संयोजन का सौन्दर्य बिखेर रहा है। 'सिर से पैर तक अंग्रेजी लिबास में। नीला सूट। उसी से मिलती हुई टाई। उसी रंग का रूमाल। हाथ में सोने की घड़ी'[३६] यह सौन्दर्यपरक चित्रण नवयुवक की स्थिति कों भली भाँति दर्शा रहा है।

ऐसा नहीं है कि डॉ० वर्मा ने सूट—बूट वाले आम पुरुषों को ही अपना पात्र निर्धारित किया है। यदि एक ओर अंग्रेजी लिबास 'सर्ज के सूट में सजे'[३७] नवयुवक हैं तो वहीं दूसरी ओर 'सिल्क का कुरता और धोती पहने अविनाश भी है। बिजली के प्रकाश में अविनाश का कुरता उदय होते सूर्य की किरणों की तरह चमक रहा है। बाल ग्लिसरीन से सँवारे हुए और वस्त्र ईवनिंग ऑव रोजेज़ की सुगंधि लिए हुए।'[३८]

अपनी वेशभूषा से अपनी आर्थिक स्थिति का परिचय देने वाले पुरुष पात्रों के साथ—साथ वर्माजी ने साधारण से साधारण पात्रों को अपने नाट्य—साहित्य का हिस्सा बनाया है। डॉ० रामकुमार वर्मा की लेखनी से ये पात्र साधारण सी साधारण वेशभूषा में अपना सौन्दर्य प्रदर्शित करते नजर आते हैं। 'प्रमोद के ऊपर फैशन का प्रभाव बिलकुल भी नहीं है। वह साफ धोती और आधी बाँह की खद्दर की कमीज पहने हुए है। पैर में स्लीपर्स। बाल बिखेर हुए।'[३९] इसी तरह राजेश जिसकी आयु तीस वर्ष है 'वह सफेद कमीज पर ब्राउन पुलोवर पहने हुए है और चाकलेट रंग की ढीली पैंट है। पैर में पेशावरी चप्पलें। बाल ग्लिसरीन से पीछे की ओर मुड़े हुए हैं। कपड़ों से भीनी—भीनी खुशबू निकलकर सारे कमरे को महका रही है।'[४०]

शहरी पढ़े लिखें इन पुरुष पात्रों के चित्रण के साथ वर्माजी ने आर्थिक संसाधनों से हीन व्यक्ति, गुण्डे आदि का भी चित्रण कर अपने पुरुष पात्र संसार को विविधता दी है। गरीब ब्राह्मण दीनबंधु पाठक का चित्रण वर्माजी ने कुछ

इस प्रकार से किया है। 'पौढ़ वय, धोती और अंगरखा पहने हुए है, सिर पर पंडिताऊ पगड़ी, माथे पर टीका, गले में माला। हाथ में लकड़ी और पैरों में खड़ाऊँ।'[४१] यह वेशभूषा स्वतः ही पाठकों को दर्शा देती हैं कि पात्र पंडित है और साधन सम्पन्न नहीं है।

इस तरह के वेश विन्यास में वर्माजी को महारत हासिल थी। पात्रों की वेशभूषा से वे पात्रों को साकार रूप में पाठकों के समक्ष खड़ा कर देते थे। एक गुण्डे का वेश विन्यास कितना सजीव किया है — 'गले में फूलों के गजरे, मुँह में पान, आँखों में काजल और मलमल के कुर्ते पै छींट लाल लाल, घुटनों तक धोती और हाथ में डण्डा।'[४२] वर्माजी द्वारा चित्रित यह वेशभूषा पात्र का सौन्दर्य दर्शा कर स्वयं ही बता रही है कि पुरुष पात्र किस स्तर का और कैसा पात्र है। यही डॉ० रामकुमार वर्मा की विशेषता है कि वे वेशभूषा से ही पात्रों को जीवन्त बना सके हैं।

२. आन्तरिक सौन्दर्य

डॉ० रामकुमार वर्मा के नाट्य—साहित्य में पात्र संसार विस्तीर्ण है। इन पात्रों में ऐतिहासिक और सामाजिक पात्र प्रमुख रहे हैं। अपने नाटकों—एकांकियों में पात्रों का सौन्दर्य दृश्य निर्माण के साथ, अंक संयोजन के लिए प्रस्तुत किया है। यह बाह्य सौन्दर्य कहीं विस्तृत रूप में तो कहीं संक्षिप्त रूप में सामने आया है। इसी तरह पात्रों के आन्तरिक सौन्दर्य को निखारने में डॉ० वर्मा ने किसी तरह का विशेष प्रयास नहीं किया है। वे पात्रों की स्थिति, कथा के प्रवाह और संवादों के द्वारा ही पात्रों के आन्तरिक सौन्दर्य का निरूपण करते दिखे हैं।

ऐतिहासिकता से ओतप्रोत नाटकों और एकांकियों में डॉ० वर्मा ने अपने पुरुष पात्रों को शौर्य, वीरता, चतुरता, बुद्धिमता, उदारता, स्वाभिमान, उत्साह, क्रियाशील आदि गुणों से भरपूर दिखाया है। शिवाजी, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, अशोक,

दुर्गादास, नाना साहब, उदयन आदि इसी तरह के गुणों से ओतप्रोत दर्शाये गये हैं। इसी तरह सामाजिक नाटकों और एकांकियों में डॉ० वर्मा के पुरुष पात्रों का आन्तरिक सौन्दर्य उनके कार्य के प्रति लगन, संघर्ष, सामाजिकता के प्रति सचेत आदि से निरूपित किया है। अपने समस्त पुरुष पात्रों का सौन्दर्य निरूपित करते समय डॉ० वर्मा ने किसी प्रकार का विशेष अवकाश नहीं लिया है। वे नाटकों, एकांकियों की कथा विस्तार की स्थिति के साथ—साथ पुरुष पात्रों का आन्तरिक सौन्दर्य पाठकों के सामने लाते रहे हैं।

डॉ० वर्मा ने अपने ऐतिहासिक पुरुष पात्रों को विशेष रूप से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। इन पुरुष पात्रों में वे आसानी से वीरोचित् गुणों की स्थापना कर सके हैं। हालांकि किसी भी गुण का सौन्दर्य विवेचन करने में उन्होंने विस्तार की आवश्यकता महसूस नहीं की। अपने संवादों के माध्यम से वे पात्रों के सौन्दर्यात्मक प्रकाश को चारों ओर फैलाते रहे हैं।

शिवाजी को डॉ० वर्मा ने क्रियाशील, उदार व्यक्तित्व के स्वामी रूप में चित्रित किया है। वीरता, शौर्य के अतिरिक्त 'उनके चरित्र में आदर्श के प्रति गौरव और अभिमान है। वे अपनी संस्कृति के प्रतीक हैं और उनमें सहानुभूति स्वावलंबन, उत्साह और क्रियाशीलता की तेजस्विनी शक्ति है।'[४३] शिवाजी अपने इन्हीं गुणों के सौन्दर्य से अपने साथ के लोगों को भी अभिभूत किये रहते हैं। शिवाजी की सैन्य शक्ति का संचालन करते आबाजी सोनदेव, मोरोपन्त आदि भी ऐसे पुरुष पात्र हैं जो उत्साही, पराक्रमी, स्वाभिमानी दिखाये गये हैं।

शिवाजी के कुशल संगठनकार्य के कारण विजयस्वरूप आबाजी गौहरबानू को उनके सामने प्रस्तुत करता है पर शिवाजी की नारी जाति की मर्यादा को सुरक्षित रखने वाली छवि का सौन्दर्य पाठकों को भाव विभोर कर देता है। नारी के प्रति शिवाजी का सम्मान चर्चित है। 'वे गौहरबानू को अपनी माँ के

समकक्ष मान कर उसे सिंहासन पर बिठाते हैं'[४४]पर ऐसा नहीं कि वे किसी विशेष जाति आदि का सम्मान करते हों उनकी दृष्टि में सभी नारियों के प्रति सम्मान का भाव था। इस तथ्य को आबाजी के कथन से समझा जा सकता है जब वह कहते हैं कि श्रीमन्त की आज्ञा है कि सेना के साथ न स्त्रियाँ रह सकतीं हैं और न दासियाँ।'[४५] शिवाजी को ऐसी आज्ञा दर्शाती है कि वे नारियों के सम्मान की रक्षा करता जानते हैं। 'वे पर—स्त्री को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं।'[४६]

नारी के प्रति सम्मान का भाव रखने वाले शिवाजी को बहादुरी का परिचायक भी दिखाया गया है। वीरता और शौर्य के सौन्दर्य में उनका व्यक्तित्व निखर कर सामने आता है। उनकी बहादुरी के सौन्दर्य से उनकी विरोधी स्त्री गौहरबानू भी अभिभूत है, तभी तो वह कैद में होने के बाद भी शिवाजी के दर्शन करना चाहती है। ''मैनें सुना है कि श्रीमंत शिवाजी बहुत बहादुर हैं। उनके दर्शन करना चाहती हूँ और चाहती हूँ कि उनके सामने खुदकुशी करूँ।''[४७]

नारी को सम्मान देने के गुण ने शिवाजी के सौन्दर्य को विशेष रूप से आभासित किया है। इसका प्रमाण गौहरबानू को देखने के बाद शिवाजी के कथन से स्पष्ट होता है कि वे नारी को किस स्थिति तक सम्मान देते थे— ''सुन्दरता का परिणाम होता है। आँखों का अपने सच्चे रास्ते पर आना। लेकिन ये आँखें इतनी हल्की होती हैं कि जरा से इशारे पर बहक जाती हैं। शिवाजी अपनी आँखों का रास्ता पहिचानता है। आपकी इस सुन्दरता में मुझे अपनी माँ जीजाबाई का मुख दीख पड़ता है, अपनी माँ जीजांबाई की मुस्कान दीख पड़ती है। आपके बोलने में मुझे जीजांबाई का आशीर्वाद सुनाई पड़ता है।''[४८]

शिवाजी की तरह अपने अन्य ऐतिहासिक पुरुष पात्रों को डॉ० वर्मा ने विशेष सौन्दर्य से मण्डित किया है। साहस, शौर्य की मूर्ति शिवाजी के साथ—साथ अन्य पात्रों में भी साहसिक सौन्दर्य की प्रतिस्थापना वर्माजी कर पाने

में सफल रहे हैं। एक अन्य ऐतिहासिक पात्र अशोक को वर्माजी ने निडरता, शौर्य, चतुर, साहस के सौन्दर्य से प्रकाशित किया है।

'सम्राट अशोक सात्विक वृत्ति के थे। उनमें साहस और शौर्य था। ब्राह्मणों, श्रमणों, विद्धानों आदि का आदर करते थे और शरणागत की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते थे। वे क्षमा को दण्ड की अपेक्षा अधिक उपयुक्त समझते थे, इसी कारण उन्होंने ने अपने भाई सुगाम को क्षमा कर दिया था।'[४९]

अशोक के साहस का सौन्दर्य उस समय प्रस्फुटित होता है जिस समय अशोक के अन्य भाई उसके विरुद्ध साजिश कर उसे मारने का प्रयास करते हैं। अशोक यह सब जानने के बाद भी अपने साहस और वाकचातुर्य से उन सभी को परास्त कर देता है।

''सुगाम — व्यंग्य बाण मत चलाओ। शक्ति हो तो तलवार का प्रयोग कर सकते हो।

अशोक — शक्ति भी है और तलवार भी है, किन्तु प्रयोग का अवसर मैं नहीं देखता। हाँ, तुम प्रयोग करो। देखा, चन्द्रोदय हो गया। तुम्हारे आक्रमणकी बेला यही तो है। देखूँ तुम किसी प्रकार आक्रमण करते हो?''[५०]

अशोक का इस तरह का संवाद जहाँ उसके साहस का सौन्दर्य प्रस्फुटित करता है वहीं दूसरी ओर ''मुझमें। उस शक्ति की परीक्षा लेना चाहते हो? तुम्हारे भाइयों के पैर लड़खड़ा रहे हैं। तुम्हारी वाणी में पहले जैसा तीखापन नहीं है। कौन परीक्षा लेगा? समझो सुसीम! सागर की एक बूँद सागर के जल के समान ही है किन्तु उसमें प्रलय का संघात उत्पन्न नहीं हो सकता। यदि तुम्हारे साथ के भाइयों ने मगध का भविष्य नहीं पहचाना तो मुझे बलपूर्वक पहचानने के लिए बाध्य करना होगा''[५१] का कथन उसकी निडरता को, आत्मविश्वास को दर्शाता है।

इसके अतिरिक्त अशोक श्रेष्ठ संगठनकर्ता भी था। उसके इसी गुण के सौन्दर्य से उसकी सेना, उसके अनुचर, उसके गुप्तचर तक अभिभूत रहते थे। 'अशोक का पुत्र महेन्द्र शासन—संचालन के समय उसको मगध में अशांति की सूचना देता है तो अशोक उसे बताता है कि यह खबर उसके प्रत्येक क्षेत्र के कार्यान्तिक द्वारा चौदह दिन पूर्व ही उसको मिल चुकी है।'[५२]

डॉ० रामकुमार वर्मा ने ऐतिहासिक पात्रों में साहस शौर्य के साथ—साथ क्षमा करने का गुण विशेष रूप से उभारा है। 'शिवाजी आबाजी सोनदेव की धृष्टता को क्षमा कर गौहरबानू को भी सम्मान देते हैं'[५३] 'अशोक भी अपने भाई सुसाम सहित अन्य भाइयों को क्षमा करता है।'[५४]

एक अन्य 'ऐतिहासिक पात्र समुद्रगुप्त राज्य विद्रोह करने के आरोप में अपने बड़े भाई काच को तीन दिनों का समय देता है और सहयोग करने के बदले शक्तिशाली सामन्त की मर्यादा देने का वचन देता है।'[५५] समुद्रगुप्त की वीरता, साहस, क्षमा करने के गुण का सौन्दर्य उसके पुत्र चन्द्रगुप्त में भी विद्यमान रहता है। 'चन्द्रगुप्त युद्ध में प्राण देना क्षत्रिय की सबसे बड़ी गति मानता है'[५६] यह उसके साहसी गुण को दर्शाता है। अपने साहस के कारण ही चन्द्रगुप्त सम्राट बने, नन्दवंश को समाप्त किया।

सैन्य संचालन का कौशल और दूरदृष्टि के कारण चन्द्रगुप्त ने भारतीय इतिहास में एक स्वर्णिम काल की स्थापना की। उनके इस गुण की सारे लोग प्रशंसा करते थे —''सम्राट ने तक्षशिला में ग्रीक सैन्य—संचालन का जो कौशल देखा है उस कौशल के बल पर तो समस्त भारत पर अपना राज्य स्थापित कर सकते हैं। उन्होंने विदेशी राजनीति को स्वीकार कर किसी भविष्य कार्यक्रम की नींव डाली है। यह बहुत कम लोग जानते हैं।'[५७]

सम्राट हर्षवर्द्धन को सभी का सम्मान करने वाला व्यक्ति बताया

गया है। राजाओं की तरह वह अपने आचार्य का आदर करने के गुण से भरपूर है। 'आचार्य दिवाकर के आने पर हर्ष उनको सिंहासन पर बिठाता है और स्वयं जमीन पर बैठ जाता है।'[५८] इस तरह के व्यावहारिक सौन्दर्य का परिचय वही दे सकता है जिसमें दूसरों का सम्मान करने की भावना हो।

भारतीय इतिहास में वीरोचित् गुणों से भरपूर पात्रों की कमी नहीं रही है। साहस से इन पात्रों ने युद्धभूमि में लड़ना स्वीकारता निडरता के साथ शत्रुओं का सामना किया। सम्मान के साथ अपने आचार्यों को आदर दिया तो अपनी दयाशीलता से शत्रुओं को भी क्षमा किया है। निर्भीकता, शौर्य की प्रतिमूर्ति 'पृथ्वीराज चौहान ने मुहम्मद गोरी के कैद में आने के बाद अपना साहस नहीं त्यागा। नेत्रहीन हो जाने के बाद भी वह अपने साहस के बल पर गोरी का मुकाबला करने की हिम्मत करते हैं।'[५९]

निर्भीकता और क्षमा करने का समन्वय लगभग सभी भारतीय राजाओं में रहा है। इस अद्‌भुत सौन्दर्य के कारण उनका नाम हमेशा भारतीय इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में लिखा रहा है। महाराजा उदयन कलाप्रेमी, न्यायप्रिय रहे हैं साथ ही परिस्थितियों का सामना करने वाले भी रहे हैं। एक विशाल वटवृक्ष को देख कर उनके द्वारा क्रिया जाने वाला वर्णन उदयन को कलाप्रेमी सिद्ध करता है– "यौगंधरायण! इस विशाल वटवृक्ष को तुमने देखा ? यह किसी चक्रवर्ती राजा जैसा ज्ञात होता है। अपनी अनन्त भुजाओं से इसने इस बसुन्धरा को कितनी शक्ति से बाँध रखा है। इसकी प्रत्येक भुजा स्वतंत्र वृक्ष बनी जा रही है। यह शक्ति का सौन्दर्य, अचलता का प्रतीक; अपने विस्तार का यह आदर्श, किसी भी नरेश के लिए अनुकरणीय है।"[६०]

ऐसे कलाप्रेमी राजा उदयन का चरित्र विपरीत परिस्थितियों से हार न मानने वाला भी था। अपने राज्य में तथागत के प्रवेश पर उन्हें क्रोध आता है। वे

तथागत को मारने के लिए बाण चलाते हैं। सारा जनसमुदाय यह जानकर उग्र हो जाता है।इस स्थिति में भी राजा उदयन वहाँ से भागते नहीं हैं वे कहते हैं— ''सेनापति! कायरता की बातें मत करो! क्या मैं अपना कार्य छिपाने के लिए असत्य व्यवहार करूँ ? यह धनुष मेरे हाथ में ही रहेगा।''[६१] बाद में तथागत की सत्यता को स्वीकार कर राजा उदयन उनसे क्षमा माँगते हैं। यह गुण राजा उदयन के सौन्दर्य को और भी प्रकाशवान करता है। उदयन बुद्ध के आगे नतमस्तक हो कहते हैं— ''भंते! आप धन्य हैं। मेरे समक्ष सत्य स्पष्ट हो गया। जैसे नाना पुष्पों की एक पुष्पराशि ले एक चतुर माली विचित्र माला गूँथे उसी प्रकार भन्ते! आपने वर्णों को—अनेक भावों को मिला कर एक कर दिया। आज से भगवान मुझे साँजलि शरणागत समझें।''[६२]

ऐतिहासिक पुरुष पात्रों में राजाओं शासकों के गुणों का सौन्दर्य समय—समय पर आभासित होता रहा है। शासकों, राजाओं के महामंत्रियों, सेनापतियों के गुणों का सौन्दर्य भी अनुपम रहा है। प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ चाणक्य ने यदि चन्द्रगुप्त को वैभवशाली राजा बनने की प्रेरणा दी तो सेनापति दुर्गादास ने अपने प्राणों की परवाह किये बिना राणा वंश की रक्षा की। चाणक्य की चातुर्य क्षमता उसका आन्तरिक सौन्दर्य दर्शाती है तो सेनापति दुर्गादास का स्वाभिमान, स्वामिभक्ति, वीरता उसका अपना आन्तरिक सौन्दर्य है।

आचार्य चाणक्य की नीति और दूरदर्शिता की प्रशंसा करते हुए चन्द्रगुप्त स्वयं कहते हैं— ''नीति—निष्णात आचार्य चाणक्य के समान बुद्धि और अन्तर्दृष्टि में आज समस्त आर्यावर्त में एक भी व्यक्ति नहीं है। यह मेरा सौभाग्य है कि वे मेरे आचार्य एवं महामंत्री हैं।''[६३] आचार्य चाणक्य की दूरदर्शिता उस समय भली भाँति नाटक में परिलक्षित हुई है जब कौमुदी महोत्सव की तैयारी चल रही हैं। 'समाहर्ता वसुगप्त और नन्दवंश की राजनर्तकी अलका चन्द्रगुप्त के

विरुद्ध षडयंत्र रचते हैं। चाणक्य अपनी दूरदर्शिता से दोनों को पहचान कर चन्द्रगुप्त को बचा लेता है।'[६४]

दुर्गादास का शौर्य और विक्रम के कार्य महाराणा प्रताप की याद दिलाते हैं। 'महाराणा प्रताप ने जिस प्रकार मेवाड़ की रक्षा की उसी प्रकार दुर्गादास ने मारवाड़ की रक्षा की।'[६५] स्वाभिमान की रक्षा की खातिर दुर्गादास ने हमेशा संघर्ष करना सीखा था। तभी वह इसे साहस न मान कर राजपूत का स्वाभिमान बताते हैं। 'साहस कैसा! यह तो प्रत्येक राजपूत का स्वाभिमान है। वह इतना निर्बल नहीं है कि अपने स्वर्गवासी महाराणा के सम्मान की रक्षा न कर सके। आज हमारे सम्मान का स्वर्ण अग्निशिखाओं से घिरा हुआ है। प्रत्येक कण अग्नि से विगलित हो रहा है, किन्तु इस अग्नि से हमारे दोष ही नष्ट होंगे, हमारे सम्मान का स्वर्ण और अधिक शुद्ध हो जायेगा।'[६६]

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने ऐतिहासिक नाटकों, एकांकियों में हमेशा भारतीय संस्कृति को पोषित किया है, इसी कारण उनके नाट्य–साहित्य में हमेशा उनके ऐतिहासिक पात्रों में शूरवीरता, निर्भीकता के सौन्दर्य का परिचय प्राप्त होता रहता है। महाराणा प्रताप इस शौर्य, साहस की प्रतिमूर्ति कहे जा सकते हैं। 'कर्नल टाड ने महाराजा प्रताप के सम्बन्ध में लिखा कि अकबर की महान आकांक्षा, शासन, कौशल और विपुल साधन मनस्वी महाराणा प्रताप के अदम्य शौर्य, यशस्वी साहस और निश्छल अध्यवसाय को शमित करने में नितान्त असमर्थ थे। अरावली पर्वत की शायद ही कोई घाटी हो जो महाराणा प्रताप की वीरता, विजय आदि से पवित्र न हुई है।'[६७] ऐसे शूरवीर महाराणा प्रताप के चरित्र का सौन्दर्य डॉ० वर्मा ने अपनी लेखनी से अपने नाट्य–साहित्य में उभारा है।

इन ऐतिहासिक पात्रों के अतिरिक्त डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने

नाट्य—साहित्य में जनकवि 'तुलसीदास के मानसिक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व की गहरी संवेदना को दर्शा कर तुलसीदास के आसक्ति के चरम बिन्दु से अनासक्ति की रेखा तक सीधे पहुँचने का सौन्दर्य दर्शाया है।'[६८] रामचरितमानस के रचनाकार तुलसीदास के आन्तरिक सौन्दर्य की आभा से पाठक मोहित हुए हैं वहीं बौद्ध धर्म और जैन धर्म को प्रतिस्थापित करने वाले महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी के आन्तरिक सौन्दर्य को भी डॉ० वर्मा ने अपनी लेखनी से उकेरा है।

महावीर स्वामी अपनी तपस्या से अपना प्रभाव स्थापित कर सके। 'वे मौन रहते, भोजन में रुचि नहीं थी। वस्त्रों की चाह नहीं थी। वे स्तुति निन्दा से परे थे।'[६९] महावीर स्वामी ने अपने उपदेशों के द्वारा अपना आन्तरिक सौन्दर्य बिखेरा और समाज को अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह जैसे चार व्रतों के आख्यानों के साथ ब्रम्हचर्य को जोड़ कर पाँच व्रतों का आख्यान प्रस्तुत किया।'[७०]

महावीर स्वामी की तरह गौतम बुद्ध भी राज—काज के वैभवशाली संसार से विरक्त होकर संन्यास की ओर मुड गये थे। तपस्या के बाद बोध प्राप्ति के उपरान्त वे समाज को अनुभव—ज्ञान का उपदेश देने लगे। उनका आन्तरिक सौन्दर्य दया, क्षमा, शील आदि रूप में बचपन के दिनों से ही प्रकट होने लगा था जब 'वे अपने भाई देवदत्त के बाण से घायल हंस को बचाने को ज्यादा महत्व देते हैं।'[७१] ऐसे एक दो नहीं बल्कि सैकड़ों उदाहरण बुद्ध के जीवन में रहे हैं जब उन्होंने अपने दया, क्षमा के सौन्दर्य से समाज को प्रभावित किया। 'क्रूर, हत्यारे अंगुलिमाल का बुद्ध अपनी करुणा और दया के कारण स्वभाव परिवर्तन कर सके।'[७२]

डॉ० रामकुमार वर्मा का सम्पूर्ण नाट्य—साहित्य इसी प्रकार के पात्रों से भरा पूरा है जो साहस, निडरता, स्वाभिमान, देश प्रेम, करुणा, दया, क्षमा, चतुरता, स्वामी—भक्ति, सम्मान देने जैसे गुणों से ओत—प्रोत रहे हैं। ऐसे पुरुष

पात्रों के आन्तरिक सौन्दर्य से नाट्य—साहित्य का पाठक वर्ग और रंगमंच का दर्शक भी प्रभावित होता है साथ ही इन पात्रों के गुणों से भारतीय इतिहास में उसका नाम भी स्वर्णाक्षिरों में लिख गया है।

इन ऐतिहासिक नाटकों एकांकियों के साथ—साथ डॉ० वर्मा ने सामाजिक नाटकों और एकांकियों की रचना भी की है। इस सामाजिक संसार में पात्रों का आन्तरिक सौन्दर्य सामाजिकता के दायरे में सिमट कर सामने आया है। ऐसे नाटकों के पुरुष पात्र अपने कार्यों के प्रति सचेत रहते हैं। मानसिक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व मे जीते हैं। सामाजिक नाट्य संसार के पात्रों में जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण था। कुछ पात्र संयोजित रूप में कार्य करते दिखते हैं। आनन्द को कार्य सही—सही करने की आदत है। वे प्रत्येक कार्य का उपयुक्त रूप में करने के पक्षधर हैं। तभी किसी भी गड़बड़ काम पर भड़क जाते हैं। अपने हैट की दुर्दशा देखकर वे क्रोध और आश्चर्य से भर उठते हैं— "ओह, यह बात है। मिले कहाँ से ? मेरे हैट में तो मूँगफली रखी जाती है। उस रोज आलू रखे गये थे, आज मूंगफलियाँ रखी हुई हैं। गोया मेरा हैट न हुआ टोकरा हुआ। आज मूँगफली है, कल मूँग की दाल रखी जायेगी। वाह री शीला अच्छी अकल है तेरी!"[७३]

सामाजिक पुरुष पात्रों को अपने—अपने कार्यों में संलग्न दिखाया गया है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने नाटकों की रचना ऐतिहासिकता को लेकर की है वहीं उनके एकांकी सामाजिक आधार पर लिखे गये हैं एकांकी होने के कारण पात्रों को विस्तार पाने का अवकाश नहीं मिल सका है। उनकी संवाद शैली और कार्य से ज्ञात होता है कि उसका स्वभाव कैसा है। यहीं स्वभाव पात्र के आन्तरिक सौन्दर्य को अभिव्यक्त करता है। 'डॉ० रुद्र वैज्ञानिक हैं जो किसी न किसी रूप में अपने अनुसन्धान में लगे रहते हैं। इनका एक मात्र उद्देश्य अपने कार्य के प्रति समर्पित रहता दिखाया गया है जो किसी भी व्यक्ति के कार्य के प्रति निष्ठा को

व्यक्त करता है।'[७४]

अपने काम से विरक्त होकर फिजूलखर्ची का उदाहरण 'किशोर के रूप में दर्शाया गया है जो अपने बैंक से एक हजार रुपये निकाल कर खर्च कर देता है। बाद में उसका भाई कुमार अपनी माँ की स्वास्थ्य सेवा के लिए बचाये रुपयों से अपने भाई को बचाता है।[७५] यह व्यक्ति के मातृप्रेम और संचय भाव के गुण को दर्शाता है।

'अपनी माँ के प्रति सेवा—भाव गुण का सौन्दर्य राजन में भी दर्शाया गया है जो साधारण वेतन पर काम करता है पर माँ के प्रति समर्पित भाव रखता है। ऐसे नवयुवक भारतीय संस्कृति के परिचायक रहे हैं।'[७६]

डॉ० रामकुमार वर्मा ने पुरुष पात्रों के आन्तरिक सौन्दर्य की प्रतिस्थापना मुख्य रूप से ऐतिहासिक नाट्य—संसार में की है। सामाजिकता को लेकर रचे नाट्य—साहित्य में उन्होंने विशेष रूप से एकांकियों की रचना की है। इनके पात्र समाज के मध्य से ही सामने आये हैं। सामाजिक पात्रों में आन्तरिक सौन्दर्य उतनी प्रमुखता से उभर कर सामने नहीं आया है जितनी प्रमुखता से ऐतिहासिक नाटकों में उभर कर सामने आया है।

ऐतिहासिक पुरुष पात्रों में शिवाजी, चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, महाराणाप्रताप, उदयन, मंगल पाण्डे, नाना फड़नवीस, चाणक्य, अशोक, दुर्गादास, महावीर, गौतम बुद्ध, कर्ण आदि के द्वारा इन पात्रों के प्रमुख आन्तरिक गुणों— शौर्य, वीरता, निडरता, साहस, संगठन—संचालन, युद्ध—संचालन, चातुर्य; दूरदर्शिता, दया, क्षमा, करुणा आदि का सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ है। इन पुरुष पात्रों के आन्तरिक सौन्दर्य के द्वारा डॉ० वर्मा ने रंगमंच की दुनियां को वैभवशाली नाटक तो दिए ही हैं, पाठकों को भी अभिभूत किया है।

(ख) नारी सौन्दर्य

भारतीय संस्कृति परम्परा में नारी को पुरुष की अर्द्धांगिनी के रूप में स्वीकारा गया है। सृष्टि का विकास ही स्त्री पुरुष के संयोग में छिपा होता है। 'वह सृष्टि का साधन और प्रकृति का मूर्त रूप होकर पुरुष के लिए सौन्दर्य, प्रेम, अनन्यता और आनन्द का कारण बनती है। इसीलिए वह मन्या है, पूज्या है, आराध्या है, इसलिए उसमें देवत्व है और इसलिए वह श्री है, शक्ति है, चिति है।'[७७] वस्तुतः सृष्टि के मूल में नारी रही है। नारी ही पुरुष की शक्ति है। उसकी शक्ति द्वारा ही पुरुष का उन्नयन, पोषण और विकास होता है।

'नारी ही कला एवं सौन्दर्य का मूर्त संस्करण है क्योंकि यदि सौन्दर्य की सर्वोच्च अभिव्यक्ति कला है तो कला को संसार की सर्वाधिक वस्तु नारी की ही प्रेरणा, आलम्बन एवं आधार ग्रहण करना पड़ेगा। इस प्रकार सौन्दर्य, कला एवं नारी एक दूसरे के पूरक हैं।'[७८] सौन्दर्य को कला का आधार स्वीकारा गया है और इस सौन्दर्य को नारी ही शोभा प्रदान करती है। नारी के सौन्दर्य से साम्राज्यों की नीवें हिलीं हैं तो नारी सौन्दर्य ने साम्राज्यों की रक्षा का व्रत भी लिया है। नारी सौन्दर्याकर्षण में शक्तिशाली पुरुष भी कमजोर पड़ जाता है और इसके विपरीत कमजोर, निरीह पुरुष में शक्ति का संचार होता है। समूचे विश्व में इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण भरे पड़े हैं जब नारी सौन्दर्य से विकास और विनाश की प्रक्रिया चलती रही है।

साहित्य जगत् में भी नारी सौन्दर्य को लेकर आदिकाल से अद्यानुतन रचनाएँ होती रहीं हैं। काल विशेष की परिस्थितियों के चलते नारी के रूप और सौन्दर्य की स्थितियों में बदलाव आते रहे हैं। वैदिक काल में नारी का मंगलमयी विदुषी स्वरूप प्रकट हुआ है तो वीरगाथा काल में सौन्दर्य का चरम रूप वीर पत्नी, वीर प्रसविनी, वीर भगिनी के रूप में शौर्य प्रकीर्णित करता रहा। रीतिकालीन

नारी सौन्दर्य भोग—विलास में डूबा दिखा तो छायावादी कवियों ने नारी के विविध रूपों का चित्रण किया। नारी सौन्दर्य के स्वरूपों में भले ही परिवर्तन आते रहे हों पर उसके बाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य द्वारा उसका चित्रण होता रहा है। उसके बाह्य शारीरिक स्वरूप, मांसलता, नख शिख वर्णन के अतिरिक्त उसके हृदय के विचारों, उसके गुणों, उनकी वत्सलता, उसके ममत्व, प्रेम, करुणा आदि के सौन्दर्य को भी चित्रित किया गया।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नाट्य साहित्य में मानवीय सौन्दर्य का उद्घाटन किया है। इसमें नारी सौन्दर्य को भी स्थान दिया है। डॉ० वर्मा भारतीय संस्कृति की महानता एवं पावनता से प्रभावित रहे थे और इसी कारण अपने नाट्य—साहित्य में नारी सौन्दर्य का चित्रण करते समय नारी की महत्ता, पावनता को क्षीण नहीं होने दिया है। नारी सौन्दर्य को भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही सँवार कर उसे नाट्य—साहित्य में स्थान दिया है। नारी के बाह्य सौन्दर्य का चित्रण करते समय अश्लीलता अथवा वासनात्मकता को छूने भी नहीं दिया है। नारी का बाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य पाठकों को अभिभूत करता है।

१. बाह्य सौन्दर्य

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नाट्य—साहित्य में नारी सौन्दर्य को विशदतापूर्वक चित्रित नहीं किया है। पुरुष सौन्दर्य की भाँति नारी के बाह्य सौन्दर्य को वे वेशभूषा,आभूषणों आदि के माध्यम से दर्शाते रहे हैं। वर्माजी के नारी पात्रों में महारानी, साम्राज्ञी भी हैं, उनकी सहायिकायें, दासियाँ हैं तो साधारण स्त्रियाँ भी हैं। सभी नारी पात्रों का सौन्दर्य उनकी पद, प्रस्थिति के अनुसार सामने आता रहा है। नारी सौन्दर्य के आकलन के पूर्व यह ध्यान रखना होगा कि डॉ० रामकुमार वर्मा का नाट्य रचना करते समय सारा ध्यान उसको रंगमंचीय व्यवस्था के अनुसार बनाने का रहा है। इसके चलते वे नारी पात्रों के सौन्दर्य को दृश्यात्मकता

की दृष्टि तक ही प्रभावी बना सके हैं। काशी, गौहरबानू, महादेवी, अहिल्याबाई, सफीयत, कुन्ती, मंजूघोषा, चारूमित्रा, वासवदत्ता, संयोगिता आदि ऐतिहासिक नारी पात्रों के बाह्य सौन्दर्य के अतिरिक्त साधारण नारी पात्रों के सौन्दर्य को वर्माजी ने अपने साहित्य में उभारा है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नाट्य—साहित्य को ऐतिहासिक तथा सामाजिक विषयों में गूँथ कर प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिक नारी पात्रों में वर्माजी ने अहिल्याबाई, ध्रुवस्वामिनी, महारानी कुसुमावती, संयोगिता, कुन्ती आदि को प्रमुख रूप से चित्रित किया है।

चन्द्रगुप्त की वागदत्ता 'ध्रुवस्वामिनी के अंग—प्रत्यंग में सौन्दर्य दीपशिखा की भाँति ज्योतित हो रहा है। चीनान्शुक से उनका गौर शरीर सुसज्जित है जैसे नवीन उषा—किरण पर हलके बादल का नीलांचल पड़ा हो। मस्तक पर सर्पिल कुंकुम, मर्यादा की उन्नत रेखा सी नासिका। कमल कली की भाँति ओष्ठ रेखा। रत्नहारों सहित शोभा के चक्रवात की भाँति वक्षस्थल। चरणों में नूपुर और जावक।'[७९]

डॉ० वर्मा की भारतीय संस्कृति के प्रति एवं नारियों के प्रति अगाध श्रद्धा थी। इसी कारण से वे नारी के बाह्य चित्रण में भारतीय सांस्कृतिकता का विशेष ध्यान रखते थे। उनके नारी पात्र कुंकुम, साड़ी आदि से अपना सौन्दर्य बिखेरते दिखते हैं।

आहिल्याबाई के बाह्य सौन्दर्य का चित्रण करते समय भी वर्माजी ने इसका ध्यान रखा है। 'अहिल्याबाई आरती का थाल लेकर प्रवेश करती है। दीपक का आलोक उसके मुख की आभा में एक सुनहली गोट लगा रहा है।'[८०]

यहाँ वर्माजी ने किसी प्रकार का विस्तृत वर्णन नहीं किया है और न ही अहिल्याबाई को आभूषणों, अलंकारों से सुशोभित किया है। इसके बाद भी उनका सौन्दर्य दिव्यता का आभास करवाता है। इसी तरह की दिव्यता अहिल्याबाई

के वेश वर्णन में वर्माजी ने दर्शायी है — 'बिखरे हुए केशों में पुष्प का शृंगार। चौड़े माथे पर कुंकुम की रेखा के नीचे बिन्दु, लम्बी खिंची हुई भौंहें। बड़े—बड़े नेत्रों में काजल की रेखा। भरा हुआ मुख कपोलों में गहवर जो हल्की मुस्कान में कुछ गहरे हो जाते हैं। आँखों में दीप्ति। चिबुक पर हरा बिन्दु। गले में मोतियों की माला। नीले वस्त्रों में बड़ी आकर्षक लगती है। कमर में पतली किंकिणी। पैरों में नूपुर और महावर की रेखा और पुष्पाकृतियाँ। लगता है जैसे गंगोत्री से गंगा का प्रवाह हुआ है।'[८१]

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नारी पात्रों को बिना किसी विशेष प्रयास के पावन सौन्दर्य से सुसज्जित किया है। कहीं उनके नारी पात्र गंगोत्री से गंगा के प्रवाह समान प्रतीत होते हैं तो किसी को उनमें उषाकाल की शुभ्र ज्योत्सना दिखाई देंती है — 'तुम उषा बन कर विविध रंग के बादलों की तरह वस्त्र धारण करो। लालिमा की तरह अंगराग से तुम्हारा शरीर चर्चित हो। शुक्र तारे की भाँति तुम्हारे मस्तक पर हीरक ज्योति हो और तुम्हारे सामने समीर की भाँति सामन्तों की पंक्ति बढ़ती जाये।'[८२]

संयोगिता का ऐसा दिव्य सौन्दर्य पृथ्वीराज की आँखों से प्रस्फुटित हो रहा है। अपनी पत्नी के सौन्दर्य का दिव्य चित्रण उसे अद्‌भुत आभा प्रदान कर रहा है। वहीं महारानी त्रिशला अपने पुत्र के लिए पत्नी की तलाश में एक चित्र को देख कर ही उस पर, उसकी सुन्दरता पर मोहित होती जाती हैं — 'कितनी सुन्दर आँखें हैं, जैसे कामदेव की अंजुलिं में रखे दों पुष्प हों। नासिका देख, जैसे किसी ने मर्यादा की पतली रेंखा खींच कर उसे उठा दिया है। होंठ तो ऐसे हैं जैसे माधुर्य के दो किंनारे हों जिनके बीच वाणी की भागीरथीं बहती है।'[८३]

डॉ० वर्माजी ने नारी पात्रों के बाह्य सौन्दर्य को दर्शाने में अत्यल्प आभूषणों का प्रयोग किया है। महारानियों के सौन्दर्य का मण्डन अत्यन्त साधारण

रूप से करने के बाद भी उनकी दिव्यता का आभास होता है। 'महारानी कुसुमवती पीत अघोवस्त्र, लाल उत्तरीय और गुलाबी रंग की कंचुकी। मस्तक पर केसर की पत्रावली, बीच में अरुण बिन्दु। नेत्रों में अंजन, होंठों में अरुण राग, कानों में ताटंक, गाले में मौक्तिक माल, कटि में किंकिंणी, चरणों में मजीठ और नूपुर'[८४] का वर्णन महारानी की सुन्दरता का चित्रण स्वयं करता है। इस सौन्दर्य चित्रण में सादगी के साथ दिव्यता की अनुभूति पाठकों को होती है।

इस प्रकार का सौन्दर्य दर्शन एक ओर नारी पात्र का सादगी भरा दृश्य प्रस्तुत करता है तो किसी अन्य नारी के सौन्दर्य पर यही चित्रण दिव्याभा दर्शाता है। मुल्ला अहमद की पुत्रवधू गौहरबानू अप्रतिम सौन्दर्य की मलिका होती है। उसके प्रवेश करते ही लगता है 'जैसे चन्द्र बादलों में से निकल रहा है। दुबला पतला शरीर जैसे पुष्परहित लता हो।'[८५] इस प्रकार के पावन सौन्दर्य को देख कर पाठक की अभिभूत नहीं होते आबाजी सोनदेव की बहिन काशीबाई तक वशीभूत हो जाती है। गौहरबानू का घूँघट उलटते ही 'उसे अत्यंत सुन्दर विशाल नेत्र, नासिका उठी हुई, पतले ओंठ, कपोलों में सौन्दर्य कूप, केशों में केवल एक मुक्ता माला, नाक में मोती की छोटी—सी बेसर जो ओंठों पर झूल रही है जैसे संध्याकाल में एक तारा जगमगा रहा है'[८६] जैसी अनुभूति हुई। यह अनुभूति गौहरबानू के सौन्दर्य को स्वत: स्पष्ट करती है।

आबाजी सोनदेव भी स्वयं गौहरबानू के सौन्दर्य के वशीभूत हो गये थे। इसी कारण वे बानू को कैद करके शिवाजी के सामने प्रस्तुत करने को ले आये थे। काशी को उसकी सुन्दरता कैद में नहीं भाती है — "ये हाथ और हथकड़ियाँ.....बानू! इन हाथों में पड़कर लोहा भी सोना हो जाता है। चाँदनी को भी कोई अँधेरे की कड़ियों से बाँध सकता हैं? चाँद भी कभी अँधेरे बादलों से बाँधा गया है।"[८७]

डॉ० रामकुमार वर्मा ने शब्दों के चयन के द्वारा भी सौन्दर्य उभारने का प्रयास किया है। 'औरंगजेब की पुत्री जीनत–उन–निसा देखने में सौम्य और आकर्षक है के साथ नीले रंग की रेशमी सलवार और प्याजी रंग की ओढनी से सुसज्जित है'[८८] के द्वारा उसका बाह्य सौन्दर्य बिना किसी अतिरिक्त शारीरिक सुन्दरता के दर्शाया है। इसके विपरीत अकबर की पुत्री सफीयत–उन–निसा का चित्रण करते समय उसमें अतिरिक्त सुन्दरता दर्शायी है – 'अत्यन्त सुन्दर और सुकुमार। इस समय वह पूर्ण षोडशी है। सोलह वसंतों का प्रतिनिधित्व करने वाले सोलह कुसुम उसकी कुंचित केश–राशि में सजे हुए हैं। उसका शरीर इतना कोमल है जैसे उन कुसुमों की सुगन्धि से ही निर्मित है, विशाल नेत्र, जिनकी तरुण मादकता में सौन्दर्य अरुण हो गया है; सरलता के साथ चंचलता की साकार प्रतिमा में जैसे प्रेम के प्राण स्पंदित हो रहे हैं।'[८९]

कुन्ती के सौन्दर्य को वर्माजी ने स्पष्ट रूप से नहीं दर्शाया है पर नारी पात्रों को दिव्यता प्रदान करने की शृंखला में वे कुन्ती पर अपना विशेष प्रभाव आरोपित कर सके हैं। कुन्ती के सौन्दर्य का चित्रण वर्माजी स्वयं न करके दुर्वासा ऋषि से करवाते हैं – "सुनो सुकन्ये! तुम्हारे सौन्दर्य के प्रति कोई भी आकृष्ट हो सकता है जैसे चुम्बक के आकर्षण से सामान्य लौह खण्ड खिंच कर चला आता है; किन्तु देवि! तुम्हारे कौमार्य का तेज इतना प्रखर है कि वह लौह खण्ड आगे बढ़ते–बढ़ते रुक जायेगा। जितना अधिक तुम्हारे रूप का आकर्षण है उतना ही अधिक तुम्हारे कौमार्य का तेज– तुम्हारे कौमार्य का तेज!"[९०]

कुन्ती के सौन्दर्य, तेजमय कौमार्य तथा उसके सेवा भाव को देख कर प्रसन्नता में दुर्वासा ऋषि द्वारा किसी भी देवता को बुलानें का मंत्र दिया जाता है। उषा का आवाहन करने पर सौन्दर्यमयी, दिव्य उषा अपने सौन्दर्य से सभी को अभिभूत कर देती है – 'चारों ओर एक दिव्य अरुणाभा फैल जाती है। एक

अत्यन्त तेजोमयी सुन्दर युवती का प्रवेश। वह चमचमाता हुआ सुनहला वस्त्र पहने हुए है। केशों में सुगन्धित फूलों की माला। माथे पर अरुण बिन्दु, बड़े—बड़े नेत्र और ओंठों पर मुस्कुराहट।'[९१]

देवशक्ति का स्वरूप उषा के इस सौन्दर्य का चित्रण वर्माजी पात्र परिचय की दृष्टि से सामने रखते हैं, जबकि महार्षि च्यवन की पत्नी सुकन्या के सौन्दर्य के वशीभूत उसका सौन्दर्य वर्णन संवाद शैली में अप्रत्यक्ष रूप से कुछ इस प्रकार किया — 'रत्न का सौन्दर्य मुकुट की शोभा बढ़ाने में है, पत्थरों की संधियों में पड़े रहने में नहीं। ये अरुणिमा के आलोक से खिले हुए अंग क्या वल्कल वस्त्रों में छिपाए जाने योग्य हैं?'[९२]

महारानियों, राजकुमारियों आदि के सौन्दर्य की आभा के साथ डॉ० वर्मा ने उनकी सहायिकाओं दासियों, नर्तकियों का सौन्दर्य भी उन्हीं के अनुरूप सँवारा है।

शिवाजी के सेनापति आबाजी सोनदेव की बहिन 'काशीबाई यौवन और सौन्दर्य की सम्पत्ति से परिपूर्ण है। आँखों में सरसता और आकर्षण है'[९३] तो सफीयत की सहचरी 'आयशा साधारण साड़ी में अपने सौन्दर्य को बिखेरती है।'[९४]

मंजूघोषा के सौन्दर्य से महाराज उदयन स्वयं भी प्रभावित दिखते हैं तभी तो वे मंजूघोषा के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं — ''कितना शक्तिशाली है! रूप उसका विशाल नेत्र और मिली भौंहें। जैसे शक्ति के दो अक्षर जिन पर भौंह की मात्रा लगी हुई है। उठी हुई नासिका जैसे सौन्दर्य ने अपनी सीमा खींच दी हो।''[९५]

राजनर्तकियों, नर्तकियों को भी वर्माजी ने सौन्दर्य प्रदान किया है। महावीर स्वामी की ध्यानस्थ स्थिति में व्यवधान उत्पन्न करने की दृष्टि से सुप्रिया, रंभा एवं तिलोत्तमा नामक तीन सुन्दरियाँ उनके आसपास आकर नृत्य करतीं हैं।

इन सुन्दरियों को वर्माजी ने साड़ी, गले में मुक्ताहार, मणिक के आभूषण, कटि में किंकिणी, हाथों में हीरे जटित कंकण, नेत्रों में काजल, कुंतल राशि में फूल मालाओं से सुसज्जित रूप में दर्शाया है।'[९६]

जन–पद कल्याणी नर्तकी वासवदत्ता के सौन्दर्य का चित्रण उसके श्रृंगार करने के बाद किया है। अपने विविध आभूषणों के धारण करने से उसका सौन्दर्य निखर कर सामने आया है। 'वह वासन्ती परिधान धारण किए हुए है। मस्तक पर चन्द्र कला का किरीट जिसमें राशि–राशि नीलमों की जगमगाहट है। पुष्पराग के कुण्डल जो उसकी अलकों के साथ झूल उठते हैं। गौर वर्ण, चतुर्थी के चन्द्र की भाँति मस्तक, कुंचित भ्रू जो कटाक्ष का अनुसरण करती है, जिसके मध्य में केसर से बनी हुई पुष्पित वल्लरी अंकित है। प्रस्फुटित कमल–दल की भाँति नयन–कोरक जिसमें अंजन भ्रमर का रंग और गूँज लेकर समाया हुआ है। कपोलों और चिबुक पर पत्रावली।'[९७]

वासवदत्ता का सौन्दर्य वर्णन वर्माजी ने इस आभा के साथ दर्शाया है कि एक पल को यह विश्वास ही नहीं होता कि किसी नर्तकी के सौन्दर्य की दिव्यता को प्रस्तुत किया जा रहा है। उसकी आभा एवं बाह्य सौन्दर्य को वर्माजी ने आगे भव्य रूप के साथ प्रस्तुत किया है– 'वह स्वर्णतारों की कंचुकी कसे हुए है जैसे उत्तान श्रृंगार के दो घनाक्षरी छन्द पढ़े जाने से वर्जित कर दिए गये हैं। शरदकालीन आकाश के रंग का दुकूल। रत्न जटित किंकिणी। पैरों में जावक और नूपुर। जैसे वह स्वर्ग से उतरी हुई इन्द्रधनुषी रश्मि हो। मधुर स्वर से हँसती है, जैसे नूपुरों की घंटिकाएँ बिखर गई हों।'[९८]

यह सौन्दर्य, ऐसी आभा, ऐसी दिव्यता वर्माजी द्वारा बहुत कम नारी पात्रों को प्रदान की गई है। यह अद्‌भूत और अभिभूत करने वाला इसलिए और भी लगता है क्योंकि ऐसी दिव्याभा महारानी, साम्राज्ञी पात्रों को भी प्राप्त नहीं हुई

है। महाराज नन्द की राजर्नतकी सुवासिनी में बालगुप्त इसी प्रकार की दिव्यता का आभास करता है। 'वह नारी की केश राशि में रात्रि का प्रथम प्रहर, अरुण ओंठों की उषा में जीवन का प्रभात देखता है।'[९९]

नारी पात्रों का इस प्रकार का दिव्यमयी सौन्दर्य वर्माजी ने मात्र राजपरिवारों की स्त्रियों अथवा राजनर्तकियों पर ही आरोपित नहीं किया है, साधारण परिवारों की स्त्रियों पर भी उनकी प्रस्थिति के अनुसार सौन्दर्य का आरोपण किया गया है। सामाजिक नाट्य—संसार की नारी पात्र साधारण परिवारों की स्त्रियाँ हैं। उनके रहन—सहन, वेशभूषा, आभूषणों आदि से वर्माजी ने उनके सौन्दर्य को चित्रित किया है।

सामान्य स्त्री पात्रों के बाह्य सौन्दर्य चित्रण में वर्माजी ने तड़क—भड़क का प्रयोग नहीं किया है। उनकी अधिकतर नारी पात्रों ने अपनी सौन्दर्याभा के रूप में अपनी वेशभूषा को ही दर्शाया है। एकाधिक नारी—पात्रों को छोड़कर शेष साधारण नारी पात्रों को वर्माजी ने सामान्य रूप से ही सौन्दर्य से सँवारा है। भारतीय संस्कृति—प्रेमी वर्माजी ने नारी पात्रों को साड़ी—धोती वाली वेशभूषा में ही दर्शाया है।

'सुन्दर वेशभूषा, आकर्षक मुख, गौर वर्ण, हरी रेशमी साड़ी, माथे पर कुंकुम की बिंदी'[१००] के सामान्य चिंत्रण से वर्माजी ने नलिनी का सौन्दर्य चित्रित किया है। वर्माजी के सामान्य नारी पात्रों का सौन्दर्य इसी रूप में पाठकों के समाने आया है।

'किशोरी सिल्क की सफेद रंग की साड़ी और पीले रंग के ब्लाउज में बड़ी आकर्षक लगती है'[१०१] तो 'गौर वर्ण और स्वभाव की सौम्य पद्मा बायल की छपी हुई सफेद काले चेक का ब्लाउज पहने हैं।'[१०२]

वर्माजी के ये नारी पात्र इस साधारण से चित्रण से सौन्दर्य की

दिव्यता को प्रदर्शित नहीं करते पर नारी सौन्दर्य का बाह्य रेखांकन अवश्य ही करते हैं। 'गौर वर्ण, सुन्दर मुखमुद्रा और दुबला शरीर। सफेद सिल्क की साड़ी पहने। माथे पर बिन्दी और अन्य साधारण श्रृंगार'[१०३] वाली युवती का चित्रण है साथ ही 'सरल और सुन्दर युवती हैं जो क्रीम रंग की साड़ी जिस पर नीला बार्डर। उससे उसका गौर वर्ण और भी निखर आया है'[१०४] जैसा अत्यन्त साधारण चित्रण है।

वर्माजी की विवाहिता नारी पात्रों के श्रृंगार में 'सिर में सिन्दूर'[१०५] लगाये स्त्री है तो कोई 'फूलों से अपना श्रृंगार किये है।'[१०६]

भारतीय संस्कृति की पहचान सिद्ध करती भारतीय नारी वर्माजी के नाट्य—साहित्य में प्रभावी रही है तो एकाधिक स्थानों पर वर्माजी ने आधुनिक नारी के बाह्य सौन्दर्य को उभारा है — 'उसकी स्त्री उषा लिपिस्टिक लगा रही है। सुन्दर मुख और निखरा हुआ रंग। फैशन ने उस पर पूर्ण प्रभाव छोड़ रखा है। सलोने मुख पर क्रीम और उस पर पाउडर की चाँदनी। क्रैप की साड़ी और उस पर बायलर का जम्पर। कानों में नये डिजायन के इयरिंग। कंधे के समीप डायमण्ड ब्रूच। गले में सोने की चेन और स्वस्तिका। हाथ में सोने की गोल घड़ी और एक पतली रेशमी चूड़ी।'[१०७]

आधुनिक नारी का बाह्य सौन्दर्य चित्रित करने में वर्माजी ने यहाँ पर थोड़ा विस्तार प्राप्त किया है। इस प्रकार के दृश्यांकन से किसी भी नारी के बाह्य रूप की एक प्रतिमा सी आँखों के सामने बन जाती हैं। यद्यपि वर्माजी साधारण नारी पात्रों के बाह्य सौन्दर्यांकन में विस्तार से बचते रहे हैं तथापि एकाधिक स्थानों पर उन्होंने विस्तार देकर नारी के सौन्दर्य को विशेष आभा प्रदान की है।

एक पच्चीस वर्षीया सुन्दर युवती प्रभा के सौन्दर्य वर्णन में वर्माजी ने 'रेशमी वस्त्र। माथे पर कस्तूरी बिन्दु, जैसे ईश्वर ने यौवन को माथे ही में कील

दिया है। बाल बिखरे हुए जो उसके अरुण कपोलों को छूते हुए कुछ तो उभरे हुए वक्षस्थल पर सिमिट गए हैं और शेष पीठ पर लहरा रहे हैं। नेत्रों में अमी–हलाहल–मद'[१०८] जैसे मादक–सौन्दर्य को नारी की प्रस्थिति के अनुसार ही उभारा है। प्रभा एक एक्ट्रेस है और परिस्थिति के अनुसार पात्रों का चित्रण करने में वर्माजी सिद्धहस्त रहे हैं।

पारिवारिकता भरे प्रसंगों में वर्माजी ने शांत, सौम्य, सुकुमार सौन्दर्य के दर्शन करवाये हैं। ऐसे दृश्यों में उन्होंने आभूषणों आदि के द्वारा दिव्यता प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

'सुलेखा आबेरवां की साड़ी और नीले रंग का ब्लाउज पहने है। हल्के और नये डिजायन के आभूषण जिनमें मूल्य की अपेक्षा शोभा अधिक है। हाथों में एक रेशमी चूड़ी जो ओपल की भाँति अनेक रंगों की किरणें फेंक सकती है'[१०९] तो 'सौम्य एवं सुन्दर सरोज जो हल्के हरे रंग की साड़ी और पीले रंग का ब्लाउज पहने है। गले में सोने की चेन और माथे पर मंगल तारे की भाँति हलकी लाल बिन्दी'[११०] से वर्माजी ने नक्षत्रीय आभा प्रकीर्णित की है।

नाट्य–साहित्य में वर्माजी ने भाषा का विशेष ध्यान रखा है। भाषा की सजगता और नारी के प्रति सम्मान की भावना ने वर्माजी की लेखनी से नारी का बाह्य सौन्दर्य अश्लील अथवा मलिन नहीं होने दिया। नवीन उपमानों के कारण इनके नारी पात्र एक प्रक़ार की दिव्यता प्राप्त करते दिखते हैं।

तुलसीदास की पत्नी रत्ना के बाह्य सौन्दर्य का दृश्यांकन करते समय वर्माजी ने इसी तरह की दिव्यता उसे प्रदान की है – 'नीले परिधान में उसका गौर वर्ण अत्यन्त आकर्षक लग रहा है। खुले हुए लहराते केश,मानो सावन के मेघ लहरा कर उसके केशों में लीन हो गए हैं। माथे पर कस्तूरी बिन्दु। नेत्रों में अंजन और उल्लास की क़ांति,कानों में फूलों के झुमके, मानो एक नवीन

शकुन्तला पृथ्वी पर अवतरित हुई हो।'[१११] इस प्रकार के दृश्य नारी पात्रों के सौन्दर्य को पाठकों के हृदय में चिरस्थायी बना देते हैं।

वर्माजी के ज्यादातर नारी पात्र साड़ी—ब्लाउज जैसे भारतीय परिधान में अपना बाह्य सौन्दर्य प्रदर्शित करते आये हैं। एकाधिक स्थानों पर वर्माजी ने अपने नारी पात्रों की वेशभूषा को उनकी स्थिति के अनुसार चित्रित कर सौन्दर्य बोध की नवीन दृष्टि आरोपित की है। 'चाँद सितारे वाली को सलवार और जरीदार कुर्ता पैरों में जरी की जूतियाँ पहने दिखाया है।'[११२]

डॉ० रामकुमार वर्मा ने नाट्य—साहित्य की रचना रंगमंच की दृष्टि से की थी। इस कारण वे पात्र परिचय के अवसर पर, दृश्यांकन करते समय अथवा दृश्य—विधान की पूर्ति करते समय ही पात्रों के सौन्दर्य को दर्शाते हैं। सामाजिक नाटकों की अपेक्षा सामाजिक एकांकियों की रचना वर्माजी ने अधिक की है। एकांकियों की समयबद्धता, अंकबद्धता के कारण यहाँ दृश्य विस्तार नहीं है। इस कारण भी नारी पात्रों के सौन्दर्य को मात्र परिचयात्मक रूप में ही पाठकों के समक्ष रखा है। उनके नाट्य—साहित्य की अनेक नारी पात्र अपनी सौन्दर्याभा को बिखेरे बिना ही रह गईं। आन्तरिक गुणों को भी वर्माजी के नारी पात्र संवादों और क्रिया —कलापों के द्वारा दर्शा सके हैं।

२. आन्तरिक सौन्दर्य

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नाटकों—एकांकियों में नारी पात्रों के बाह्य सौन्दर्य को विस्तारपरक नहीं होने दिया है। नाटकों में वे पूर्ण रूप से कथा—प्रवाह ऐतिहासिकता की ओर ध्यान देते रहे और एकांकियों में उन्होंने सीमाबद्धता की स्थिति की पूर्णता के लिए कथा की गतिशीलता बनाये रखी है। बाह्य सौन्दर्य की पूर्ति वे दृश्यांकन अथवा दृश्य—विधान में पात्र परिचय के रूप में करते रहे हैं उसी तरह आन्तरिक सौन्दर्य को कथा के साथ साथ विविध स्थानों

पर कथोपकथन के द्वारा अथवा नारी पात्रों के कार्यों द्वारा प्रदर्शित करते रहे हैं।

नारी पात्रों का आन्तरिक सौन्दर्य उनकी वीरता, बुद्धिमत्ता, स्वाभिमान, सेवाभाव, धर्मपरायणता, आदर्शवादिता, ममता, दया, प्रेम आदि रूपों में सामने आया है। नाटकों—एकांकियों में वर्माजी को नाटकों के नारी पात्रों का आन्तरिक सौन्दर्य दर्शाने का अधिक अवकाश मिला है। एकांकी में सीमाबद्धता, समयबद्धता होने के कारण कथा को विस्तार प्राप्त नहीं हो पाता। इसके साथ—साथ वर्माजी के अधिकतर एकांकी सामाजिक श्रेणी के हैं। इन एकांकियों के नारी पात्र, साधारण नारी रूप में हैं, जिनमें आन्तरिक गुणों की विशिष्टता वर्माजी ने प्रदर्शित नहीं की है। एकाधिक स्थानों पर इन साधारण नारी पात्रों से दया, करुणा, मातृत्वभाव, कर्तव्यपरायणता का सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ है।

ऐतिहासिक नाटकों—एकांकियों की नारी पात्रों में गौहरबानू, काशीबाई, महादेवी, श्रीमाया, वासवी, वासवदत्ता आदि को विविध रूपों में आन्तरिक सौन्दर्य की गरिमा प्रदान की गई है।

मुल्ला अहमद की पुत्रवधू 'गौहरबानू कैद में होने के बाद भी अपने साहस, वीरता भाव को नहीं त्यागती है। वह शिवाजी के दर्शन, उनकी बहादुरी के कारण करना चाहती है। उसका कहना है कि वह श्रीमन्त के दर्शनोपरान्त खुदकुशी कर लेगी। इस बात का प्रमाण वह अपने कपड़ों में छिपी कटार को दिखा कर प्रस्तुत करती है।'[११३]

'मेवाड़ की, राजपूताने की स्त्रियों को वीरता, साहस से ओतप्रोत दिखाया है। यहाँ की नारियों ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए जौहर व्रत धारण कर अपने शरीर का होम कर दिया।'[११४]

शौर्य, साहस का गुणगान इतिहास में सदा क्षत्राणियों द्वारा किया जाता रहा है। युद्ध भूमि में अपने पति—पुत्र को मंगलतिलक लगा कर भेजना

नारियों के वीर, साहसी होने का प्रमाण है। वर्माजी ने भी अपने नाट्य–साहित्य में क्षत्राणी नारियों के आन्तरिक सौन्दर्य में वीरता, शौर्य, साहस को दर्शाया है।

संयोगिता पृथ्वीराज को युद्धभूमि में भेजने के पूर्व उनका मंगलतिलक करने की बात को साहस से करती है – ''आक्रमण की बात सुनकर मैं अपने साथ ही नया कृपाण ले आई हूँ स्वामी! मैं अपने हाथ से ही मंगलतिलक करूँगी और आपकी म्यान में नया कृपाण रखूँगी।''[११५]

क्षत्राणियों को शौर्य, साहस, वीरता की प्रतिमूर्ति दर्शाया जाता रहा है। वर्माजी ने अपने नाट्य–साहित्य में एक वनकन्या मंजूघोषा को भी वीर, साहसी दिखाया है। 'वह अपनी सारिका की मृत्यु के पश्चात सैनिकों को ललकारती हुई उन्हें चुनौती देती है – ''तुमने अपने धनुष–बाण कहाँ छिपा रखे हैं? मेरी निरीह सारिका के कोमल प्राणों में आग लगा कर तुम अपने वाक्यों का शीतल जल प्रयोग करना चाहते हो? कहाँ हैं तुम्हारा धनुष ? कहाँ हैं तुम्हारे बाण? देखूँ तुम्हारे बाणों में अधिक तीक्षणता है या मेरे इस कृपाण में।''[११६]

वर्माजी ने अपने नारी पात्रों में स्वाभिमान, शौर्य, साहस का अद्‌भुत सौन्दर्य प्रकीर्णित किया है। मंजूघोषा का अपनी निरीह पक्षी के प्रति प्रेम और उसकी मृत्यु का बदला लेने की चाह उसके प्रेममयी शौर्य को दर्शाता है।

आत्मसम्मान की रक्षा की खातिर भी शौर्य की घटनाओं से इतिहास भरा पड़ा है। श्रीमाया शौर्य के कारण ही दुर्गादास से अपने आत्मसम्मान की रक्षा की बात कर पाती है – ''औरंगजेब का फौलादी पंजा यदि सामने होता भी तो क्षत्राणी अपनी रक्षा स्वयं कर सकती हैं। मेरे महाराणा तो बादशाह से नहीं लड़ सकते थे। मैं अपनी कटार का प्रयोग करना जानती हूँ।''[११७]

क्षत्राणियों अथवा राजकन्याओं में ही स्वाभिमान की भावना नहीं थी, राजनर्तकी वासवदत्ता भी स्वाभिमान से ओत–प्रोत दिखायी गई है। अपने शारीरिक

समर्पण की बात का वह स्वाभिमानपूर्वक विरोध करती है — "वासवदत्ता ने आज तक आत्मसमर्पण नहीं किया। वह आनन्द और विलास की सूत्र—धारिणी है — पात्र नहीं। वह वसन्त सुषमा की भाँति प्रत्येक फूल खिलाती है, फूल नहीं बन जाती। वह अभिनय का सत्य है, सत्य का अभिनय नहीं।"[११८] स्वाभिमान का यह स्वरूप आन्तरिक सौन्दर्य की दिव्यता को आभासित करता है।

नारी पात्रों को वर्माजी ने वीरता, शौर्य, साहस जैसे आन्तरिक सौन्दर्य से सँवारा है तो उसे बुद्धिमती, सेवा, दया से ओतप्रोत दिखाया है। कुन्ती के सेवाभाव से प्रसन्न होकर दुर्वासा ऋषि स्वयं उसकी सेवा, श्रद्धा का सौन्दर्य पाठकों के सामने बिखेरते हैं — "भद्रे! मैं तुम्हारी सेवा से बहुत प्रसन्न हूँ! इस निवास में आये मुझे पूरा एक वर्ष हो गया। आज तक मैंने तुम्हारे सेवा—भाव में एक भी त्रुटि नहीं देखी। जैसे सूर्य प्रतिदिन उदय होकर अस्त होता है, उसी भाँति तुम्हारा कार्य जिस श्रद्धा से आरम्भ होता है उसी श्रद्धा से समाप्त भी होता है।"[११९] कुन्ती के सेवाभाव की सौन्दर्यानुभूति से दुर्वासा ऋषि प्रसन्न होकर उसे मंत्र प्रदान करते हैं जिससे किसी भी देवता का आवाहन किया जा सकता था।

सेवाभाव लिए नारी पात्रों में वर्माजी के साधारण नारी पात्र भी हैं जो सेवाभाव से अपने घर, परिवार की सेवा कर रहे हैं। गरीब अनाथ लड़की करुणा 'अपनी भूखी माँ की सेवा करने के लिए, उसकी भूख मिटाने को विविध रूप धारण कर भोजन का, रुपयों का प्रबन्ध करती है। दूध प्राप्त होने पर वह स्वयं नहीं पीती है अपितु अपनी माँ को देना चाहती है। ऐसी लड़की गंगा—जल की तरह पवित्र, केसर की तरह सुगंधित, कपूर की तरह शीतल स्वभाव वाली होती है।'[१२०]

भूखी माँ के प्रति सेवाभाव, करुणा आदि का सौन्दर्य किसी भी नारी का ममत्व रूप होता है। भारतीय संस्कृति में नारियाँ ममतापूर्ण आन्तरिक

सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं। ममता, दया, प्रेम की उज्ज्वलता में अन्य आन्तरिक गुणों का सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है।

माँ की ममता को नारी के श्रेष्ठ सौन्दर्यात्मक गुणों में स्वीकारा गया है। माँ की ममता के कारण ही 'गन्नू की माँ न्यायाधीश के समाने अपने पुत्र को तलवार से न काटने की बात कह कर उसे सामने वाली दूसरी स्त्री को देने की गुहार करती है।'[१२१]

एक माँ अपने बच्चे की रक्षा की खातिर उसे दूसरी स्त्री को देने की याचना करती है दूसरी ओर एक माँ अपने पुत्र को भूख से मरने से बचाने के लिए भीख माँगती है'[१२२] इस याचना से द्रवित होकर, ममता में बह कर रानी वासवी उसे सांत्वना देती है– ''तुम्हारा लाल तड़प–तड़प कर नहीं मरेगा। मैं तुम्हारे लिए– तुम्हारे लाल के लिए–भिक्षा माँगूँगी । जो कार्य मैंने जीवन में कभी नहीं किया, वह तुम्हारे लाल के लिए करूँगी। मैं आर्यपुत्र के भोजन के लिए भिक्षा नहीं माँग सकी, पर तुम्हारे लाल के लिए भिक्षा माँगूँगी।''[१२३]

नारियों को मातृवत्सल दिखाया गया है तो पति के सम्मान सुख की रक्षा करते भी दर्शाया गया है। तुलसीदास जब अपनी पत्नी रत्ना से मिलने उसके मायके बिना आमंत्रण के चोरी छिपे रात में पहुँच जाते हैं तो रत्ना उनको सम्मान, पारिवारिक मर्यादा की रक्षा की खातिर वापस जाने को समझाती है–''अपनी मान मर्यादा और मेरी लोकलज्जा की तो रक्षा कीजिए ? मैं तो यही निवेदन करूँगी कि आप इसी समय यहाँ से चले जायें। कल मैं अपने भाई को आपकी सेवा में भेजूँगी कि वह आपको यहाँ आने का निमंत्रण दें। आप आवें। हम सब आपको सिर माथे लें। आपका यहाँ उचित सम्मान हो।''[१२४]

पति को उसकी मान–मर्यादा समझा कर उसके सम्मान की रक्षा करती नारी है। पति धर्म का पालन करती रत्ना के सौन्दर्य में जाग्रत होकर

तुलसीदास ने वैराग ले लिया और महापुरुष बन गये। पति के प्रति कर्तव्य का निर्वहन प्रत्येक पत्नी करती है। वह उसके सुख—दुख में पति का साथ निभा कर कर्तव्यपरायणता के गुण की उज्ज्वलता प्रकीर्णित करती है।

''माता जी! क्या आपके कटोरे में दूध है? थोड़ा सा दूध मुझे देने की कृपा करें। मेरे पतिदेव मृत्यु शैय्या पर पड़े हुए हैं। वैद्यराज ने एक दवा देकर कहा है यह दवा दूध के साथ ही दी जाये। तभी इसका असर हो सकता है। यदि आप कृपा कर थोड़ा सा दूध दे दें तो मेरे पतिदेव के प्राण बच जायेंगे। दूसरे कई घरों से दूध माँगने पर भी नहीं मिला।''[१२५] गरीब स्त्री द्वारा अपने पति की जीवन रक्षार्थ दूध माँगते घूमना पतिव्रता, कर्तव्यपरायणता का आन्तरिक गुण प्रदर्शित करता है। इस प्रकार के छोटे—छोटे उदाहरणों से वर्माजी ने नारी के आन्तरिक सौन्दर्य को प्रकीर्णित किया है।

अपने पति, अपने पुत्र की, अपनी रक्षा सभी नारियाँ करती दिखी हैं। इनका सौन्दर्य समय—समय पर उज्जवलता प्रदर्शित करता रहा है। वर्माजी ने एक ऐसी स्त्री को अपने नाट्य—साहित्य का हिस्सा बनाया जिसने अपनी कर्तव्यभावना, स्वामीभक्ति, देशप्रेम का ऐसा अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया जिससे पाठक ही नहीं समस्त भारतीय संस्कृति अभिभूत है। 'पन्ना धाय चित्तौड़ की रक्षा की खातिर, राजकुमार उदय की रक्षा की खातिर अपना पुत्र न्यौछावर कर देती है।'[१२६]

वर्माजी ने नारी पात्रों में आन्तरिक सौन्दर्य को नारी गुणों के अनुरूप ही दर्शाया है। राजपरिवारों से सम्बद्ध स्त्रियों को साहसी, वीरोचित गुणों के सौन्दर्य से परिपाक कर दिव्यता प्रदान की है साथ ही बुद्धिमत्ती, आदर्शवादी और धर्मपरायणता के गुणों से भी संस्कारित किया है।

आबाजी सोनदेव की बहिन 'काशीबाई अपनी बुद्धिमत्ता और

वाकचातुर्य से गौहरबानू की कटार छीन लेती है।"[१२७] कटार छीन लेने से वह एक ओर गौहरबानू की रक्षा करती है साथ ही अपने भाई आबाजी सोनदेव की राजनीतिक चाल की भी रक्षा करती है।

सफीयत अपनी आदर्शवादिता का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करती है। वह वीर दुर्गादास के संरक्षण में रह रही होती है। राजकुमार अजीत सिंह उससे प्रेम करने लगते हैं। सफीयत भी राजकुमार से प्रेम करती है। 'दुर्गादास जब उसे अच्छे बुरे का ज्ञान करवाते हैं तब वह राजस्थान की मर्यादा और राजवंश की पवित्रता के लिए दुर्गादास की आज्ञा के लिए कुमार के मार्ग से हट जाने का वचन देती है। अपने प्राण तक देने को तैंयार रहती है।'[१२८]

सफीयत को धार्मिक प्रवृत्ति की नारी रूप में वर्माजी ने दर्शाया है। 'वह तुलसी की पूजा करती है'[१२९] और दुर्गादास की उदारता की तारीफ करती है। वह अपनी सहचरी आयशा से कहती है — "तो क्या चाचा दुर्गादास ने मुझे कुरान पढ़ने से रोक दिया है? वे तो यही चाहते हैं कि मैं हदीस और कुरान पढ़ूँ, लेकिन मेरा मन ही नहीं लगता कुरान पढ़ने में। मैं तो संस्कृत पढ़ती हूँ और देवी—देवताओं को मानती हूँ।"[१३०]

डॉ० रामकुमार वर्मा द्वारा वर्णित इन गुणों से नारी पात्रों का आन्तरिक सौन्दर्य निखर कर सामने आया है। ममता, दया, करुणा, क्षमा, शौर्य, साहस, वीरता, स्वाभिमान, आदर्शवादिता, बुद्धिमत्ता के सौन्दर्य से नारी पात्रों का संसार अपनी उज्ज्वलता से पाठकों को अभिभूत करता है साथ ही नाट्य—साहित्य को भी समृद्ध करता है।

(ग) बाल सौन्दर्य

पुरुष और नारी सौन्दर्य के साथ—साथ साहित्य में बाल सौन्दर्य का भी महत्व रहा है। बाल सौन्दर्य में "यौवन का उष्ण विलास और उन्माद न होकर

केवल निश्छल सरलता होती है। पवित्र समीर की तरह बालमन भी दूसरों को गुदगुदाता है। यही कारण है कि बाल सौन्दर्य मन को प्रफुल्लित करता है। कवि शिरोमणि महाकवि सूरदास ने भगवान श्रीकृष्ण के बाल रूपों का जिस वैभव के साथ चित्रण किया है, उसकी रश्मियों से हिन्दी साहित्य एवं साहित्यकार आज तक आभासित हो रहे हैं। बालमन की सरल सुलभ, निश्छल चेष्टाओं के कारण उसे भगवान का रूप माना जाता है। उसकी मनोहारी भंगिमाएँ, मनमोहक क्रियाएँ हृदय को आनन्दित करतीं हैं। उसके इसी सहज, सरल स्वरूप से बाल सौन्दर्य निखर कर सामने आता है।

साहित्य में बाल सौन्दर्य चित्रण की परम्परा बहुत प्राचीन है। सूरदास के बाल कृष्ण और तुलसी के बाल राम से प्रेरणा प्राप्त कर अनेक कवियों ने आधार बना कर रचनाएँ की परन्तु इधर आधुनिक युग में बाल सौन्दर्य चित्रण की ओर साहित्यकारों द्वारा अधिक ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

डॉ० रामकुमार वर्मा के नाट्य—साहित्य में भी बाल सौन्दर्य का अंकन यदा—कदा ही किया गया है। उनका सारा ध्यान नाटकों में ऐतिहासिकता, तथ्यों, सत्यों आदि के प्रस्तुतिकरण में रहा साथ ही रंगमंच की दृष्टि से वे नाटकों को रचते रहे इसलिए बाल सौन्दर्य को उतना महत्व नहीं दे सके। ऐतिहासिक नाटकों—सामाजिक नाटकों में वे कथा प्रवाह, ऐतिहासिक पात्रों को गौरवशाली रूप में प्रस्तुत करते रहे पर किसी भी रूप में बाल सौन्दर्य को चित्रित नहीं कर सके।

हालांकि उनके ऐतिहासिक नाट्य—साहित्य में महाराणा प्रताप की पुत्री देवला, उदयसिंह, कुन्तीपुत्र कर्ण आदि पात्र बाल रूप में आये हैं पर वे भी विस्तार प्राप्त नहीं कर सके। बाल सौन्दर्य को वर्माजी नें परिचयात्मक रूप में ही दर्शाया है।

१. बाह्य सौन्दर्य

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नाट्य–साहित्य में अनेक स्थानों पर बालक–बालिकाओं का दृश्य प्रस्तुत किया है पर वह मात्र परिचयात्मक रूप में है उस चित्रण से किसी भी प्रकार के सौन्दर्य का आभास नहीं होता है। देवला, कर्ण, खाण्डेकर, उदयसिंह, नाग, किष्कु जैसे ऐतिहासिक बाल पात्रों के साथ–साथ गन्नू, ललिता, सकीना, रूपा, रामू, बलकरन आदि जैसे साधारण परिवारों के बालक–बालिकाओं आदि का चित्रण किया है पर यह परिचय से अधिक नहीं है।

'यह छोटी सी बच्ची सफीयत उदय होते सूर्य में ही लाल रंग देखती है,'[१३१] 'हमारी छोटी बेटी देवला जब घास की रोटी खा कर अपनी दो दिनों की भूख शांत कर रही थी,'[१३२] '६ वर्षीय सकीना बरामदे की चटाई पर बैठी है। लकड़ी का एक खिलौना उसके हाथ में है,'[१३३] 'आठ वर्ष का बालक आकर वृद्धा की लाठी पकड़ लेता है,'[१३४] 'एक ओर एक स्टैण्ड पर गन्नू कपड़ों में ढँका लेता हुआ है,'[१३५] 'उसका लड़का बलकरन तख़्त पर बैठा हुआ एक पत्थर के टुकड़े पर अपना चाकू तेज कर रहा है'[१३६] जैसे छोटे–छोटे वाक्यों से वर्माजी ने बाल पात्रों का परिचय तो प्रस्तुत किया है किन्तु इसमें किसी प्रकार का बाह्य सौन्दर्य आरोपित नहीं हो सका है।

इन बाल पात्रों के अतिरिक्त अहिल्याबाई, राज्यश्री, नाग, किष्कु, कर्ण, ललिता आदि बाल पात्रों का थोड़ा बहुत बाह्य शारीरिक सौन्दर्य वर्माजी ने उकेरा है।

अहिल्याबाई की अवस्था आठ–नौ वर्ष की है। 'वह अत्यन्त भव्य वेश में है। बिखरे हुए केशों में पुष्प का शृंगार। चौड़े माथे पर कुंकुम की रेखा के नीचे बिन्दु, लम्बी खिंची हुई भौंहें। बड़े–बड़े नेत्रों में काजल की रेखा। आँखों में दीप्ति। चिबुक पर हरा बिन्दु। गले में मोतियों की माला। कमर में पतली किंकिणी।

पैरों में नूपुर और महावर की रेखा और पुष्पाकृतियाँ। लगता है जैसे गंगोत्री से गंगा का प्रवाह हुआ है।'[१३७]

राजकुमारी अहिल्याबाई की ८—९ वर्ष की अवस्था का यह सौन्दर्य पाठकों को आभासित करता है। इसी बाल सौन्दर्य की आभा में खाण्डेराव के पिता उसके विवाह की बात चलाते हैं।

राजकुमारी राज्यश्री १४ वर्ष की हैं और अपने सौन्दर्य एवं नृत्य से सभी को अभिभूत कर देती है। वर्माजी ने राज्यश्री का बाह्य सौन्दर्यपूर्ण सुसज्जित रूप में पाठकों के समक्ष उकेरा है — 'मुख पर हलकी मुसकान, केशों में पुष्प—हार,मस्तक पर केसर की पत्रावली,बड़े—बड़े नेत्रों में अंजन, ओठों पर सु—राग रंजन, चिबुक पर कस्तूरी बिन्दु, कानों में शिरीष कलिकाएँ, कण्ठ में रत्नहार, कटि में किंकिणी, पैरों में नूपुर। नील चीनांशुक की कंचुकी, शृंगार रस के मात्र स्थायी भाव की भाँति वक्षस्थल जिसमें संचारियों का योग नहीं है। बैंगनी रंग का उत्तरीय और हरित अधोवस्त्र, पैरों में जावक।'[१३८]

राजकुमारियों के अतिरिक्त वर्माजी ने साधारण कन्या के बाह्य सौन्दर्य का चित्रण किया है पर यह सौन्दर्य चित्रण भी किसी प्रकार की दिव्यानुभूति पाठकों को नहीं करवाता है— 'ललिता सात वर्ष की बालिका है। बड़ी चंचल और मचलने वाली। तितली की तरह उड़ती आती है। उसके माथे पर बाल फैल रहे हैं पर सुन्दरता के साथ।'[१३९] यह सौन्दर्य भले ही कसी प्रकार की आभा को नहीं दर्शाता पर बालसुलभ चेष्टाओं और क्रियाओं को अंवश्य प्रदर्शित करता है।

वर्माजी ने आचार्य चरक का पोष्य पुत्र नागबन्धू और कनिष्क के पुत्र किष्कु का बाल रूप सौन्दर्य पाठकों के समक्ष रखा है पर यह भी किसी विस्तार के अभाव में मात्र चित्रण ही प्रतीत होता है। इस बाह्य चित्रण से किसी प्रकार की सौन्दर्यानुभूति नहीं होती है। 'दोनों बालक किशोरावस्था के हैं। देखने में सुडौल

और सुन्दर। दोनों की मुख–मुद्रा पर उत्साह और प्रसन्नता की झलक है। नाग सामान्य बालक है किन्तु किष्कु तेजस्वी और कुशल ज्ञात होता है।'[१४०]

राजपरिवारों से सम्बद्ध बालकों के चित्रण के अतिरिक्त वर्माजी ने तुलसीदास के बाल रूप का चित्रण कुछ इस प्रकार किया है – 'कंधे पर झोली टाँगे, एक हाथ में पतली लकड़ी लिए और फटे कपड़े पहिने सात वर्षीय रामबोला का प्रवेश।'[१४१] रामबोला का यह चित्रण किसी भी सौन्दर्य की पूर्ति न करके परिचय ही प्रस्तुत करता है।

कुन्ती के नवजात शिशु कर्ण का सौन्दर्यात्मक चित्र वर्माजी ने अवश्य उकेरा है। कुन्ती की सखी मंजरी उसको देख कर प्रफुल्लित होती है। नवजात शिशु के सौन्दर्य को उसी के द्वारा वर्माजी ने कुछ इस प्रकार दर्शाया है –''ऐसा सुन्दर शिशु तो मैंने अपने जीवन में कभी देखा ही नहीं। उसके सारे शरीर से प्रकाश निकल रहा था। उसके शरीर पर साने का कवच है, लगता है प्रभातकाल का बादल उससे लिपट गया है। कानों में कुण्डल हैं जैसे सूर्यमंडल ने ओंकार का रूप घारण कर उसके कानों में निवास किया है। ऐसा लगता है भगवान सूर्य ही शिशु का रूप धारण कर भूमि पर उतर आए हैं।''[१४२]

भगवान सूर्य और कुन्ती के संयोग से उत्पन्न नवजात शिशु अपनी दिव्य आभा का सौन्दर्य चारों और फैलाता है। कुन्ती स्वयं भी उसके रूप–रंग से प्रभावित थी, उसकी सहेली भी शिशु का सौन्दर्य देख दिव्यानुभूति करती है पर लोक लाज के भय से कुन्ती को अपना पुत्र त्यागना पड़ता है। एक पिटारी में बंद कर शिशु को नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है। यह पिटारी सूतराज अधिरथ की पत्नी राधा को गंगा स्नान करते समय चम्पापुरी में प्राप्त होती है।

सन्तानहीन राधा तथा अधिरथ उस शिशु को पाकर प्रसन्न होते हैं। शिशु कर्ण के सौन्दर्य से वे दोनों ही अभिभूत होते हैं। राधा को वह शिशु

'प्रभातकालीन सूर्य की भाँति लगता, जिसके शरीर पर कवच और कानों में कुण्डल जगमगा रहे थे। यह कमल के भीतरी भाग के समान कान्ति वाला और शोभाशाली शिशु था।'[१४३] अधिरथ को यह शिशु किसी 'देवता का ही शिशु लगता था।'[१४४] शिशु कर्ण का यह चित्रण सौन्दर्य तो उत्पन्न करता ही है साथ में विशेष प्रकार की दिव्यानुभूति भी करवाता है।

वर्माजी द्वारा बाल सौन्दर्य के बाह्य रूप को अधिक आकर्षण से चित्रित नहीं किया गया है। अधिकतर बालपात्रों को परिचयात्मक रूप में ही नाट्य—साहित्य में स्थान प्राप्त हुआ है।

२. आन्तरिक सौन्दर्य

डॉ० रामकुमार वर्मा ने बाल सौन्दर्य का विशद् वर्णन नहीं किया है। बाह्य सौन्दर्य में वर्माजी ने एकाधिक बाल पात्रों का सौन्दर्य ही दर्शाया है। ये बाल पात्र नाट्य—साहित्य की कथा प्रवाह के साथ आयु में भी विस्तार पाते रहे हैं। अहिल्याबाई वैवाहिक जीवन पश्चात् राज्य संचालन करने लगीं और राज्यश्री भी राज्य संचालन में सहयोग करने लगीं। शिशु कर्ण का शिशु रूप अत्यल्प ही दर्शाया गया है। बाल रूप में उसकी किसी भी बाल सुलभ चेष्टाओं अथवा क्रियाओं का चित्रण डॉ० वर्मा ने नहीं किया है।

तुलसीदास के बाल रूप रामबोला का संक्षिप्त सा चित्रण किया है। उसी संक्षिप्त चित्रण में रामबोला का आन्तरिक सौन्दर्य निखर कर सामने आया है। दया, करुणा का भाव रामबोला में गरीबी के बाद भी दर्शाया गया है। अपने भूखें होने के बाद भी रोटी के टुकड़े को कुत्ते को खिलाने की घटना रामबोला स्वयं बताता है — "रोटी का एक ही टुकड़ा था। मैंने लकड़ी से कुत्ते को हटा दिया और रोटी का टुकड़ा ले लिया। बाद में लगा कि कुत्ता बहुत भूखा है तो वह टुकड़ा कुत्ते को दे दिया। कुत्ता भी भूखा और मैं भी भूखा!"[१४५]

ऐतिहासिक पात्रों में वीरता का भाव सदैव रहा है चाहे वह पुरुष पात्र रहा हो, नारी पात्र रहा हो अथवा बाल पात्र रहा हो। कनिष्क के पुत्र किष्कु में भी वीरता का आन्तरिक गुण वर्माजी ने अत्यल्प रूप में दर्शाया है। किष्कु ऋषि चरक के आश्रम में रहता है। वह आखेट पर आये अपने पिता कनिष्क को नहीं पहचान पाता है। अपने बनाये स्तूप को बचाये रखने की बात करता है। स्वयं को बह्मचारी अशोक बताकर कनिष्क से कहता है — "मैंने क्षमा किया! आप आखेटक हैं, हिंसक हैं, किन्तु फिर भी आप इस कुटी में अतिथि हैं। कहिए. ....क्या सेवा करूँ।"[१४६] यह दृश्य बालक किष्कु के साहसी, सेवाभाव एवं अतिथि सेवा जैसे आन्तरिक गुणों को दर्शाता है।

वीरता का भाव बालक बलकरन में भी दिखाया गया है। गरीब परिवार का बालक देश काल परिस्थितियों के कारण साहसी होता है। उसकी झोपड़ी में तैमूर आकर उसके हाथों से दूध झीन कर पी जाता है। बलकरन यह जान कर भी कि वह गाजी तैमूर है बिना डरे उसका मुकाबला करने को उसे ललकारता है — "तुम्हारी तलवार अब मेरे हाथ में है। अब तुम मुझसे लड़ सकते हो। सामने आओ।"[१४७] अपने साहस और दृढ़ता के कारण तलवार छिन जाने के बाद भी बालक बलकरन अपनी चाकू से ही तैमूर का मुकाबला करने की हिम्मत करता है — "मेरे पास चाकू है। इसी से लडूँगा। हाँ, थोड़ी देर पहले मैने इसे तेज किया है। देखो यह इतना तेज है — मेरी उँगली से खून निकाल सकता है।"[१४८] बालक बलकरन के ऐसे वीरता भरे हावभाव देख कर तैमूर भी उसे सलाम कर गाँव में तबाही मचाये बिना वापस चला जाता है। बाल सौन्दर्य के आन्तरिक गुणों में वीरता, साहस,दृढता का यह सम्मिश्रण पाठकों को भी अभिभूत करता है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने बाल सौन्दर्य के आन्तरिक गुणों की आभा में

विशेष रूप से साहस, वीरता को दर्शाया है। बाल सौन्दर्य का अत्यल्प दृश्यांकन कर बाल सुलभ क्रियाओं, चेष्टाओं आदि को न दर्शाकर उसका बाह्य शारीरिक सौन्दर्य दर्शाया है।

(घ) मानवेतर चेतन जगत् अर्थात् पशु पक्षी आदि

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने विस्तृत नाट्य–साहित्य में मानव सौन्दर्य के विविध रूपों की बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्यात्मक गुणों के साथ प्रस्तुति की है। पुरुष सौन्दर्य से, नारी सौन्दर्य से पाठक अभिभूत हुए बिना नहीं रहते हैं। कुछ स्थलों पर वर्माजी ने बाल सौन्दर्य के बाह्य एवं आन्तरिक गुणों का दृश्यांकन किया है।

प्रकृति की सर्वोत्तम कृति मानव के अतिरिक्त वर्माजी ने अपने नाट्य–साहित्य में पशु पक्षी का चित्रण किया है। ऐतिहासिक नाटकों–एकांकियों में आखेटक के दृश्य भी वर्माजी ने प्रदर्शित किये हैं किन्तु इन आखेट के दृश्यों को सांकेतिकतापूर्ण ढंग से ही नाट्य–साहित्य में उकेरा गया है, इससे वे किसी भी वन्य–दृश्य, वन्य–जन्तु का चित्रण करते नहीं दिखे हैं। इस कारण से आखेट की स्थिति होने के बाद भी किसी पशु–पक्षी का सौन्दर्य सामने नहीं आता है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नाट्य–साहित्य में वनों, ऋषियों की कुटियों, झोपड़ियों का दृश्यांकन किया है। इनमें पशु–पक्षियों का चित्रण है पर किसी प्रकार का वर्णन नहीं है और न ही किसी प्रकार का सौन्दर्य इनमें उकेरा है। दृश्य–विधान में, परिचायत्मक रूप में, सांकेतिक रूप में अथवा पात्रों के द्वारा संवादों में पशु पक्षियों की चर्चा होती है। पर वह इस तरह की नहीं होती कि किसी प्रकार का सौन्दर्य बोध करवा सके।

चन्दन 'पहाड़ी खरगोश'[१४९] को देख कर प्रसन्नता से भर उठते हैं तो महाराणा प्रताप 'वन–बिलार'[१५०] द्वारा देवता के हाथों ग्रास की रोटी छीन ले

जाने से दुखी हैं। प्रताप को अपने 'घोड़े चेतक'[१५१] पर गर्व होता है तो मंजूघोषा अपनी 'सारिका'[१५२] की मृत्यु का बदला लेना चाहती है। देवदत्त को 'हंस'[१५३] का शिकार भोजन की दृष्टि से करना अच्छा लगता है तो राजकुमारी 'परिन्दा'[१५४] को पिंजरे से उड़ा कर स्वतंत्रता प्रदान करती हैं। वन में घूमता हुआ 'मृगछौना'[१५५] और गाती 'कोकिल'[१५६] महर्षि च्यवन की पत्नी सुकन्या को सुन्दरता का आभास कराते हैं तो राज—सेवक वन—प्रान्त में एकाएक 'शृगाल'[१५७] के आने पर चौंक उठते हैं। इसके अतिरिक्त दरोगा जी 'पूसी बिल्ली और टीपू कुत्ते'[१५८] की लड़ाई की चर्चा करते दिखाई देते हैं।

इन सारे चित्रों में विविध प्रकार के पशु पक्षी तो सामने आते हैं पर वे किसी प्रकार का सौन्दर्य आरोपित नहीं करते और न ही अपनी उपस्थिति से पाठकों को अभिभूत करते हैं।

पशु—पक्षी के सौन्दर्यबोध की दृष्टि से डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने एकांकी 'चंपक' में अवश्य ही एक छोटे से सुन्दर कुत्ते चंपक को पात्र बनाया है। इसी का सूक्ष्म सा सौन्दर्य चित्रण वर्माजी ने किया है – 'टेबिल पर छोटा सा कुत्ता बैठा हुआ है। उसके बड़े—बडे बाल है। माथे पर सफेद चिन्ह।'[१५९]

'चंपक' कुत्ते की प्रशंसा एकांकी का एक पात्र किशोर कुछ इस तरह से करता है – ''एक बार तुम्हें देख लूँ तो जान पड़ता है, प्रभात का नन्हा सा बादल आँखों में झूल गया है। तुम्हारे कान, जैसे रेशम के दो छोटे—छोटे टुकड़े ईश्वर ने तुम्हारे सिर के समीप गूँथ दिए हैं। तुम्हारी कोमल पूँछ इन्द्रधनुष के समान झुकी है।''[१६०]

'किशोर को कवि दिखाया गया है। वे चंपक पर एक कविता भी बना कर उसका सौन्दर्य बिखेरते हैं'[१६१]

रेशमी सी इस केश–राशि में

उलझा रहे मुधर–जीवन;

मेरे मन में यह तन हो, इस

तन में ही हो मेरा मन।

डॉ० वर्मा ने अपने विस्तीर्ण नाट्य संसार में एकमात्र पशु चंपक को अवश्य ही कुछ सुन्दरता प्रदान की है शेष के प्रति वे भावशून्य ही रहे हैं। ऐसा करने के पीछे सम्भवतः उनका उद्देश्य नाटकों के पात्रों की विशेषताओं को समाने लाना था। कथा प्रवाह में, दृश्यांकन में कथानुसार जब जैसा आवश्यक हुआ वर्माजी ने पशु पक्षी का चित्र खींचा है पर उसे सौन्दर्य प्रदान नहीं किया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने मानवीय सौन्दर्य को कथा, वातावरण, देशकाल के अनुसार उभारने का प्रयास किया है। ऐतिहासिक तथ्यों की सत्यता और भारतीय संस्कृति की भव्यता को वर्तमान में सहेज कर लाने में वर्माजी काफी सतर्क रहे हैं। इस के अतिरिक्त नाट्य–साहित्य को रंगमंच की दृष्टि से रचने के कारण भी वे मानवीय सौन्दर्य को वर्णनात्मक रूप से उभार पाने में सफल नहीं हो सके हैं। मानवीय सौन्दर्य के आन्तरिक पक्ष में वीरता, स्वामीभक्ति, सेवाभाव, ममत्व, नारी के प्रति सम्मान, बुद्धिमत्ता आदि–आदि गुणों की भरपूर दिव्यता पाठकों के समक्ष प्रदर्शित की है। पाठक भी मानवीय सौन्दर्य के आन्तरिक पक्ष की दिव्याभा की अनुभूति दीर्घकाल तक कर सकते हैं।

सन्दर्भ सूची

१. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन — वीणा माथुर, पृ० ३६

२. कौमुदी महोत्सव — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ११९

३. विजय पर्व — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७१

४. समुद्रगुप्त पराक्रमांक — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४० एवं

समुद्रगुप्त पराक्रमांक (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ७

५. देवीश्री अहिल्याबाई — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १०६

६. सरजा शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३९३ एवं

औरंगजेब की आखिरी रात (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३१९

७. जौहर की ज्योति — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२५ एवं

ध्रुवतारिका (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७०

८. भगवान बुद्ध — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४९४

९. ध्रुवतारिका (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७५

१०. शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३९

जौहर की ज्योति — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३३१

जय भारत — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४३१ एवं

मालव कुमार भोज — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३००

११. सत्य का स्वप्न — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३५०

१२. संत तुलसीदास — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४९

१३. परीक्षा (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २७८

शक्ति संजीवनी (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३८२ एवं

कार्यक्षेत्र में पुरस्कार (नहीं का रहस्य) (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७३

१४. मानसिक चोट (अठारह जुलाई की शाम) (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४४

१५. कौमुदी महोत्सव — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ११९

१६. विजय पर्व — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७१

१७. देवीश्री अहिल्याबाई — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १०६

१८. वही, पृ० १०६

१९. सरजा शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३९३

२०. औरंगजेब की आखिरी रात (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३१९

२१. पृथ्वीराज की आँखे (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२०

२२. वही, पृ० १२०

२३. स्वयंवरा — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७७

२४. भरत का भाग्य (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १०८

२५. भगवान बुद्ध — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४९४

२६. जौहर की ज्योति — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२५ एवं

ध्रुवतारिका (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७०

२७. शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृं० ३९

२८. जय भारत — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४३१

२९. देवीश्री अहिल्याबाई — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १४५

३०. महाराणा प्रताप — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४४२

३१. देवीश्री अहिल्याबाई — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १०६

३२. सत्य का स्वप्न — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३५०

३३. कार्यक्षेत्र में पुरस्कार (नहीं का रहस्य) (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७३

३४. परीक्षा (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २७८

३५. फैल्ट हैट (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२६

३६. कार्यक्षेत्र में पुरस्कार (नहीं का रहस्य) (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७४

३७. शक्ति संजीवनी (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३८२

३८. आँखों का आकाश (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६६

३९. मानसिक चोट (अठारह जुलाई की शाम) (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४४

४०. आशीर्वाद (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३३६

४१. संत तुलसीदास — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४९

४२. साँप (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ६३

४३. शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २३

४४. वही, पृ० ७२

४५. वही, पृ० ३९

४६. वही, पृ० ५७

४७. वही, पृ० ५०

४८. वही, पृ० ७१

४९. विजय पर्व — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १४७

५०. वही, पृ० १७५

५१. वही, पृ० १७९

५२. वही, पृ० १८९

५३. शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ७१

५४. विजय पर्व — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७९

५५. समुद्रगुप्त पराक्रमांक — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २६

५६. वही, पृ० २९

५७. कौमुदी महोत्सव — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२०

५८. राज्यश्री (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२

५९. पृथ्वीराज की आँखें (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२४

६०. कला और कृपाण – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५०

६१. उदयन (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २३७

६२. वही, पृ० २३९

६३. कौमुदी महोत्सव – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२५

६४. वही, पृ० १३९

६५. जौहर की ज्योति – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २९१

६६. वही, पृ० २९५

६७. महाराणा प्रताप – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ०४३७

६८. संत तुलसीदास – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २३७

६९. जय वर्धमान – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३५५

७०. वही, पृ० ३५७

७१. भगवान बुद्ध – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४९८

७२. वही, पृ० ५३७

७३. फैल्ट हैट (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १३९

७४. परीक्षा (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २७७

७५. एक हजार रुपया (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ६७

७६. शहनाई की शर्त (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १८६

७७. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन – वीणा माथुर, पृ० १८७

७८. वही, पृ० १८७

७९. समुद्रगुप्त पराक्रमांक – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२

८०. देवीश्री अहिल्याबाई – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १०९

८१. वही, पृ० १०९

८२. भाग्य नक्षत्र (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६०

८३. जय वर्धमान — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७६

८४. मालव कुमार भोज — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२०

८५. शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४६

८६. वही, पृ० ४६

८७. वही, पृ० ४८

८८. औरंगजेब की आखिरी रात (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२०

८९. ध्रुवतारिका (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३६१ एवं

जौहर की ज्योति — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३१४

९०. कुन्ती का परिताप — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३५१

९१. वही, पृ० ३५७

९२. सुकन्या (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४६

९३. शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३३

९४. ध्रुवतारिका (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३६१

९५. कला और कृपाण — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २६१

९६. जय वर्धमान — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३९५

९७. वासवदत्ता (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ८

९८. वही, पृ० ८

९९. अग्निशिखा — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १९५

१००. पुरस्कार (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५६

१०१. शक्ति संजीवनी (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३८२

१०२. शिकायत (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४००

१०३. रजनी की रात (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३१

१०४. कौतुक (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा पृ० २२७

१०५. शिकायत (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४००

१०६. रजनी की रात (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३१ एवं

नमस्कार की बात (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २८५

१०७. मानसिक चोट (अठारह जुलाई की शाम) (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४४

१०८. एक्ट्रेस (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २०१

१०९. आँखों का आकाश (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६६

११०. आशीर्वाद (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३३६

१११. संत तुलसीदास — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५२

११२. हीरे के झुमके (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १०५

११३. शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ५०

११४. महाराणा प्रताप — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४५५

११५. भाग्य—नक्षत्र (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६९

११६. कला और कृपाण — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४७

११७. जौहर की ज्योति— डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३००

११८. सारंग—स्वर — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ११

११९. कुन्ती का परिताप — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३४८

१२०. शहनाई की शर्त (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १९७

१२१. गन्नू की माँ (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३५७

१२२. सच्चे राज्य का तिरस्कार (रात का रहस्य) (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४३

१२३. वही, पृ० ४५

१२४. संत तुलसीदास — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५७

१२५. एक बूँद दूध (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५७

१२६. दीपदान (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ९०

१२७. शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ५५

१२८. जौहर की ज्योति — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३३५

१२९. वही, पृ० ३१५

१३०. वही, पृ० ३१७

१३१. वही, पृ० ३०९

१३२. महाराणा प्रताप — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४८१

१३३. जय बांगला — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२७

१३४. एक बूँद दूध (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५६

१३५. गन्नू की माँ (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३५३

१३६. तैमूर की हार (एकांकी)— डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२१

१३७. देवीश्री अहिल्याबाई — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १०९

१३८. जय आदित्य — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३०४

१३९. चंपक (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १४०

१४०. एक पत्र (छोटी सी बात) (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ६२

१४१. सोन का वरदान (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४१

१४२. कुन्ती का परिताप — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३६३

१४३. कर्मवीर — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४०९

१४४. वही, पृ० ४०९

१४५. संत तुलसीदास — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४१

१४६. सम्राट कनिष्क — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ६६

१४७. तैमूर की हार (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १३०

१४८. वही, पृ० १३०

१४९. दीपदान (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ७९

१५०. महाराणा प्रताप – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४८१

१५१. वही, पृ० ४७८

१५२. कला और कृपाण – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४६

१५३. भगवान बुद्ध – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४९७

१५४. औरंगजेब की आखिरी रात (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२४

१५५. सुकन्या (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४५

१५६. वही, पृ० २४४

१५७. कला और कृपाण – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४५

१५८. कार्यक्षेत्र में पुरस्कार (नहीं का रहस्य) (एकांकी) – डॉ० राम कुमार वर्मा, पृ० १७५

१५९. चंपक (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १३४

१६०. वही, पृ० १३४

१६१. वही, पृ० १३५

चतुर्थ अध्याय

प्रकृति सौन्दर्य

(क) आलम्बन रूप में

(ख) उद्दीपन या पृष्ठभूमि आदि रूप में

(ग) नैतिक या उपदेशात्मक रूप में

(घ) उपमान के रूप में

(च) अन्य रूप में

चतुर्थ अध्याय

प्रकृति सौन्दर्य

प्रकृति की विशालता के कारण उसे किसी परिभाषा की सीमा में बाँध पाना दुष्कर हैं। विभिन्न मतों के अनुसार प्रकृति की परिभाषाएँ भी अलग–अलग रहीं हैं। मानवेतर दृश्यात्मक जगत में जो कुछ दर्शनीय है उसे 'प्रकृति' की संज्ञा से निरूपित किया जा सकता है। 'सांख्य दर्शन में पुरुष एवं प्रकृति की व्याख्या की गई है। प्रकृति और पुरुष की पारस्परिक प्रतिक्रिया की बाह्य जगत की दृश्यात्मक सत्ता का कारण है। सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति की सत्ता सत्, रजस्, तमस् युक्त त्रिगुणात्मिका है–

त्रिगुणमविवेकि विषय: सामान्यम चेतनं प्रसवधर्म्मि।

व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान।।'[१]

अर्थात् समस्त संसार प्रकृति द्वारा उत्पन्न कहा जा सकता है। लता, वृक्ष, नदी, समुद्र, पर्वत, पठार, जीव–जन्तु आदि समस्त चराचर की उत्पत्ति प्रकृति के मूल से होती है। संसार के समस्त तत्वों को प्रकृति से उत्पन्न स्वीकारा गया है। 'इसी प्रकृति को शांकर वेदांत में माया रूप से अनिर्वचनीय तथा विशिष्टाद्वैत में अचित रूप से ब्रह्म का विशेषण कहा गया है। इस मत से प्रकृति सत्य मानी गई है।'[२]

ऐसा माना जाता है कि पृथ्वी, आकाश, वायु, जल एवं तेज पंच महाभूतों से मिल कर समस्त विश्व की रचना हुई है, चाहे वह जड़ हो अथवा चेतन। इन्हीं पंचतत्त्वों से निर्मित मानव भी प्रकृति की सीमा में आता है। इन्हीं पंच रूपों से निर्मित विविध रूपों, अवस्थाओं को पृथ्वी कहा जाता है। वन–वृक्ष, पशु–पक्षी, नदी– सागर, सूर्य–चन्द्रमा, ग्रह–नक्षत्र, दिन–रात, फूल–काँटे, नर–नारी आदि भी इसी प्रकृति में समाहित रहते हैं। प्रकृति शब्द का प्रयोग इसी

कारण इसी व्यापक अर्थ में किया जाता है।

प्रकृति अत्यन्त वैभवशालिनी और ऐश्वर्यमुक्त है। इसके विविध स्वरूप किसी न किसी प्रकार से मानव को हमेशा से प्रभावित करते रहे हैं। प्रकृति के शाब्दिक अर्थ— प्राकृतिक अथवा वास्तविक — से मानव हमेशा कुछ न कुछ प्राप्त करता रहा है। मनुष्य द्वारा अपने हाथों से सजाने, सँवारने वाली वस्तुओं के अन्तर्गत अपनी नैसर्गिक छटा से मानव को आकर्षित करने वाली वस्तुएँ ही प्रकृति है।

प्रकृति और मानव का सम्बन्ध अति घनिष्ट रहा है। प्रकृति की गोद में आँखें खोलने वाला मनुष्य पग पग पर प्रकृति से कुछ न कुछ सीखता रहता है। जीवन की बाह्य अनुभूतियों को पूरा करने के साथ—साथ अंतरंग अनुभूतियों को अपने रूप रंग से प्रभावित करने के कारण प्रकृति को मानव की सहचरी कहा गया है। प्रकृति रूपी इस सहचरी ने अपने अंग—अंग से मानव की सुन्दरता, मधुरता का रसपान कराया है। नदियों—झीलों का शीतल जल, मैदानों, खेतों की हरियाली, पंक्षियों की मधुर लय, सूर्य की लालिमा, बारिश का सतरंगी इन्द्रधनुष, फूलों की सुगंध आदि पल—पल मानव के सहभागी रहे हैं।

प्रकृति के साथ विविध रूपों में तादाम्य स्थापित होने के कारण से ही मानव ने प्रकृति के साथ विविध सम्बन्धों की स्थापना भी की है। वह प्रकृति के साथ सहज रूप से साहचर्य को भोक्ता— भोग्य, बीज—वृक्ष, सहचर— सहचरी, द्रष्टा— दृश्य, मातृ—शिशु, शिक्षक—छात्र, उद्दीपक— उद्दीप्य आदि अनेक रूपों में स्थापित करता है। इसी साहचर्य के सौन्दर्य को मानव ने अपनी रचनाओं— शिल्प, कला, संगीत, स्थापत्य, नृत्य, लेखन आदि में दर्शा कर उसके सौन्दर्य का परिपाक समस्त मानव संसार को करवाया है। एक लेखक ने प्रकृति के सौन्दर्य को गद्य एवं पद्य दोनों रूपों में चित्रित किया है। काव्य के द्वारा लेखक ने प्रकृति

को प्रेयसी, पत्नी, माँ, पुत्री आदि रूप में सौन्दर्य से मण्डित किया है तो गद्य लेखकों ने भी अपने उपन्यासों, नाटकों, कहानियों, निबन्धों में प्रकृति के सौन्दर्यात्मक स्वरूप को उभारा है।

साहित्यकार ही मानव के बाह्य और भागवत् लोक के रंगमंच—प्रकृति और मानव के क्रियाकलापों की सूक्ष्म, संश्लिष्ट प्रस्तुति का साहित्य में तारतम्य बनाता है। साहित्यकार ने प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य का ही चित्रांकन नहीं किया अपितु उसकी आत्मा को दृष्टिगत करके प्रकृति के उदारता, मातृवत्सलता, क्षमाशीलता आदि गुणों के आन्तरिक सौन्दर्य को भी अभिव्यक्त किया है।

साहित्यकारों ने साहित्य की विविध विधाओं उपन्यास, नाटक, निबन्ध, कहानी में प्रकृति की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति की है। उपन्यासों में किसी अन्य विधा की अपेक्षा किसी भी वर्णन का पर्याप्त अवकाश प्राप्त होता है। इसी कारण उपन्यास मे किसी अन्य गद्य विधा की अपेक्षा सौन्दर्य का चित्रण अधिक देखने को मिलता है। नाटकों में रंगमंच की सीमाएँ होती हैं, इस कारण से किसी भी वर्णन को अधिक अवकाश प्राप्त नहीं हो पाता है। किसी भी वर्णन में दृश्य—विधान का ही अवसर होता है और इसी समय नाटककार अपनी कल्पनाशीलता से सौन्दर्य निरूपण करता है। दृश्य— विधान, दृश्य— संयोजन के अतिरिक्त पात्रों के संवादों द्वारा भी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की जाती है। नाट्य— संसार के पात्रों, कथावस्तु, संवाद के द्वारा पात्रों के भावों— अनुभावों हेतु पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त करने के लिए, प्रकृति में मानवीकरण आरोपित करने में, प्रकृति को गुरु अथवा मार्गदर्शक के रूप आदि में प्रकृति का सौन्दर्यमयी चित्र प्रदर्शित किया जाता है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नाट्य— संसार में भारतीय संस्कृति का विशेष ध्यान रखा है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही प्राकृतिक सुषमा का

निरूपण करने का प्रयास किया है। चूँकि नाट्य साहित्य की अपनी सीमायें हैं और डॉ० वर्मा ने इन्हीं सीमाओं के साथ ही प्रकृति सौन्दर्य को विविध रूपों में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत अध्याय में डॉ० रामकुमार वर्मा के नाट्य– साहित्य में प्रकृति सौन्दर्य का आलोचनात्मक अध्ययन निम्न बिन्दुओं के परिदृश्य में करने का प्रयास किया गया है –

(क) आलम्बन रूप में,

(ख) उद्दीपन या पृष्ठभूमि आदि के रूप में,

(ग) नैतिक या उपदेशात्मक रूप में,

(घ) उपमान के रूप में,

(ङ) अन्य रूप में.

(क) आलम्बन रूप में

जब कोई साहित्यकार प्रकृति वर्णन का उद्देश्य मात्र प्रकृति के रूप ही चित्रित करना होता है; यहाँ प्रकृति के विविध रूप प्रकृति अंगों के बारे में ही वर्णन प्रस्तुत करते हैं तो वह प्रकृति का आलम्बन रूप कहलाता है। इस रूप में कोई भी लेखक प्रकृति के उसी रूप के साथ तादाम्य स्थापित कर लेता है, वह प्रकृति रूप रमणीय भी हो सकता है, विकराल भी हो सकता है। आलम्बन रूप में प्रकृति सौन्दर्य को साहित्यकार प्रत्यक्ष रूप में पाठकों के सामने रखता हैं। इसमें वह प्रकृति के सूक्ष्म–संश्लिष्ट स्वरूप का आनन्दमयी वर्णन पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के सौन्दर्य वर्णन में पंछियों का कलरव, नदियों की कल–कल, चाँद–तारों की रश्मियाँ सूर्य की आभा, पेड़ों की मस्ती भरी झूम का चित्र पाठकों को आनन्द विभोर कर देता है।

डॉ० रामकुमार वर्मा के नाट्य– साहित्य में प्रकृति के विविध रूप

पाठकों के सामने आये हैं। चूँकि नाट्य– साहित्य होने के कारण प्रकृति वर्णन का विस्तारपूर्ण चित्रण तो नहीं है पर यथासंभव वे प्रकृति सौन्दर्य सामने लाने का प्रयास करते दिखे हैं। नाटकों– एकांकियों में प्रकृति के आलम्बन रूप वर्णन को विस्तार मिलने का अवसर कम ही प्राप्त होता है। इसके बाद भी नाटकों– एकांकियों में डॉ० वर्मा ने पात्रों के द्वारा, दृश्य वर्णन प्रस्तुत करने में प्रकृति के आलम्बन रूपों का आश्रय लिया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने प्रकृति वर्णन करते समय मौसम के विविध रूपों, ऋतुओं के विविध रूपों का वर्णन लगभग नहीं के बराबर किया है। वे दृश्य– विधान में विशेष रूप से प्रकृति वर्णन करते हैं।

'पक्षियों का कलरव और निर्झर की कल–कल ध्वनि। समस्त वातावरण में प्रकृति का एकांत सौन्दर्य।'[३]

'भुवनेश्वरी का वन–प्रान्त। घने पेड़ लगे हुए हैं। स्थान–स्थान पर झाड़ियाँ हैं। एक भयानक सन्नाटा। गहराता हुआ सन्ध्याकाल। आकाश में अष्टमी का चन्द्रमा है, जिसका झीना प्रकाश चारों ओर फैल रहा है।'[४]

'एक सुन्दर पहाड़ी है जिसके निम्न प्रदेश में एक निर्झर सुमधुर ध्वनि से प्रवाहित हो रहा है।'[५]

'पर्वत पर एक मनोरम समभूमि। चारों ओर हरियाली छाई हुई है। लताओं में भाँति– भाँति के पुष्प खिले हुए हैं। समीप ही निर्झर की कल–कल ध्वनि हो रही है। पक्षियों का कूजन हो रहा है। पूर्व में सूर्य की बाल–रश्मियाँ पर्वत और वृक्षों को एक सुनहला आवरण दे रहीं हैं।'[६]

'आश्रम चारों ओर लता– बेलियों से आच्छादित है। नाना प्रकार के पुष्प अपनी सुगन्ध बिखेर रहे हैं। वातावरण में एक पवित्रता है।'[७] जैसे छोटे छोटे प्रकृति वर्णन के चित्र एक क्षण को सौन्दर्य उत्पन्न करते हैं। प्राकृतिक रूपों का

अतिसूक्ष्म यह चित्रण दृश्य विधान के लिए मात्र ही किया गया है जो क्षणांश को प्राकृतिक सौन्दर्य जगाता प्रतीत होता है।

दृश्यों का प्रारम्भ करते समय डॉ० वर्मा ने प्रकृति की सुरम्यता दर्शाने में इस प्रकार के छोटे–छोटे उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इन संक्षिप्त चित्रों में वे यदा कदा प्रात:काल, संध्या, दिन का अपना सौन्दर्य आदि भी चित्रित करते दिखे हैं। ऐसे एकाधिक उदाहरणों से डॉ० वर्मा ने सौन्दर्य तो उपस्थित किया है पर इन चित्रों का प्रयोग नाट्य सीमाओं के कारण दृश्यारम्भ में किया है। प्रात:काल, सूर्योदय का वैसा विस्तारपरक वर्णन कदापि प्रस्तुत नहीं किया जैसा किसी उपन्यासकार अथवा कहानीकार द्वारा किया जाता है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने इस प्रकार के चित्रणों में सहज रूप से सौन्दर्य को प्रस्फुटित करने का प्रयास किया है।

'प्रात:काल हो रहा है। मुर्गे ने बाँग दी। पक्षियों का कलरव सुनाई पड़ने लगा। सरोवर के कमलों पर भ्रमर की अटखेलियाँ आरम्भ हो गईं।'[८]

'प्रात:काल सूर्य की किरणें गंगा–जल पर अपूर्व सौन्दर्य के साथ नृत्य कर रहीं हैं। तट पर हरे–भरे वृक्ष हैं जिन पर पक्षियों का कोलाहल हो रहा है।'[९] प्रात:काल के इसी तरह के ही संक्षिप्त चित्र वर्माजी ने अपने नाटकों–एकांकियों में प्रस्तुत किये हैं।

डॉ० वर्मा द्वारा प्रभात, सूर्योदय, प्रात:काल का चित्रण विस्तारक रूप में नहीं है। कहीं–कहीं उन्होंने 'प्रभात का समय है, कमरे में हल्की सुनहली धूप आ रही है,'[१०] जैसे एक वाक्य से ही प्रात:कालीन सौन्दर्य को दर्शाया है।

चूँकि वर्माजी ने इस प्रकार के चित्रों से नाटक के दृश्यों का चित्र खींचने का प्रयास किया है। इस कारण वे यहाँ अनावश्यक विस्तार करते नहीं दिखे हैं। हाँ, यदि उन्हें कहीं पात्रों के माध्यम से प्रात:कालीन चित्र दर्शाने का

अवसर प्राप्त हुआ तो उन्होंने उस स्थान पर थोड़ा बहुत विस्तार कर सौन्दर्य उकेरने का प्रयास किया है। एक दो स्थानों पर ऐसे चित्र देखने को मिले हैं।

'प्रभू! जब सूर्योदय होता है तो पूर्व की दिशा में भाँति–भाँति के रंगों के वितान क्यों सुशोभित हो जाते हैं? उषा नववधू की भाँति क्यों सज–सँवर जाती है? शीतल,मन्द,सुगन्ध समीर क्यों परिचारिका की भाँति प्रत्येक पुष्प से आज्ञा माँगती है? विहगों का समूह एक दिशा से दूसरी दिशा में उड़कर क्यो मंगल–सन्देश वितरित करता है?'[११] सूर्योदय का यह चित्रण अपने आप में सौन्दर्य बोधक है।

पात्रों के माध्यम से संवादों के द्वारा प्रकृति सौन्दर्य को सामने लाने का प्रयास वर्माजी का रहा है। एक अन्य स्थान पर पात्र जुल्फिकार सूर्य के तेज की चर्चा करके पूरे दिन में सूर्य–किरण का सौन्दर्य दर्शाता है– 'सूरज की किरण हमेशा एक सी तो रहती नहीं है! दोपहर की फ़िजा और शाम की फ़िजा में कितना फर्क हो जाता है। दोपहर में जो आफताब आसमान में आग बरसाता है, शाम के वक्त वही आफताब बादलों में ऐसा रंग भरता है, हुजूर! जैसे बहिश्त की हूरें हजारों रंगीन लिबास में फ़लक के फर्श पर रक्स कर रही हैं।'[१२]

इस प्रकार के चित्रण वर्माजी द्वारा अधिकाधिक रूप में नहीं किये हैं। यदा–कदा जहाँ भी नाट्य– कथा को विस्तार देने की दृष्टि से जैसा अवकाश मिला है, उसी तरह वे प्रकृति के विविध रूपों को प्रदर्शित कर सौन्दर्य का परिपाक कराते आये हैं।

प्रात:काल का संक्षिप्त वर्णन अथवा पात्रों के संवादों द्वारा थोड़ा सा विस्तार कथा– प्रवाह एवं दृश्य– संयोजन में मदद करता है साथ ही सौन्दर्य बोध कराता है। प्रात: की तरह ही वर्माजी ने यदा–कदा संध्या का भी चित्रण कर सौन्दर्य की स्थापना का प्रयास किया है – 'संध्या का समय है। दिन में काफी

गरमी पड़ चुकी है। आकाश में बादल आ गए हैं और हवा जोर से बहने लगी है। धीरे–धीरे वह आँधी का रूप धारण कर चुकी है। रह–रह कर हवा के झोंके पेड़ों और मकानों की दीवालों से टक़राते हैं।'[१३] यह चित्र भले ही संध्या का मनोरम दृश्य न प्रस्तुत करता हो पर संध्या के चित्रण का सही अंकन अवश्य ही करता है। ऐसे ही छोटे–छोटे चित्रों के द्वारा वर्माजी अपना नाट्य–प्रवाह बनाये रखते हैं और पाठकों के समक्ष प्रकृति का संक्षिप्त सा रूप भी दर्शाते जाते हैं।

डॉ० वर्मा ने नाटकीयता, रंगमंच का विशेष ध्यान रखकर अपने नाट्य साहित्य की रचना की है। वे मंच विधान के अनुसार मात्र सूर्योदय संध्या आदि का चित्र ही नहीं दर्शाते रहे हैं अपितु प्रकृति के अंगों का भी विशेष ध्यान रखते रहे हैं। नाट्य– रचना में वर्माजी इस बात को महत्व देते थे कि नाटक में रंगमंच पर अभिनीत करने की आजादी हो। इसके बाद भी दृश्य– विधान रूप में वे नदियों, वनों आदि का चित्रण करते दिखे हैं।

'राजमहल के झरोखे से दिखाई देने वाली नर्मदा नदी की धारा। चाँदनी का प्रकाश नर्मदा की धारा पर गिरकर तरंगों में रजत–प्रतिबिम्ब उत्पन्न कर रहा है।'[१४] इस प्रकार के चित्रण वर्माजी ने नाट्य– दृश्यों में वास्तविकता, सजीवता लाने के लिए रखे हैं और वे स्वत: ही सौन्दर्य बोध कराते हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा ने सौन्दर्यात्मकता स्थापित करने की दृष्टि से इस प्रकार के चित्र नहीं सजाये हैं । ये चित्र दृश्यों के निर्माण में सहायक होते हैं, दृश्य– प्रवाह की पीठिका निर्मित करते हैं।

'देखो यह गोदावरी का सुरम्य तट, ये पानी की लहरें जैसी सौन्दर्य की मालाएँ हों, जो अपने आपसे गुँथकर बड़ी होती हैं और तट पर किसी का हृदय न पाकर टूट जातीं हैं'[१५] अथवा 'यह झेलम नदी। क़ल–क़ल करती हुई सिंधु से मिलने जा रही हैं। इसके तट पर कितने नगर बस का उजड़ गये होंगे?

उजड़े हुए नगरों पर कितने नवीन नगर बसे होंगे। क्यों झेलम! तुम जानती हो उन नगरों की संख्या? उन नगरों का वैभव! यदि तुम्हारे पास वाणी होती तो मैं विजय—पर्व के कितने महाकाव्य लिखता। तुम कल—कल करती हुई बही जा रही हो। यही तुम्हारे पास वाणी नहीं है तो तुम मेरी कवि वाणी ले लो और इस महान भूमि की यशोगाथा दुहरा दो। झेलम! तुम्हारी लहरें भावनाओं की पंक्तियाँ बन जाएँ और तुम्हारा कल—कल नाद वाणी का रूप धारण कर ले।'[१६]

यहाँ वर्माजी प्रकृति की प्रमुख अंग नदी का स्वरूप पात्रों के माध्यम से दर्शाते हैं जो कथा— प्रवाह में अवरोधक नहीं बनता साथ ही पाठकों के मन में भी नदी का सौन्दर्य प्रतिस्थापित करता है। पात्रों के द्वारा प्रकृति सौन्दर्य को नदी के द्वारा उभारने के अतिरिक्त वर्माजी ने नदी को सामान्य रूप से भी चित्रित किया है। 'एक गाँव में कल्लोलिनी के तट पर अखिल की छोटी सी कुटी। चारों ओर लताओं और फूलों के पौधे। उत्तर की ओर एक खिड़की है जिससे उदय होता हुआ चन्द्र—बिम्ब दीख रहा है। कुछ दूर पर कल्लोलिनी, जो अपने प्रवाह में सुख—दुखमयी रातें और बातें बहाती चली जा रही है।'[१७]

नदियों का यह स्वरूप विस्तार लिये नहीं है। यह विस्तार मात्र दृश्य—निर्माण की स्थिति निर्धारित करता है। डॉ० वर्मा ने कथा— प्रवाह की चेष्टा की है और इसी में सहज रूप से सौन्दर्य निर्मित होता रहा है। नदी के साथ वनों, सरोवरों की शोभा को भी वर्माजी ने अपनी लेखनी से उकेरा है— 'इधर देखिए, यह कितना सुन्दर सरोवर है! प्रभात—किरणों में ये कमल कितने सुहावने लगते हैं! भौरे गूँज—गूँज कर जैसे उनकी विरुदावलियाँ गा रहे हैं।'[१८] नदियों, सरोवरों को अपनी लेखनी से चित्रित करने वाले डॉ० वर्मा ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से वन्य प्राणियों के सौन्दर्य को भी सामने लाने का प्रयास किया है। वनों के चित्रण के भीतर समाहित वन्य प्राणियों के चित्रण वर्माजी की की सूक्ष्म एवं पैनी दृष्टि का

परिचायक कहे जा सकते हैं।

वनों, निर्झरों, बेलों के दृश्यों का चयन वर्माजी ने कथा– प्रवाह के उप्युक्त मान कर ही किया है। पात्र वनों, निर्झरों की सुन्दरता में स्वयं को एकाकार कर लेते हैं और इन्हीं पात्रों के इस सौन्दर्यमयी स्वरूप में पाठक भी मोहित होकर सौन्दर्य की आभा को अपने आसपास ही महसूस करता दिखता है।

'सच जानो कितनी मोहक जगह है यह। कैसी सुन्दर पहाड़ी है। ज्ञात होता है, मानो वन–श्री ने अपने यौवन– रस से सींच–सींच कर वृक्षों को बड़ा किया है। एक–एक फूल अपने अंग में एक–एक काश्मीर को समेट कर बैठा है। लताओं के कुंज कितने सुन्दर है। श्रीकृष्ण होते, तो एक बार इन कुंजों में बैठ कर अपनी योग–माया की मुरली अवश्य बजाते।'[१९]

वन की लताओं की ऐसी शोभा से कोई भी मोहित हो जाये। डॉ० वर्मा के पात्र उनके द्वारा चित्रित ऐसे प्राकृतिक दृश्यों की शोभा का रसपान करते हैं और प्रसन्नचित्त रहते हैं। शहर की धूल भरी सड़कों के बाद जंगल का ऐसा मोहक स्वरूप किसी को भी अपनें सौन्दर्य में सराबोर कर सकता है। तभी तो सम्पादक अनंग कुमार की पत्नी कमल कुमारी प्राकृतिक दृश्यों को देख चहक उठती है– 'रास्ते भर प्रकृति के इतने दृश्य देखे,जो हम लोगों को स्वप्न में भी देखने को न मिलते। रास्ते भर प्राकृतिक दृश्यों से हमारा मनोरंजन होता रहा। न जाने कहाँ–कहाँ से फूल निकल कर कहते हैं लो, हमें देखो। वन के पेड़ों की स्वाभाविक, भीनी–भीनी सुगंधि तो जैसे नदी की तरह बहती रहती है। अजीब तरह के पेड़ नजर आये। कोई टेढ़ा तो कोई लम्बा। कोई बुडढे की तरह झुका हुआ है। किसी की शाखें ऐसी चारों ओर फैल गई हैं कि छोटी–छोटी झाड़ियों को हँसाने के लिए अपने हाथ फैला कर नाचना ही चाहता है।'[२०]

वनों के पेड़–पौधों, झाडियों का सौन्दर्य सभी को अपनी ओर

आकृष्ट करता है। इन्हीं वनों में निवास करते पशु—पक्षी छोटे जीव—जन्तुओं की भी अपनी अलग दुनिया है। पक्षियों का कलरव भी मन को आनन्दित करता है। 'वनों में सुन्दर शिखा वाले, सुन्दर ग्रीवा वाले मयूर नृत्य करते हैं, कोकिल कूजन करती है, मृग बिहार करते हैं, मृग विहार करते हैं,'[२१] तो 'कभी—कभी पक्षी के पंख फड़फड़ाने की आवाज और झींगुर की झनकार सुनायी पड़ जाती है।'[२२]

पशु—पक्षियों का यह रूप मन को हर्षाता है इसी कारण वन—प्रान्त का समूचा वातावरण मनमोहक हो जाता है। 'मखमली पृथ्वी पर हरी घास बिछी रहती है, जल में तरंगें उठती हैं। नवीन वर्षा से सिक्त हो वृक्षों के समूह पर्वतों पर लहराते हैं, जल ऐसे बरसता है जैसे कोई गीत गा रहा है। शीतल, मंद, सुगन्ध वायु पीकर नाना प्रकार के पक्षी योगियों को जगाते हैं। अपने कलरव से वे प्रकृति का अमृतरस मानस में भरते रहते हैं।'[२३]

प्रकृति की वनों की ऐसी शोभा में पक्षियों का कलरव मधुर हो जाता है। घास, पौधे, फूल सभी कुछ मन को आनन्द देते हैं और सौन्दर्य दर्शन करवाते हैं। इसी के ठीक विपरीत यदि वन—प्रान्त के यही पेड़—पौधे, झाडियाँ आदि डराने लगें तो यही वन—प्रान्त डरावना लगने लगता है।

'जंगल की झाडियाँ— जैसे जगह—जगह जंगली सुअर सिमिट के बैठ गए हैं। टेढे— तिरछे काँटे जैसे साँप और बिच्छू जंगली पौधे बन गए हैं— तो जैसे जहर का डंक मार देते हैं।'[२४]

प्रकृति चित्रण में डॉ० वर्मा ने विस्तार नहीं पाया है पर किसी न किसी रूप में सभी रूपों को सँवारा है। ऋतुओं का वर्णन नहीं है पर वर्षा की शीतलता है। प्रकृति के इसी रूप के साथ—साथ प्रकृति के रहस्यमय स्वरूप को भी वर्माजी ने पात्रों के द्वारा प्रदर्शित किया है। 'यह सृष्टि ही रहस्यमय है तारों को देखो, कितने उज्ज्वल दिखाई देते हैं, किन्तु वे अपना कितना सत्य हम पर

प्रकट करते हैं? विस्तृत आकाश में उदित होकर रात भर चमकते हैं और प्रात:काल अपना रहस्य अपने साथ लिए अस्त हो जाते हैं। सारी सृष्टि iøpuke ; h gS*[२५]

सृष्टि का, प्रकृति का रहस्यमयी स्वरूप सभी को चमत्कृत करता है। कोई इसके चमत्कार को आकाश—चाँद—तारों में देखता है। कोई इसके चमत्कार को वृक्षों—लताओं—फूलों आदि में देख कर सौन्दर्य में निमग्न रहता है। 'लगता है, वर्षों से सूखे हुए वृक्ष हरे भरे हो गए हैं, जल—हीन बावलियों में न जाने कहाँ से शीतल और स्वादिष्ट जल भर गया है ऋतु न होने पर भी छहों ऋतुओं के फल वृक्षों की डालियों से झूम रहे हैं, जो लताएँ इस समय नहीं फूलतीं वे फूलों के गुच्छों से लदी हुई हैं। यह आश्चर्य नहीं तो क्या है?'[२६]

प्रकृति का सुरम्य रूप साहित्यकार को प्रभावित करता रहा है और इसी का परिणाम है कि उसी की दृष्टि पाकर समाज के अन्य वर्गों के प्रति प्रकृति का सौन्दर्य उसी के अनुसार निखरता रहा है। सैनिकों ने प्रकृति को अपने स्वभाव की तरह, राजाओं ने अपने स्वरूप की तरह और कलाकारों ने अपनी रुचि के अनुरूप प्रकृति को निहारा है।

गीतकार, कवि गीतों के माध्यम से प्रकृति सौन्दर्य की बात करता है तो किसी को वीणा की मधुर झंकार में प्रकृति का सौन्दर्य आभासित होता है 'राज्यश्री! तुम कितनी सुन्दर वीणा बजाती हो! ज्ञात होता है जैसे वासंती वायु की लहरें पुष्पों के कानों में प्रेम की बातें करते—करते विह्वल होकर बिखर गयी हैं। जैसे शंकर के जटा—जूट में गूँजती हुई भागीरथी की लहरें पृथ्वी पर आने को मचल रही हैं। जैसे कोकिल ने अपने समस्त कूजन के स्वर वसन्त को समर्पित कर दिए हों और कहा हो कि इनका उपयोग चाहे जिस पर कर लो और वसन्त ने वे सब स्वर तुम्हारी वीणा के तारों में सजा दिए हों।'[२७]

किसी को वीणा में उक्त सौन्दर्य आभासित होता है; वसन्त, कोयल की उपस्थिति प्रतीत होती है तो किसी के 'वीणा पर गीत गाने से चन्द्रकला की किरणों में वीणा के तार संगीत–धारा के गूँजते निर्झर के समान मालूम होते हैं।'[२८] कोई प्रकृति के अंगों में वसन्त की छवि देखता है तो कोई ऋतुराज का स्वागत अपने मुक्त–कण्ठ से कर उसका सौन्दर्यपान करता है।

'ऋतुराज! तुम्हारा स्वागत है! तुम्हारे स्वागत में प्रकृति आज फूली नहीं समा रही है। उपवन ने तुम्हारे पथ पर रंग–रंग के पुष्प बिछा दिये हैं, कोकिल ने स्वागत गान में अपने कंठ की संगीत लहरी प्रवाहित कर दी है। शीतल और सुगंधित पवन तुम्हारे मार्ग को सुगंधित करने में व्यस्त है और वृक्षों के हरे पल्लवों की चित्रशालाएँ बना रखी हैं।'[२९]

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने एकांकी 'स्वागत हे ऋतुराज' में विभिन्न कवियों की कविताओं के माध्यम से प्रकृति सौन्दर्य को चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त एकाधिक स्थानों पर पात्रों के द्वारा गीत–गायन द्वारा प्रकृति सौन्दर्य को आभासित कराने का प्रयास किया है।

'सम्राट अशोक की पत्नी, मगध की साम्राज्ञी महादेवी चित्रकारी करते हुए प्रकृति का ध्यान करती जाती है और गीत गाती जाती हैं —

अलि पहिचान गया कली को
अपने स्वर से स्वर्ग बनाया ,
इस सुमनांजलि को
अलि पहिचान गया कली को।

मन्द पवन धीरे बहा, उर में भर अनुराग,
कलित कुंज में केतकी, मौन रही है जाग।

खिलने का संवाद कौन

देता कुसुमावलि को

अलि पहिचान गया कली को।'[३०]

जहाँ एक ओर साम्राज्ञी प्रकृति को निहारते हुए चित्र बनाने के साथ ही प्रकृति सौन्दर्य को स्मरण करता गीत गाती है तो वहीं दूसरी ओर नन्दराज की राजनर्तकी अलका चन्द्रगुप्त के सामने नृत्य करती हुई मधुर कण्ठ से जो गीत गाती है, वह प्रकृति सौन्दर्य की एक झलक प्रस्तुत करता है—

'आज मधुमय कुसुमों के द्वार—

द्वार पर है अलि का गुंजन।

सजीली थी मधुवन की गली,

समीरन धीरे—धीरे चली,

फूल के पास खिल गई कली

और नभ से संध्या ने उतर,

लगाया आँखों में अंजन!

आज मधुमय कुसुमों के द्वार—

द्वार पर है अलि का गुंजन!'[३१]

राजदरबारों में गाये जाते ये गीत प्रकृति का कल्पना में कलात्मक चित्र प्रस्तुत करते हैं। यह प्रकृति की झलक दर्शाते हैं पर पात्रों की कल्पनाशक्ति के सहारे। राज प्रासादों में गूँजते इन गीतों से इतर आश्रम के प्राकृतिक वातावरण में 'जहाँ बाल सूर्य की कोमल किरणें आश्रम की लताओं और बेलियों को सुनहले रंग में रंग रही हैं। शीतल समीर मन्द गति से प्रवाहित हो रहा है,'[३२]

ऐसे मोहक प्राकृतिक परिवेश में महर्षि च्यवन की पत्नी सुकन्या मधुर गीत गाते हुए प्राकृतिक सौन्दर्य की दिव्य आभा स्वयं आभास करती है,

साथ ही पाठकों को भी इस सौन्दर्य से आभासित कराती है —

लताओं!ऋतुपति आया री।

गीत कोकिल ने गाया री।।

नव पल्लवों में खिंची, हरे रंग की कनेर

मन्द समीर में उठी कल से नयी हिलोर।

उस सूखे रसाल में भी,

रसराज समाया री।

लताओं! ऋतुपति आया री।

फूल फूल हैं दे रहे, सौरभ का संदेश।

यहाँ तपोवन है, मदन

तेरा हो न प्रवेश

मैंने भस्मों से भूषित

अनुराग सजाया री।

लताओं। ऋतुपति आया री।।'[३३]

डॉ० रामकुमार वर्मा ने प्रकृति सौन्दर्य को भले ही दृश्य— विधान हेतु चुना हो पर वे उसमें पाठकों को प्रकृति के लगभग सभी स्वरूपों से परिचित करवाते चले हैं। नदियों, पर्वतों, वनों, पशु, पंछियों, आदि के सौन्दर्य के साथ—साथ प्रात:काल का, संध्या का चित्ताकर्षक चित्रण वर्माजी ने किया है। भले ही सूक्ष्म रूप में सही पर डॉ० वर्मा द्वारा आलम्बन रूप में प्रकृति सौन्दर्य को दर्शाने का प्रयास किया गया है।

(ख) उद्दीपन या पृष्ठभूमि आदि के रूप में

कोई भी साहित्यकार उद्दीपन अथवा पृष्ठभूमि रूप में प्रकृति सौन्दर्य का वर्णन करते समय प्रकृति के रूप का स्वतंत्र चित्रण नहीं करता है

बल्कि प्रकृति के विविध रूपों में नायक—नायिका के मनोभावों को उद्दीप्त करता है। इसमें लेखक पात्रों के सुख दु:ख को, उनके भावों को प्राकृतिक रूप में देखकर उनका चित्रण इस प्रकार करता है कि वहाँ सौन्दर्य आभासित होता है।

इस चित्रण के अतिरिक्त प्रकृति जहाँ स्वयं इस रूप में अपना रूप दर्शाये कि वहाँ मानवीय भावों का उद्दीपन हो वहाँ भी प्रकृति सौन्दर्य इसी रूप में माना जाता है। संक्षेप रूप में जब साहित्यकार प्रकृति का स्वतंत्र अवलोकन नहीं करता बल्कि प्रकृति सापेक्षत: मानव को प्रभावित करता है तब वहाँ उद्दीपन रूप आभासित होता है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नाट्य—साहित्य में चित्रित प्रकृति सौन्दर्य को उद्दीपन रूप में भी दर्शाया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने उद्दीपक रूप के चित्रण में पात्रों के संवादों को अधिक से अधिक सामने रखा है। प्रकृति के साथ पात्रों के तादाम्य बनाने में 'नायक—नायिका अपने प्रेम को प्रकृति के साथ सम्बद्ध होना देखते हैं'[३४] तो कहीं वर्माजी ने 'राजा और वृक्ष को एक समान'[३५] बताया है।

डॉ० वर्मा का प्रकृति का उद्दीपक स्वरूप नारी सौन्दर्य के साथ तादाम्य करता पाठकों को आभासित करता है। वन—प्रान्त की एक स्त्री की शोभा देख राज—सेवक उसके सौन्दर्य की आभा में खोये बिना नहीं रहते हैं— 'निर्झर की बहती हुई लहरों में उसका प्रतिबिम्ब सौगुना सुन्दर होता। जलराशि में तरंगित होता हुआ उसका रूप ऐसा लगता कि पृथ्वी में स्वर्ग निवास कर रहा है। निर्झर की शोभा में उसका सौन्दर्य। जैसे निर्झर की काँपती हुई ग्रीवा में स्वर्ण का कंठहार हो।'[३६]

वैशाली की राजमहिषी त्रिशला पुत्रवधू चयन में एक चित्र को देखकर सौन्दर्यमयी प्रकृति चित्रण कर उसकी सुन्दरता की आभा पाठकों के समक्ष भी रख देतीं हैं— ''लगता था जैसे प्रभात का प्रकाश इसी चित्र से निकल रहा

है। इसके मस्तक की शोभा में चन्द्र भी आधा हो गया है। इसकी नासिका की रेखा क्षितिज रेखा की भाँति सुन्दरता के साथ झुकी हुई है, और नेत्र? नेत्र तो बड़े ही सुन्दर हैं, जैसे सुख और संतोष ही अरुण कमल की अंधखुली पंखुडियाँ बन गए हैं।''[३७]

नारी सौन्दर्य हमेशा से ही सभी के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। डॉ० वर्मा के नाट्य— संसार के पुरुष पात्र चाहे वे राजा रहे हों अथवा कवि अथवा आम आदमी सभी नारी सौन्दर्य से प्रभावित रहे हैं। प्रेम की अतिशयता में, सौन्दर्य की आभा में अभिभूत होकर ये नारी सौन्दर्य की उसके क्रिया कलापों की समन्विति प्रकृति के साथ बनाते दिखते हैं। नारी—प्रकृति का यही तादाम्य पाठकों के मध्य भी सौन्दर्य उपस्थित करता है।

पृथ्वीराज चौहान रूपा का नृत्य देख कर प्रसन्नता में उसके नृत्य की तुलना रात्रि से करते कहते हैं— ''नहीं रूपा! आकाश में रजनी ने भी नृत्य किया। उसके चरणों के नीचे एक ही कमल खिल सका—पूर्णिमा का चन्द्र, एक ही कमल, जहाँ तुम्हारे नृत्य के संगीत से अनेक कमल खिलते हैं। तुम्हारे नृत्य से लज्जित होकर उसने नूपुर तोड़ कर सारे आकाश में बिखरा दिये। वे ही बिखरे हुए नूपुर तो तारे हैं, तारे रूपा!''[३८]

राजा पृथ्वीराज चौहान नृत्य को रजनी के साथ जोड़ कर देखते तो एक आम आदमी को नारी की छवि ऐसी लगती है कि 'चलती है तो जैसे चाँदनी के उजाले में भरी नदी में लहरें उमड़ती हैं। हँसती है तो जैसे कोई पानी भरने के लिए गंगाजी में कलसी डुबो रहा है।'[३९]

एक ओर जहाँ नारी को सौन्दर्य की देवी मान कर विविध रूपों में उसको, प्रकृति के समकक्ष मान कर प्रकृति सौन्दर्य के साथ नारी सौन्दर्य को आभासित कर रहा है। वहीं दूसरी ओर कवि बालगुप्त नारी को शक्तिशाली और

प्रेरणा का स्त्रोत मानता है। वह नारी के शक्तिशाली रूप के साथ प्रकृति सौन्दर्य का निरूपण करता है– "भारी शरीर से भले ही दुर्बल हो किन्तु मन से वह ब्रह्मास्त्र से भी अधिक शक्तिशालिनी है। आप भी शक्तिशालिनी हैं, आपके उठे हाथ की मुद्रा में सूर्य उठता है और झुके हाथ की मुद्रा में चन्द्र अस्त होता है। जब आप नृत्य में चक्राकार घूमती हैं तो देवि! नक्षत्रों की कक्षाएँ बन जाती हैं।"[४०] यही कवि 'नारी को' प्रेरणा स्रोत मान कर नारी की काली केश राशि को रात्रि का प्रथम प्रहर और अरुण होंठों की उषा में अपने जीवन का प्रभात देखता है।'[४१]

नारी का प्रकृति के साथ इतना उज्ज्वल तादाम्य अपने सौन्दर्य से नारी शक्ति को सम्मान देता है साथ ही पाठकों को भी आभासित करता है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने प्रकृति सौन्दर्य को नारी सौन्दर्य के साथ सर्वाधिक तादाम्य स्थापित करते दर्शाया है।

पृथ्वीराज की संयोगिता हो अथवा तुलसीदास की पत्नी रत्ना अथवा कौशल कुमारी सभी में डॉ० वर्मा ने उषा का आरोपण किया है। कोई 'उषा बनकर विविध रंग के बादलों की तरह वस्त्र धारण करने का अनुग्रह करता है'[४२] तो किसी को 'उषा की प्रथम किरण में अनुराग राशि–राशि बिखरता दिखता है'[४३] वहीं कौशल कुमारी की सुन्दरता महारानी को ऐसी लगती है जैसे 'प्रभातकालीन उषा को हिमराशि ने धूमिल कर दिया हो।'[४४]

प्राकृतिक उषा के साथ नारी सौन्दर्य का सम्बन्ध मात्र ही डॉ० वर्मा ने स्थापित नहीं किया है। वे उषा की आरोपण पुरुष में भी करते दिखे हैं। राजा पृथ्वीराज चौहान की वीरता का बखान करते हुए चामुण्डराय कहते हैं– "महाराज! आप सूर्यवंशी चौहान हैं। उषा के कोमल सूर्य की भाँति उदित होकर आपने मध्याह्न के सूर्य की प्रखरता प्राप्त की है।"[४५]

राजा का प्रकृति के साथ तादाम्य में कहीं उसका तेज सूर्य के

समान बताया है तो कहीं उसको विशाल लहराते वृक्षों की भाँति बताया गया है— 'प्राकृतिक सौन्दर्य भी विधाता की अपूर्व सृष्टि है। आकाश का मस्तक चूमते हुए इतने ऊँचे वृक्ष और भूमि की गोद से उठकर क्रीड़ा करती हुई ये लताएँ। मैं तो समझता हूँ कुमार वृक्ष और लता में राजा और प्रजा जैसा सम्बन्ध है। राजा की भाँति वृक्ष अपना मस्तक उठाए स्थिर रहता है और प्रजा की तरह लता उसका आश्रय लेकर बढ़ती है।'[४६]

एक ओर राजा वृक्षों और लताओं के साथ राजा और प्रजा का सम्बन्ध स्थापित कर प्रकृति से तादाम्य स्थापित करते हैं वहीं दूसरी ओर सम्राट अशोक की रानी तिष्यरक्षिता स्वयं को पेड़ के पास की कली होने की बात कह कर अपनी शांति, अपना आनन्द खोजती हैं— अगर मैं स्त्री न होकर इसी पास के पेड़ की एक कली होती तो आनन्द के साथ वसन्त के किसी प्रात:काल खिल कर सारे संसार को एक बार हँसती हुई आँखों से देख लेती और शाम होने पर सूर्य के पीछे—पीछे में चली जाती।'[४७]

पुरुष के तेज, उसके पराभव को वर्माजी ने प्रकृति के साथ तादाम्य स्थापित करते हुए प्रकृति का उद्दीपक रूप दर्शाया है। सम्राट अशोक का अपने भाइयों से विवाद की स्थिति में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जहाँ पर पुरुष पात्रों के पराभव की स्थिति को बादलों के साथ सम्बद्ध कर दिखाया गया है। एक स्थिति में सुगाम अमात्य खल्लाहक की स्थिति को बादलों के साथ जोड़ कर उससे कहता है 'थोड़ी देर अमात्य पद की सन्ध्या में बादल की भाँति राग—रंजित हो लो। चन्द्रोदय होने पर तुम्हारे रंगों का कहीं पता नहीं चलेगा।'[४८]

ठीक इसी तरह अशोक अपने भाई सुसीम को उसकी उदारता छोड़ने के बाद उसके पराभव को बादलों की स्थितियों के साथ जोड़ कर उसको समझांता है— 'उदारता के अभाव में तुम्हारा वैभव शरद—कालीन बादल बन गया

जो देखने में उज्ज्वल है किन्तु उसमें जल की एक बूँद भी नहीं है।'[४९]

प्रकृति के साथ पुरुष अथवा नारी का तादाम्य व्यक्तिगत रूप में चित्रित कर उसका सौन्दर्य वर्माजी द्वारा प्रतिस्थापित किया है। इसके साथ ही साथ नायक—नायिका के आपसी सम्बन्धों, परस्पर प्रेम—स्नेह की प्रगाढ़ता को भी प्रकृति के साथ जोड़ कर दिखाया गया है। इस प्रकार का चित्रण दिव्य सौन्दर्य की अनुभूति पाठकों को करवाता है— 'लूनी नदी की धारा पर यह चाँदनी ऐसी बिखर रही है जैसे हमारे—तुम्हारे जीवन पर प्रेम की ज्योति बरस रही है'[५०] के द्वारा राजकुमार अजीत सफीयत के साथ अपने प्रेम ज्योति की आभा लूनी नदी में देखते हैं।

'लूनी नदी की लहरों में उन्हें अपने मिलन की स्मृतियों का आभास होता है।'[५१] इन दोनों के प्रेम का विस्तार, उसकी छवि लूनी नदी की धारा में ही नहीं दिखाई देती बल्कि दोनों अपने प्यार को रात्रि में, चाँदनी में, वृक्षों में भी देख कर प्रेम सौन्दर्य की आभा को देखते हैं— ''विधाता को हमारे प्रेम—मिलन के लिए नई रात की सृष्टि करनी पड़ती। प्रकृति कितनी शांत है। वृक्ष चुपचाप खड़े हैं, चाँदनी भी जैसे उनमें बसकर चुंपचाप हम लोगों के प्रेम—मिलन को संतोष की आँखों से देख रही है। चारों ओर सुनसान और यहाँ के प्रेम के भावों का कितना आन्दोलन।''[५२]

आपसी प्रेम मिलन के इस क्षण में वृक्षों पर, नदी की धारा में वे एकाकार होते नजर आते हैं। तुलसीदास अपनी पत्नी रत्ना से मिल कर अपने प्रेम का चरम प्राप्त करते हैं और प्रकृति के साथ अपने प्रेम सौन्दर्य का आभास कर कहते हैं— ''तुमसे मिल कर लगा कि आकाश से बादल हट गए और पूर्ण चन्द्र का प्रकाश फैल गया।''[५३]

प्रेम के, मिलन के स्वरूप को नायक, नायिका प्रकृति सौन्दर्य में

देखते हैं और उसके सौन्दर्य में अपनी आभा का महसूस करते हैं। प्रकृति का अंग–अंग प्रेम–स्नेह की ज्योति में दमकता है और उसके रूप में अपने मनोभावों को जोड़कर देखते हैं।

नायक–नायिका जहाँ अपने प्रेम की पावनता को छिपा देखते हैं, प्रकृति के क्रियाकलापों में प्रेम का स्वरूप पाते हैं वहीं निराशा अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में भी अपने आपको प्रकृति से दूर नहीं कर पाते हैं। प्रकृति के साथ मनुष्य ने प्रत्येक स्थिति में अपने को जोड़ कर उसके भावों का सौन्दर्य प्राप्त किया है।

कुमार सिद्धार्थ राजसी वेश में चिन्तामग्न हैं और अपनी मन:स्थिति से प्रकृति का एहसास करते हैं। वे स्वयं को अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में पाते हैं और प्रकृतिगत स्थितियों को अपने से सम्बद्ध कर देखते हैं – ''फूल मुरझाता है तो उसका सौन्दर्य और सौरभ कहाँ चला जाता है। तेल समाप्त हो जाता है तो प्रकाश की ज्योति कहाँ चली जाती है? मैं इस उपवन के वृक्ष की भाँति नहीं हूँ कि वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर झेल कर सूखे पत्तों की भाँति बिखर जाऊँ या कुल्हाड़ी से काट दिया जाऊँ। मैं ऐसा नहीं रहूँगा।''[५४]

मानव ने प्रकृति के साथ हमेशा अपने मनोंभावों को जोड़ कर देखा है। प्रकृति के साथ साहचर्य का यही भाव मनुष्य को प्रेम, आनन्द में उत्साह देता है तो नैराश्य की स्थिति में प्रकृति की कठोरता से परिचित करवाता है। व्यक्ति मनोस्थिति के अनुसार ही स्वयं को प्रकृति के अंगों–उपांगों, क्रिया–कलापों के द्वारा हर्ष, उत्साह, नैराश्य, दु:ख, करुणा, जोश, शौर्य आदि के साथ सम्बद्ध देख पाता है।

नायक, नायिका अपने प्रेम मिलन में सराबोर हो प्रकृति से उत्साह पाते हैं तो वीर सैनिक प्रकृति सौन्दर्य से जोश, शौर्य की स्थिति का आभास

करते हैं। कड़कती बिजली, बादलों की गर्जना सैनिकों के जोश का परिचायक बन जाती है– 'जिस तरह वर्षाकाल में घने बादलों के समूह चारों ओर से घिरे रहते हैं, घोर गर्जन–तर्जन की ध्वनि दिशाओं को दहलाती रहती है, किन्तु बिजली बादलों को चीर कर पृथ्वी की ओर तड़प उठती है, उसी प्रकार असंख्य मुगल सिपाहियों की सेना चीर कर हमें दिल्ली की सीमा से बाहर निकल जाना है। जिस प्रकार बिजली पर बादलों का काला दाग नहीं लगता इसी तरह महारानी और कुमार को शत्रुओं का एक भी प्रहार नहीं लगना चाहिए।'[५५]

डॉ० रामकुमार वर्मा ने प्रकृति के उद्दीपन रूप में नदियों, पर्वतों, बादलों, वृक्षों, रात्रि आदि को सजीवता से दिखाया है। प्रकृति के रूपों, क्रिया कलापों की छोटी से छोटी, बड़ी से बड़ी स्थितियों को दर्शाया है। पात्रों के मनोभावों का प्रकृति से सामंजस्य का सौन्दर्य वर्माजी ने प्रेम, नैराश्य, जोश आदि रूपों में किया है। इतिहासपरक, काल्पनिक दृष्टि होने के कारण वर्माजी पात्रों के मनोभावों को प्रकृति के साथ सहजता से दर्शा सके हैं। अपनी इसी कल्पनाशक्ति के कारण विविध मनोभावों की साम्यता प्रकृति के साथ बना कर उसके सौन्दर्य में पाठकों को आभासित किया है। प्रकृति, पात्रों का यह सामजंस्य उद्दीपन के सौन्दर्य को द्विगुणित करता है।

(ग) नैतिक या उपदेशात्मक रूप में

प्रकृति के इस स्वरूप में साहित्यकार प्रकृति को गुरु समान मान कर उससे कुछ सीख लेता है, शिक्षा प्राप्त करता है। प्रकृति को कभी शिक्षक, कभी ऋषि, कभी माँ आदि के रूप में सामने रख कर उसके रूपों, अंगों से शिक्षा ग्रहण करता है। प्रकृति के अंगों–उपागों से साहित्य संसार के पात्र कुछ न कुछ सीख लेते हैं।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नाट्य– साहित्य में पात्रों को प्रकृति

के साथ तादाम्य बना कर उसका सौन्दर्य उकेरा है, इसी के साथ पात्रों ने प्रकृति के विविध रूपों से कुछ न कुछ सीखने का प्रयास भी किया है। पात्रों ने नैतिक शिक्षा का रूप सीखा है तो विषय परिस्थितियों में भी जीवन जीने की कला को समझा है। डॉ० वर्मा ने अपने नाट्य–साहित्य में प्रकृति को कभी माँ रूप में, कभी जीवनदायिनी, कभी निर्मलताधारिणी दर्शा कर उसका सौन्दर्य चित्रण किया है और इस सौन्दर्य आभा में पात्रों को भी चमत्कृत किया है।

सोना अपने भाई की आरती युद्ध में जाते समय न उतार पाने के कारण दुःखी रहती है। ऐसे समय में उसकी सखी गंगा उसको समझाती है कि प्रकृति जो माँ के समान है, मातृभूमि जो जननी समान है, उसने स्वयं तुम्हारे भाई का मंगल तिलक किया है – 'तो समझ लो महाराष्ट्र–जननी ने उसकी आरती उतारी है! महाराष्ट्र–जननी जो सह्याद्रि के सिंह पर बैठी है, कोंकण मुकुट धारण किये है। वह सोना नदी की मेखला से सारी दिशाओं को प्रतिध्वनित कर रही है। उसके चरणों में कृष्णा तरंगित हो रही है। ऐसी जननी ने तेरे भाई का मंगल तिलक किया है! सोना, महाराष्ट्र–जननी ने तेरे भाई की आरती उतारी है।'[५६]

प्रकृति को साहित्यकारों ने प्रेयसी, पत्नी के रूप में मान कर उसके सौन्दर्य को हमेशा साहित्य का विषय बनाया है। जब कभी प्रकृति से कुछ शिक्षा लेने का अवसर आया तो प्रकृति को माँ समान, गुरु समान स्वीकार कर उसकी आराधना की है, उसके सौन्दर्य को दिव्यता, पावनता प्रदान की है। माँ की तरह उससे स्नेह पाया है तो माँ की तरह उसमें निर्मलता का अंकन किया है। माँ की तरह इसकी शक्ति और आशीर्वाद से जीवन प्राप्त किया है, इसी से प्रकृति की निर्मलता और जीवनदायी शक्ति का सौन्दर्य आभासित कर पाठकों को भी उस दिव्य आभा के दर्शन करवाये हैं।

प्रकृति की निर्मलता में सभी वासनाओं, पापों का नाश हो जाये

ऐसी कामना सम्राट चन्द्रगुप्त करते हैं —''प्रकृति की इस चन्द्रमयी निर्मलता में जनता के हृदय की समस्त पाप—वासनाएँ धुल जावें''[५७] तो दूसरी और अहिल्याबाई के पति खण्डेराव प्रकृति से जीवनदायी शक्ति प्राप्त कर युद्धभूमि में आनन्द की बात स्वीकारते हैं। अहिल्याबाई से कहते हैं —''जीवन हथेली पर रख कर युद्ध ताण्डव करने में जीवन की शक्ति तो ऐसी निखरती है जैसी उदय होने वाले सूरज की किरण से दिशाओं की कोरें जगमगा उठतीं हैं।''[५७]

प्रकृति मानव जीवन के लिए प्रेरणास्रोत का कार्य करती है। कोई प्रकृति से निर्मलता की सीख पाता है तो किसी को युद्ध में आनन्द आता है। किसी को प्रकृति की कठोरता—कोमलता का एहसास संघर्ष—विजय के रूप में होता है तो कोई प्रकृति सौन्दर्य में विषम परिस्थितियों में जीवन जीने का संदेश पाता है। प्रकृति जितने अधिक रूपों में मानव जीवन के आसपास विद्यमान है, मानव ने उतने ही रूपों में प्रकृति से कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण की है।

संघमित्रा को प्रकृति से क्रोध में भी हँसते रहने की शिक्षा मिलती है, तभी तो वह अपनी माता महादेवी को समझाती है— ''देखो न, वर्षा काल में जब मेघ क्रोध में गरजता है तो उसके भीतर बिजली की हँसी कितनी अच्छी तरह से चमक उठती है। माँ! अगर कोई क्रोध में हँसना सीख ले तो संसार का सारा संघर्ष मिट जाए। संघाराम में जो वाद विवाद होता है न, वह प्रेम की हलकी फ़ुहार में बदल जाये। इसीलिए तो मैं हँसती रहती हूँ कि मैं भिक्षुओं के क्रोध को बिजली की हँसी में बदल सकूँ।''[५९]

प्रकृति के प्रति सकारात्मक सौन्दर्य का ही परिणाम है कि संघमित्रा को बिजली की चमक और बादलों की गर्जन में भी सीख मिलती है। सकारात्मक सौन्दर्य की इस दिव्य आभा से वह भिक्षुओं को भी उज्ज्वलित करना चाहती है। प्रकृति का सकारात्मक सौन्दर्य पग—पग पर सीख देता है। कोई बहती नदी से

आगे बढ़ने की प्रेरणा पाता है, कोई सूर्य से उदारता, दान का पाठ सीखता है। नदी, तालाब, झील, झरने, वन, पर्वत सभी से कुछ न कुछ सीख मिलती है।

प्रभा को बीस फुट से गिरते झरने से शिक्षा प्राप्त होती है— 'और वह निर्झर! बीस फुट से नीचे गिर रहा है शायद यह बतलाने के लिए कि सौन्दर्य का भी पतन होता है। जल जैसी कोमल वस्तु को भी संसार के संघर्ष का अनुभव करना पड़ता है।'[६०]

मानव स्वभाव की विविधता और प्रकृति सौन्दर्य की आभा का परिणाम यह है कि मनुष्य प्रकृति को विविध रूपों में स्वीकारता है। उससे कुछ सीखने का प्रयास करता है । अपनी—अपनी रुचि के अनुसार प्रकृति में वैसा आरोपण कर मुनष्य प्रकृति सौन्दर्य का रसपान करता रहता है। प्रकृति की शोभा में प्रसन्न होकर उसे प्रकृति के 'एक—एक वृक्ष में महाकाव्य और एक—एक लता में गीतिकाव्य दिखायी देता है।'[६१]

साहित्यप्रेमी व्यक्ति को प्रकृति में साहित्य रस की शिक्षा प्राप्त होती है, साहित्य अंगों— उपांगों के दर्शन प्राप्त होते हैं, दूसरी ओर भक्तिभाव धारित व्यक्ति को प्रकृति में पावनता, दिव्यता, ईश्वरत्व का भाव दिखता है। 'उषा का रूप देखो। सूर्योदय के प्रथम जो दिव्य आभा पूर्व के आकाश में प्रकट होती है। इस उषा देवी के दर्शन कितने दिव्य हैं! उसकी स्तुति करते हुए ऋषिगण नाचने लगते हैं। वे उसकी वन्दना करते हुए कहते हैं 'हिमकणों से स्नान कर तू प्रकाश की पताका लेकर संसार को जीवन का संदेश देने वाली है। सुन्दरता की इस देवांगना द्वारा हमें नारायण का संदेश मिलता है।'[६२]

डॉ० वर्मा ने हमेशा भारतीय संस्कृति की उन्नयन की बात की है। इस दृष्टि को वे अपने नाट्य साहित्य में पात्रों द्वारा भी जीवित रख सके हैं। पात्रों द्वारा प्रकृति को पावन स्वरूप में स्वीकार कर उसका सौन्दर्य उभार कर पाठकों के

सामने प्रदर्शित किया गया है। प्रकृति से जीवनदायिनी शक्ति, निर्मलता, पावनता, संघर्षशीलता, देवत्व आदि की शिक्षा मनुष्य के चरित्र को ऊपर उठाती है तो प्रकृति सौन्दर्य की पावनता को भी स्थापित करती है।

(घ) उपमान के रूप में

कोई साहित्यकार आलम्बन, उद्दीपन अथवा नैतिक रूप में प्रकृति का चित्रण व्यापकता के साथ करता है। उपमान रूप में प्रकृति का व्यापक, विस्तृत वर्णन न कर उसके रूप की मोहकता, पावनता को अप्रस्तुत बिम्ब विधानों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार प्रकृति वर्णन के द्वारा किसी भी लेखक के भावों की अभिव्यंजना सजीव एवं सार्थक रूप धारण करती है।

डॉ० वर्मा ने भी प्रकृति को विशाल, मधुर, अद्भुत आयामों से सँवार कर प्रकृति सौन्दर्य को अपनी कल्पनाशक्ति से ओर भी सँवारा है। घटनाओं, पात्रों के मध्य तारतम्य बिठा कर विविध रूपों में प्रकृति को चित्रित किया है। डॉ० वर्मा ने नाट्य सीमांओं में प्रकृति के सौन्दर्य को विभिन्न उपमानों से मण्डित कर और भी चमत्कृत स्वरूप प्रदान किया है। कहीं नववधू के रूप में, कहीं प्रेयसी के रूप में प्रकृति का सहज सौन्दर्यपरक, मानवीकरण डॉ० रामकुमार वर्मा द्वारा किया गया है तो कहीं प्रकृति को संन्यासिनी रूप में और कहीं उसको डरावने स्वरूप में प्रदर्शित किया है।

नववधू के रूप में प्रकृति को डॉ० वर्मा ने उभार कर उसके सौन्दर्य को पाठकों के समक्ष प्रतिस्थापित किया है — 'नीली चोटियों के समीप उठती हुई चन्द्र की बंकिम कला, ज्ञात होती है जैसे किसी अवगुंठनमयी नववधू के केशपाश में पीछे की ओर उठती हुई चूडामणि है।'[६३]

नववधू की तरह लगती चन्द्रकला के अतिरिक्त प्राकृतिक शोभा में भी पात्रों को किसी नववधू सा आभास होता है— 'तुमने यहाँ की प्राकृतिक शोभा

देखने के लिए प्रार्थन की। मैं यहाँ आया और मैंने देखा कि प्रकृति यहाँ किसी नववधू की भाँति सजी हुई है। वृक्षों की बाहुआ में लताएँ और लताओं की माँग में जैसे फूलों की राशि भरी है।'[६४]

यहाँ समूची प्रकृति नववधू की तरह लगती है, लताओं में माँग का आरोपण लताओं का भी मानवीकरण कर रहा है। प्रकृति नववधू के अतिरिक्त लेखक को 'पूर्व की धूम—राशि किसी प्रेयसी की बिखरी हुई केशराशि'[६५] की भाँति लगती है। मानव, लेखक सदा ही प्रकृति में मानवीकरण को आरोपित करता रहता है।

डॉ० वर्मा ने अपने नाट्य— साहित्य में 'आकाश के अंचल में प्रभात की किरणों द्वारा नृत्य का अनुसरण करने'[६६] के द्वारा नर्तकी रूप का आरोपण किया है तो दूसरी ओर 'चन्द्रकला के नृत्य करने को, लहराने को दर्शाकर'[६७] उसमें भी मानवीकरण (नर्तकी) को आरोपित कर प्रकृति सौन्दर्य का चमत्कार पैदा किया है। मानवीकरण के द्वारा नववधू और नर्तकी का आरोपण करने के अतिरिक्त डॉ० वर्मा ने प्रकृति को इस प्रकार भी दर्शाया है 'जैसे युद्ध की भैरवी ने काषाय वस्त्र धारण कर लिए हैं और वह संन्यासिनी हो गई है।'[६८]

प्रकृति में नारी रूप का आरेपण हमेशा से अधिकाधिक रूप में हुआ है। प्रकृति के साथ नारी रूप का समन्वय सौन्दर्य में अप्रतिम वृद्धि कर देता है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी यथास्थान नाट्य—कथा प्रवाह की दृष्टि से प्रकृति—नारी का सौन्दर्यात्मक स्वरूप दर्शा कर पाठकों को अभिभूत किया है। नारी रूप के साथ डॉ० वर्मा ने प्रकृति को पुरुष रूप में भी दर्शा कर उसका बलशाली स्वरूप चित्रित किया है।

'इस विशाल वटवृक्ष को तुमने देखा ? यह किसी चक्रवर्ती नरेश जैसा ज्ञात होता है। अपनी अनन्त भुजाओं से इसने इस वसुन्धरा को कितनी

शक्ति से बाँध रखा है। इसकी प्रत्येक भुजा स्वतन्त्र वृक्ष बनी जा रही है। यह शक्ति का सौन्दर्य, अचलता का प्रतीक, अपने विस्तार का यह आदर्श, किसी भी नरेश के लिए अनुकरणीय है।'[६९]

प्रकृति के ये सौन्दर्यपरक रूप मोहित करते हैं और दिव्य सौन्दर्य जाग्रत करते हैं वहीं कभी—कभी 'कंकाल से अकड़े पेड़, तलवार सा घूमता शीत झोंका, काली छाया खिड़की पर आकर डराती'[७०] भी है।

प्रकृति के डरावने रूप को डॉ० वर्मा ने दर्शाया नहीं है। पात्रों के मनोभावों के साथ एक—दो स्थानों पर ऐसा आरोपण किया है। अपने नाट्य—साहित्य में विशेष रूप से वे प्रकृति को सौन्दर्यपरक चित्रित करते आये हैं। नववधू, प्रेयसी आदि के उपमान में प्रकृति का सौन्दर्य, पावनता, मधुरता जगाता है साथ ही उज्ज्वलता को प्रस्फुटित करता है।

(व) अन्य रूप में

डॉ० रामकुमार वर्मा ने नाटकों, एकांकियों की रचना रंगमंच की सुविधा की दृष्टि को रखकर की थी। प्रकृति चित्रण में उन्होंने आलम्बन रूप में प्रकृति का चित्रण दृष्य विधान अथवा कथा प्रवाह हेतु किया, वहीं अन्य प्राकृतिक रूपों में वे पात्रों के माध्यम से प्रकृति सौन्दर्य को सामने लाते रहे हैं। नववधू, प्रेयसी, माँ, नर्तकी, राजा, आपसी मिलन के अतिरिक्त नदी, प्रात:काल, पर्वतों, वनों आदि के सौन्दर्य की आभा डॉ० वर्मा अपने नाट्य साहित्य में दर्शायी है।

आलम्बन, उद्दीपन,नैतिक और उपमान रूप में प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण करने के बाद भी डॉ० वर्मा ने प्रकृति सौन्दर्य को छोटे—छोटे रूपों, वाक्यों में दर्शाया है। इस प्रकार के सौन्दर्य वर्णन में विस्तार न कर उसे मात्र कथन पूर्ति अथवा प्रकृति सौन्दर्य को दर्शाने भर के लिए किया है। इसके पीछे किसी प्रकार का वर्णन अथवा विस्तार की स्थिति नहीं दिखती है।

'शिविर के चारों ओर लताओं और गुल्मों का जाल है'[७१] 'लता में फूल खिलते हैं'[७२] अथवा 'ये फूल भी तो हँसते हैं'[७३] जैसे छोटे—छोटे वाक्य प्रकृति सौन्दर्य की जानकारी मात्र देते हैं, किसी विशेष चित्रण को प्रस्तुत नहीं करते हैं।

इसी तरह के कुछ चित्रण डॉ० वर्मा ने प्रात:काल को सूर्य किरण को लेकर भी किया है। 'प्रभात के समय हल्की सुनहली धूप का आना'[७४] अथवा 'पश्चिम के सूर्य की हल्की सुनहली किरणों का शिविर में प्रवेश करना'[७५] सूर्य की दशाओं को दर्शाने मात्र का कार्य करता है। इस प्रकार के प्रकृति चित्रण से किसी विशेष सौन्दर्य को आभासित करने में सफलता नहीं प्राप्त होती है।

सूर्य की उपस्थिति, प्रभात की बेला सभी को स्फूर्ति से भर देती है। प्रात:कालीन उज्ज्वल सूर्य—किरणों में ये काले हाथी भले मासूम दिखते हैं'[७५] तो किसी अन्य को 'उषाकाल की बेला में अलसाया हुआ सा सुनसान वन—प्रान्त को बोझिल बनाना'[७७] प्रतीत हो रहा है।

'पहाड़ बढ़ कर कभी छोटे हुए हैं, नदियाँ आगे बढ़ कर कभी लौटी हैं? फूल खिलने के बाद कभी कली बने हैं?'[७८] के द्वारा डॉ० वर्मा ने प्रकृति के द्वारा दार्शनिक सौन्दर्य उभारने का प्रयास किया है। इसी तरह का दार्शनिक भाव डॉ० वर्मा ने पतझड़ के रूप में भी दर्शाया है — 'जिस तरह पतझड़ में पेड़ों के पत्ते झड जाते हैं न, उसी तरह आज के कवि और चित्रकार की सारी चीजें खत्म हो गई हैं।'[७९]

ऐसे छोटे—छोटे चित्रों में डॉ० रामकुमार वर्मा संवाद पूर्ति करते रहे हैं और प्रकृति सौन्दर्य को स्थापित करने का प्रयास भी करते दिखे हैं। नदी की धारा, निर्झर, वृक्षों का रूप आदि वे आसानी से दर्शाते रहे हैं।

संक्षेपत: उक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि डॉ०

रामकुमार वर्मा ने प्रकृति सौन्दर्य का उद्घाटन रंगमंच की सीमाओं को ध्यान में रख कर किया है।

नाट्य– साहित्य होने के कारण उनको प्रकृति के आलम्बन रूप का वर्णन करने में उतनी सफलता नहीं मिल सकी है अथवा कहा जाये कि आलम्बन रूप में प्रकृति सौन्दर्य को सामने लाने का अवकाश प्राप्त नहीं हो सका है। प्रकृति के अन्य रूपों को वे भली भाँति चित्रित कर सके हैं, भले ही ऐसा अत्यन्त सूक्ष्म रूप में हुआ हो। वे मानवीय भावों, परिस्थितियों को प्रकृति के साथ आरोपित करने में सफल रहे हैं।
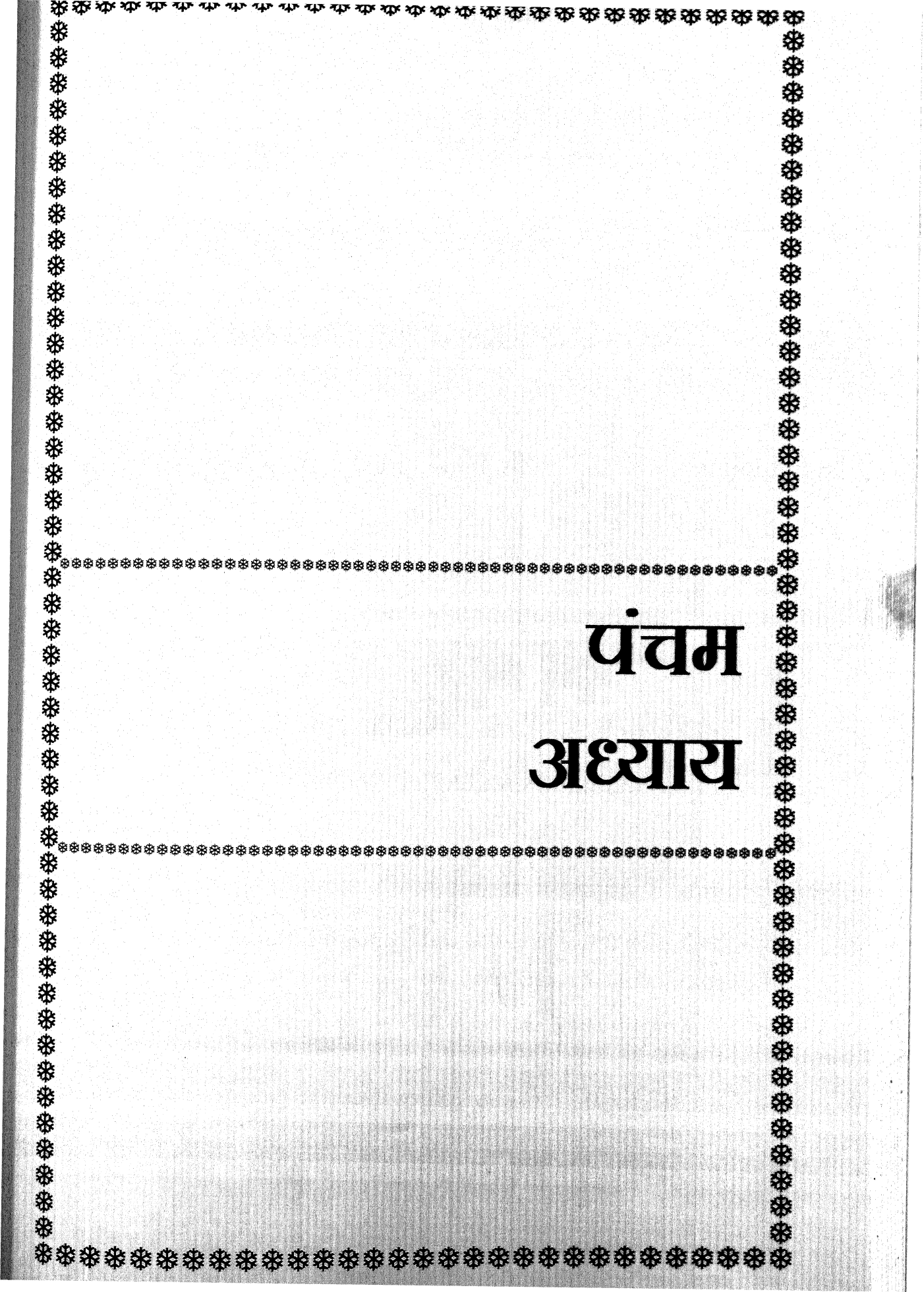
पात्रों के आपसी मिलन, प्रेम, राजाओं की मनःस्थिति के अनुसार वर्माजी ने प्रकृति सौन्दर्य को उभार कर पाठकों को अभिभूत किया है। प्रकृति सौन्दर्य की दिव्यता, पावनता भी बनाये रखी है। डॉ० वर्मा को भारतीय संस्कृति से विशेष लगाव था, इसी कारण से वे अपने प्रकृति चित्रण में प्रकृति की सुन्दरता को आसानी से सामने ला सके हैं। वर्माजी का प्रकृति सौन्दर्य अपनी आभा, पावनता तथा मधुरता में नाट्य– साहित्य को, पाठकों को तो प्रफुल्लित करता ही है, प्रकृति के विविध रूपों को भी सहज और अनुपम रूप में प्रतिस्थापित करता हैं।

सन्दर्भ सूची

१. उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा और लोकजीवन — डॉ० भीष्म मखीजा, पृ० २२

२. वही, पृ० २४

३. कला और कृपाण — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४४

४. मालव कुमार भोज — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २१५

५. एक्ट्रेस (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २०१

६. भगवान महावीर (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २८८

७. संदेह की निवृत्ति (सिंदूर की रेखा) (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५७

८. सत्य का स्वप्न — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३५६

९. जय भारत — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४४९

१०. कार्यक्षेत्र में पुरस्कार (नहीं का रहस्य) (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७३

११. जय वर्धमान — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३८४

१२. महाराणा प्रताप — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४६७

१३. जीवन का प्रश्न (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा,पृ० २६६

१४. सत्य का स्वप्न — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३५५

१५. चारुमित्रा (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२

१६. धरती का स्वर्ग (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १४७

१७. कलाकार का सत्य (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १४६

महाकवि तुलसीदास (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ०१५५

१८. जय वर्धमान — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३८५

१९. एक्ट्रेस (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २०३

२०. वही, पृ० २०७

२१. जय वर्धमान — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३९४

२२. शहनाई की शर्त (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १८३

२३. जय वर्धमान – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३१४

२४. जीवन का प्रश्न (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २७५

२५. सच्चे राज्य का तिरस्कार (रात का रहस्य) (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ०४७

२६. भगवान महावीर (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २८८

२७. औरंगजेब की आखिरी रात (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३१८

२८. शिवाजी – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३३

२९. स्वागत हे ऋतुराज (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७६

३०. विजय–पर्व – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २११

३१. अग्निशिखा – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २१८

३२. सुकन्या (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४४

३३. वही, पृ० २४४

३४. जौहर की ज्योति – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२८

ध्रुवतारिका (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७४

३५. संत मलूकदास (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३००

३६. वाजिद अली शाह (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४६

३७. जय वर्धमान – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७४

३८. भाग्य–नक्षत्र (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १५७

३९. जीवन का प्रश्न (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २६९

४०. अग्निशिखा – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १९५

४१. वही, पृ० १९५

४२. भाग्य–नक्षत्र (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६०

४३. संत तुलसीदास – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५६

४४. जय वर्धमान – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७३

४५. भाग्य–नक्षत्र (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६४

४६. मालव कुमार भोज – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३००

४७. चिारूमित्रा (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५

४८. विजय–पर्व – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७१.

४९. वही, पृ० १८२

५०. जौहर की ज्योति – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२८

ध्रुवतारिका (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७३

५१. जौहर की ज्योति – डॉ० रामकुमार वर्मा, वर्मा, पृ० ३२८

ध्रुवतारिका (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७३

५२. जौहर की ज्योति – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३३०

ध्रुवतारिका (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७४

५३. संत तुलसीदास – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५८

५४. भगवान बुद्ध – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ५१९

५५. जौहर की ज्योति – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २१६

५६. शिवाजी – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२

५७. कौमुदी महोत्सव – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२१

५८. देवीश्री अहिल्याबाई – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२४

५९. विजय–पर्व – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १८५

६०. एक्ट्रेस (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २०३

६१. मालव कुमार भोज – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २९८

६२. कुन्ती का परिताप – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३४९

६३. शिवाजी – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २९

६४. *भगवान महावीर (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २८८*

६५. *कला और कृपाण — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४५*

६६. *अग्निशिखा — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २०७*

६७. *शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७*

६८. *कौमुदी महोत्सव — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२०*

६९. *कला और कृपाण — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५०*

७०. *शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३१*

७१. *विजय—पर्व — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २०६*

७२. *दीपदान (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ७५*

७३. *विजय—पर्व — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १८४*

७४. *कार्यक्षेत्र में पुरस्कार (नहीं का रहस्य) (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७३*

७५. *पानीपत की हार (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३५९*

७६. *दुर्गावती (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२१*

७७. *अभिषेक पर्व (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २८१*

७८. *दीपदान (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ७७*

७९. *पृथ्वी का स्वर्ग — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ६८*

पंचम अध्याय

वस्तुगत सौन्दर्य

(क) भवन, मूर्ति, घाट तथा परकोटादि

(ख) पात्र, पर्यंक एवं उपस्करणादि

(ग) परिधान, आभूषण तथा मुद्रादि

(घ) अस्त्र-शस्त्र और वाहनादि

(च) अन्य वस्तुएँ

पंचम अध्याय

वस्तुगत सौन्दर्य

प्रकृति प्रेमी मानव हमेशा से आनन्दोन्मुख रहा है। आनन्द की प्राप्ति मानव की आत्मा को उद्वेलित एवं आन्दोलित करती रहती है। आत्मिक आनन्द की अभिव्यक्ति का माध्यम कला होती है। कला के विविध रूपों चित्र, नृत्य, गायन, स्थापत्य, मूर्ति आदि के द्वारा मानव अपनी सौन्दर्य–पिपासा को शांत करता है। कला मानव के भावों, विचारों, संस्कृति की परिचायक होती है। सप्तवर्णी इन्द्रधनुष, कल कल करतीं नदियाँ, हरे–भरे खेत और मैदान, रंग–बिरंगे फूल, चहकते पंछी अपने सौन्दर्य से मानव को अभिभूत करते रहते हैं। इसी सौन्दर्य के वशीभूत कलाकार अपनी कलाकृति में सौन्दर्य को चित्रित करता है तो साहित्यकार भी अपनी कृतियों में किसी न किसी रूप में सौन्दर्य को व्यक्त करता रहता है।

डा० रामकुमार वर्मा ने नाटकों की रचना में ऐतिहासिक पात्रों एवं घटनाओं को केन्द्र में रखा है। चन्द्रगुप्त, चाणक्य, अशोक, शिवाजी, महाराजा प्रताप, महात्मा बुद्ध, नाना फड़नवीस, कर्ण, चारूमित्रा, वासवदत्ता, कुन्ती, आदि पात्रों को केन्द्र में रखकर डॉ० वर्मा नाटकों–एकांकियों की रचना करते हैं।

डॉ० वर्मा के नाट्य संसार में पात्रों की संवाद योजना को विशेष महत्व दिया गया है। उनका स्वयं ही मानना था कि 'नाटक मंच के लिए होता है न कि पढ़ने या वाँचने के लिए।'[१] इसी कारण से वर्माजी का ध्यान विशेष रूप से नाटकों, एकांकियों को रंगमंचीय व्यवस्था के अनुरूप बनाने में रहा है, वे संवादों को, देशकाल को परिस्थितियों के अनुरूप बना कर रचना करते दिखे हैं।

उनके नाटकों में महलों, दुर्गों, तम्बुओं, कक्षों की शोभा, सुन्दरता मिलती है तो आम आदमी के साधारण कमरों की झलक मिलती है। अस्त्र शस्त्र में तलवार, त्रिशूल, भाला, कटार, कृपाण, छुरी मिलती है तो बन्दूक और लाठी

भी मिलती है। वस्तुओं में ऐतिहासिक वस्तुएँ भी हैं तो आधुनिक सामान भी दृष्टव्य है। इन सब की उपस्थिति के बाद भी वर्माजी वस्तुगत सौन्दर्य की ओर ज्यादा ध्यान नहीं देते हैं। उनके लिए वस्तुओं आदि की उपस्थिति नाटकों में देशकाल की पूर्ति करवाने का साधन मात्र रही है। इस दृष्टि से नाटकों के आरंभ में, अंकों के प्रारंभ होने पर, एकांकी के आरम्भ होने पर रंगमंचीय व्यवस्था को जीवन्त करने के लिए वस्तुओं आदि का सौन्दर्य दर्शाते हैं।

डॉ० वर्मा के नाटकों एवं एकांकियों में वस्तुगत सौन्दर्य को अलग–अलग वर्गों में विभाजित कर विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है —

(क) भवन, मूर्ति ,घाट तथा परकोटादि

(ख) पात्र, पर्यंक एवं उपस्करणादि

(ग) परिधान, आभूषण तथा मुद्रादि

(घ) अस्त्र–शस्त्र और वाहनादि

(च) अन्य वस्तुएँ

(क) भवन, मूर्ति, घाट, परकोटादि

स्थापत्य कला का महत्व प्रत्येक युग में रहा है। इतिहास के पृष्ठों में स्थापत्य कला के महत्वपूर्ण सिद्धांत और उनका सौन्दर्य दबा छिपा है। वास्तुशिल्प के मूर्त आधार का प्रभाव भी अन्य मूर्त पदार्थों द्वारा होता है। इसमें रंग, प्रकाश आदि का प्रयोग वास्तुशिल्प को चित्ताकर्षक बना देता है। कोई कलाकार अपनी कलाकृति में अन्तर्मन में स्थापित सौन्दर्य को प्रतिस्थापित करता है। 'शिल्पी दृश्य जगत से ही सब कुछ लेता हो, ऐसा नहीं है। वह अपने इष्ट का ध्यान लगाता है, ध्यान मग्न रहता है। उसके हृदय में ज्योति की अवधारणा होती है। उसी ज्योति में आकर प्रकार बनते हैं। आकार–प्रकार पुराणों में बतलाई हुई मूर्तियों के प्रतिबिम्ब बनते जाते हैं। शिल्पी इन्हीं कलाओं को प्रतिमूर्त करता है।'[२]

डॉ० रामकुमार वर्मा कहीं भी विस्तृत वर्णन में स्थापत्य कला का चित्रण करते नहीं दिखे हैं। नाटकों, एकांकियों में वस्तुओं का चित्रण वे विशेष रूप से दृश्य विधान हेतु ही करते नजर आये हैं। इसमें वे कक्षों, खंभों, शिविरों आदि का चित्रण करते हैं पर वे उनको सौन्दर्य बोध के चरम तक नहीं ले जाते हैं। रामकुमार वर्मा ने सामाजिक नाटकों, एकांकियों की अपेक्षा ऐतिहासिक नाटकों, एकांकियों की रचना अधिक की है। इस कारण भी दृश्य विधान में वस्तुगत सौन्दर्य में ऐतिहासिकता के दर्शन अधिक होते हैं।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अधिकतर अपने नाटकों और एकांकियों में कमरों का वर्णन करते समय कमरे की दीवारों का स्थिति, उसमें रखी वस्तुओं, फर्श पर बिछी चटाई, मेहराब आदि पर लटकती मालाओं का वर्णन ही किया है। यह वस्तुगत वर्णन लगभग सभी नाटकों, एकांकियों में एक सा रहा है। बस अन्तर यदि आया है तो इस तथ्य का कि ऐतिहासिक नाट्य संसार में वस्तुओं में ऐतिहासिकता रही, जबकि सामाजिक नाटकों—एकांकियों में आम साधारण सी वस्तुएँ रहीं हैं।

'शिविरों के खम्भों में रूखापन है, किन्तु सुनहले रँग से रंग कर उन्हें सुन्दर बनाने का आयोजन किया गया है। पत्थर की दीवारों के ऊपर जरी का चन्दोवा है; जिसमें स्थान—स्थान पर मोतियों की लड़ियां झूल रहीं हैं। सामने तीन मेहराबें हैं और उनके समाप्त होने पर दीवाल पर रेशमी परदे हैं,' [३] जैसा सामान्य सा कक्ष वर्णन वर्माजी द्वारा किया गया है। इसके अतिरिक्त वे मात्र वाक्य के सहारे कमरों की शोभा बताते हैं पर शोभा किस प्रकार की है यह चित्रित नहीं होता है।

'कक्ष में सजावट अपनी चरम सीमा पर है।' [४] जैसे वाक्यों से वर्माजी ने काम चलाया है तो कहीं 'एक ऊँचा और विस्तृत तम्बू है जिसमें रेशम और

सोने के तारों की झालरें लगीं हैं। रंग बिरंगे परदे। फर्श पर रेशमी बिछावन, जिन पर सोने का काम किया गया है'[५] के द्वारा कमरे/तम्बू को थोड़ी सी भव्यता प्रदान की है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने ऐतिहासिक नाटकों, एकांकियों में लगभग एक जैसा वस्तुगत सौन्दर्य दर्शाया है। इसमें पुष्पमालाओं, मोती की मालाओं, मखमल के फर्श आदि को आधार बना कर किसी चित्र को अधिक और किसी को कम भव्यता प्रदान की है। 'यह श्रृंगार कक्ष राजसी वस्त्रों से सजा हुआ है। कक्ष में अनेक कला—कृतियाँ, पाट—वस्त्रों से सुसज्जित आसदिकाएँ। बीच में एक मखमली कालीन और ज़री से कढ़ा हुआ तकिया'[६] से महारानी के कमरे की शोभा दर्शायी गई है तो चारूमित्रा के 'शिविर के कक्ष में ऐश्वर्य बरस रहा है। स्तंभों में स्वर्ण लताएँ लिपटी हैं और उन पर रत्नों के फूल हैं, जो प्रकाश में ज्योति मण्डल बन जाते हैं। नीलम और मोतियों की झालरों से कक्ष की दीवारों पर समुद्र की फेनिल लहरों का आभास उत्पन्न किया गया है।'[७]

डॉ० वर्मा ने अपना नाट्य—संसार रंगमंच की स्थिति को ध्यान में रख कर रचा है। वे नाटकों में दृश्य विधान को इस प्रकार का रखना स्वीकारते थे जिससे अभिनय की समस्या न आये। इस दृष्टि के कारण ही उनके नाट्य संसार में यद्यपि महलों, दुर्गों का चित्रण है पर या तो सांकेतिक रूप में अथवा उसके किसी एक कक्ष की शोभा का वर्णन है। इससे रंगमंच की सुविधा बनी रही और वस्तुगत् सौन्दर्य की उपस्थिति भी दिखती है।

कौशाम्बी के राजप्रसाद का वर्णन करते समय वर्माजी ने 'स्थान—स्थान पर दीपाधार जो रत्नों से जड़े हैं, कक्ष के मध्य में स्फटिक के हाथियों को पैरों से दबाये हुए सिंहासन'[८] द्वारा दृश्य—विधान पूरा किया है तो 'पराक्रमांक समुद्रगुप्त के राजकक्ष का बाहरी शिविर सुन्दरता के साथ सजा हुआ है। द्वारों पर पाट वस्त्र

और भूमि पर मखमली बिछावन। स्थान–स्थान पर सुन्दर प्रतिमाएँ और रत्न राशि से विजड़ित सामग्री। कक्ष के मध्य में रत्न जटित सिंहासन'[९] के द्वारा शोभायमान है। दृश्य–विधान में रंगमच की सीमितता के कारण वर्माजी ने दुर्गों, महलों के सौन्दर्य को सांकेतिक रूप में दर्शाया है। सूर्योदय के पूर्व उनकी दृष्टि में 'कुंभलगढ़ का दुर्ग सुनसान वनभूमि में किसी उन्मत्त सिंह की भाँति तन कर अपनी शक्ति तौलता'[९] प्रतीत होता है।

कक्षों के चित्रात्मक दृश्यों को डॉ० वर्मा ने अंकों के आरंभ में दिया है और यदा–कदा एक दो स्थानों पर पात्रों के द्वारा वस्तुगत सौन्दर्य को उभारते दिखे हैं। कौमुदी महोत्सव के अवसर की तैयारियाँ हो रहीं होतीं हैं और कुसुमपुर को सजाने के लिये चन्द्रगुप्त जी जान से लगा होता है। ऐसे में कुसुमपुर के कार्यान्तिक पुष्पदन्त उत्साहित होकर अपने सम्राट के समक्ष कुसुमपुर को सजाने की चर्चा कता है – 'नगर के काष्ठ–प्राचीर के चौंसठ द्वारों पर मंगल–कलशों की तरंगें सुसज्जित होंगी। दूर से ऐसा ज्ञात होगा कि कुसुमपुर प्रकाश का एक सरोवर है जिसमें चारों ओर दीप–किरणों की चौसठ तरंगें प्रवाहित हो रही हैं।'[१०]

इसी तरह समुद्रगुप्त कला सम्बन्धी चर्चा सिंहल के राजदूत से करता है तो सिंहल का राजदूत धवलकीर्ति भित्ति–चित्रों पर महात्मा बुद्ध के विभिन्न चित्रों की स्थिति बताते हुए कहता है, "सम्राट ! बुद्ध देव के जीवन के समस्त चित्र भित्तियों पर अंकित हैं। महामाया का स्वप्न, गौतम का जन्म, शाक्य नरेश का सुखोत्सव, वैराग्य उत्पन्न कराने वाले रोग, जरा और मृत्यु के चित्र, भगवान गौतम का महाभिनिष्क्रमण, फिर उनकी तपस्या एवं उनके बोधिसत्व का रूप। संघ को उपदेश देते हुए उनके चित्रों में महान ऐश्वर्य और विभूति है।"[११] यद्यपि ऐसे चित्रंण में सौन्दर्य का परिपाक नहीं होता है पर वस्तुगत् स्थिति स्पष्ट अवश्य होती है।

डॉ० वर्मा ने छोटे—छोटे चित्रण के साथ—साथ एक स्थान पर विशालकाय चित्रण भी किया है। यह चित्रण भी दृश्य की पृष्ठभूमि का निर्माण करने के लिए ही है। इसमें 'सागर के कंधों पर तैरता 'जहाज महल' जो दो मंजिलों का ३६१ फुट लम्बा है और कर्पूर सागर और मंजू सागर के मध्य तैरता रहता है एक युद्ध में क्षत—विक्षत है। मानो अपनी शव यात्रा में आगे बढ़ रहा है,'[१२] ऐसे हृदय विदारक दृश्य के साथ वर्माजी हिंडोला—महल के ८८ फुट लम्बे ६० फुट चौड़े और ३६ फुट ऊँचे कक्ष में सूने सिंहासन को दिखाते हैं तो हिंडोला महल को विधवा की भाँति घुटनों पर सिर रख कर क्रन्दन करने'[१३] की स्थिति से महल की दुर्दशा को दर्शाते हैं।

राजा रानियों के महलों के कक्षों की शोभा का दृश्य प्रस्तुत करने में वर्माजी ने विस्तृत चित्रण नहीं किया है। वे दृश्य विधान की दृष्टि से सूक्ष्म रूप में चित्र प्रस्तुत करते हैं। चित्रों में प्रदर्शित वस्तु, सिंहासन, पर्दों, फर्श आदि का सौन्दर्यात्मक चित्रण न होकर उनकी उपस्थिति मात्र का अहसास पाठकों को करवाया गया है।

'दीवाने आम खूबसूरती से सजा हुआ है। फर्श पर मखमली कालीन और दरवाजों पर रेशमी पर्दे,'[१४] 'द्वारों और झरोखों पर कौशेयपट, स्वर्ण सिंहासन जिसमें मोतियों की झालरें लगी हुई हैं,'[१५] 'हंस की आकृति के वातायन बने हुए हैं और स्फटिक खण्डों से भित्तियों और स्तम्भों का निर्माण हुआ है। चन्द्र किरणों की भाँति रजत—तारों के वन्दनवार लगे हैं,'[१६] द्वारों और वातायनों पर रेशमी परदे पड़े हुए हैं। छोटे—छोटे कुछ मंच हैं जिन पर रेशम और मखमल बिछा है,'[१७] जैसे छोटे—छोटे चित्रों द्वारा वस्तुगत सौन्दर्य को उभारने का कार्य किया गया है।

राजमहलों, कक्षों के चित्रण के साथ—साथ वर्माजी ने नाटकों– एकांकियों की कथावस्तु के अनुसार जंगल वनादि का भी चित्रण अतिसूक्ष्म रूप में किया है।

एक ओर जहाँ उन्होंने रेशमी परदों, मखमली कालीन मोतियों की माला का चित्रण किया है वहीं दूसरी ओर कुटी आदि का चित्रण करते समय 'तमाल पत्रों से निर्मित भव्य कुटी—जिसके दोनों ओर नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पों की क्यारियाँ बनी हैं,'[१८] 'कुटी के भीतर प्रकाश हो रहा है और उसके चारों ओर नाना प्रकार की पुष्पित लताएँ हैं,'[१९] 'छप्पर और कूष्माण्ड की बेल,'[२०] को वर्माजी ने दर्शाया है। उनकी लेखनी कुटी का चित्रण करते समय यहीं आकर नहीं थमी; कुटी से सम्बन्धित अन्य वस्तुओं, स्थिति को दर्शाकर उसमें वास्तविकता को उभारा है।

'कुटी में तिल और जब की राशि। एक ओर औषधि पीसने की सिल टिकी है,'[२१] तो कुटी में बाहर 'एक यज्ञ—कुण्ड बना है, भूमि साफ सुथरी है जिस पर स्थान—स्थान पर मृग—चर्म बिछे हुए हैं। यज्ञ—कुण्ड से सुगंधित धूम्र उठ रहा है।'[२२] इस प्रकार के चित्रण से वर्माजी ने नाटकों की रंगमंचीयता को ध्यान में रखकर दृश्य—विधान में व्यवधान नहीं होने दिया है और वातावरण में भी पवित्रता दर्शायी है।

ऐतिहासिक नाट्य संसार के अतिरिक्त वर्माजी ने सामाजिक नाटकों, एकांकियों की रचना की है। इसमें भी दृश्य—निर्माण के लिए ही वस्तुगत सौन्दर्य को उभारा है। इन नाटकों में भी किसी सम्पूर्ण भवन, घर, मंदिर आदि के चित्रण के स्थान पर कमरों आदि का चित्र ही प्रस्तुत किया गया है। ऐसे चित्रों में वर्माजी ने साधारण कमरे, मेज़, कुर्सी आदि को ही अधिकतर चित्रित किया है। कमरे की वस्तुओं में भी क़िसी प्रकार का कलात्मक सौन्दर्य नहीं उभारा है।

'सुसज्जित कमरे में बड़ा शीशा, एक कोने में एक टेबुल उस पर कुछ पुस्तकें, बीचों बीच एक टेबुल जिस पर फूलदान है और जिसमें गुलदस्ता लगा है। आमने सामने दो कुर्सियाँ पड़ीं हैं। ज़मीन पर मखमली फर्श बिछा है,'[२३] 'कमरे के बाँयी ओर पक्की अँगीठी और दूसरी ओर एक अलमारी है जिसमें

पुस्तकें अस्तव्यस्त हैं।'[२४] कमरों के इस प्रकार के चित्रण में वर्माजी ने कुर्सी मेजों को अधिक महत्व दिया है तो फर्श की स्थिति को भी कथा के अनुरूप ढाला है। 'कहीं मखमली फर्श है तो कहीं जमीन पर चेक डिजाइन का फर्श बिछा है,'[२५] तो कहीं—कहीं 'सामान्य दरी और साधारण कुर्सी मेज'[२६] को दर्शाया है।

नाटकों—एकांकियों के पात्रों की स्थिति को दर्शाने के लिए भी वर्माजी ने कमरे का चित्रण अलग—अलग रूप में किया है। साधारण परिवार की स्थिति दर्शाने में वर्माजी ने कमरे में कोई सजावट नहीं की है। 'कोने में साधारण सी चारपाई है जिस पर दरी और चादर बिछी है। सिरहाने एक तकिया और पैताने एक ऊनी चादर,'[२७] वहीं दूसरी ओर फिल्मी ऐक्ट्रेस के शूटिंग वाले तम्बू की दृश्य योजना को प्रभावी बनाया है। 'एक सुसज्जित कमरा, खिड़कियों और दरवाजों पर सुनहले परदे। मनुष्य के पूरे शरीर का प्रतिबिम्ब दिखाने वाले तीन बड़े—बड़े शीशे। एक कोने में चमकती टेबिल जैसे उस पर अभी ही पॉलिश हुई हो। टेबुल पर फूलदान जिसमें ताजे फूल सजे हैं। टेबिल के समीप चार कुर्सियाँ जिन पर मखमली गद्दे सजे हुए हैं।'[२८] इस तरह की दृश्य—योजना स्वतः ही सारी स्थिति को परिभाषित कर देती है।

अमीरी—गरीबी को स्पष्ट करते चित्रों को वर्माजी ने अपनी कलम से दृश्य—विधान हेतु निर्मित किया है। 'पुराने मकान के पुरानेपन को नीले रंग से दूर करने की चेष्टा'[२९] से साधारण परिवार की स्थिति दर्शायी है तो 'तख्त पर अच्छा सा कालीन बिछा हुआ, एक कोने में सोफा और दो गद्देदार कुर्सियाँ, कमरे में सुथरापन'[३०] सम्पन्नता की स्थिति बताता है। वहीं 'रेशमी कवर से सजा सूट बीचों—बीच है। सूट के बीच में पॉलिश की हुई बरमा टीक की टीप्वॉय है जिस पर गुलाब और चमेली के फूलों का फूलदान सजा है को नये डिज़ायन का ड्राइंग— रूम'[३१] रामकुमार वर्मा ने बता कर वैभवता ही दर्शायी है।

ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाट्य रचनाओं के अतिरिक्त वर्माजी ने विज्ञान आधारित नाट्य रचना और कौतूहल भरी नाट्य रचनाएँ भी की हैं। 'चन्द्रलोक' तथा 'अंधकार' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। चन्द्रलोक एक ओर विज्ञान पर आधारित है तो अंधकार में ईश्वर को पात्र बनाया गया है। इनमें वस्तुगत् सौन्दर्य भी उसी वातावरण के अनुसार चित्रित है जिस प्रकार की कथा निर्मित हुई है।

'चन्द्रलोक के भू–गर्भ का एक कक्ष, कक्ष के एक कोने में स्थित यंत्र से जमी हुई पतली हवा तरल होकर प्रवाहित हो रही है। इस्पात और प्लेटिनम से मिली हुई धातु से बैठने के उनके तारिकाकृत स्थान बने हुए हैं। एक रजतपट पर विद्युत तरंगों से आकाश का चित्र खिंचा हुआ है तो दूसरे रजतपट पर समस्त चन्द्रलोक का दृश्य है।'[३२]

चन्द्रलोक के कक्ष के इस दृश्य के ठीक विपरीत स्वर्ग में कक्ष को दर्शाया गया है। 'दिव्य प्रकाश, समस्त वातावरण जैसे चन्द्र किरणों से निर्मित है। कक्ष का रूप इन्द्रधनुष के छोटे–छोटे टुकड़ों से बना है। सामने के दो वातायन मयूर के फैले हुए पुच्छाकार के ढंग के हैं। उसमें आकाशगंगा की धवल राशि नेत्र कोरकों की भांति वक्र दीख रही है। सिंहासन पर नीलम का फर्श, मूँगे का आसन है। इन्द्रनीलमणि का गुंबज और हीरकों के स्तम्भ'[३३] के चित्रण से वर्माजी ने अपनी अद्‌भुत् कल्पना–शक्ति का परिचय दिया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नाट्य संसार के कक्षों को सुसज्जित करने में मात्र कुर्सी, मेज़, कालीन, फूलदान आदि का ही सहारा नहीं लिया है बल्कि वातावरण के अनुसार उसको चित्रों से भी सँवारा है। वर्माजी ने कक्षों के सौन्दर्य को निखारने में मूर्तियों का प्रयोग लगभग नहीं के बराबर किया है। वे सर्वथा चित्रों का उपयोग करते ही दिखे हैं। कहीं कहीं चित्रों की उपस्थिति दर्शाने में कलैण्डरों का भी उपयोग उन्होंने किया है। चित्रों में महापुरुषों के चित्रों को ही

प्राथमिकता दी गई है। मूर्तियों में वर्माजी ने कक्ष सज्जा अथवा मंदिर के लिए मूर्तियों को दृश्य विधान हेतु ही आरोपित किया है।

कहीं 'हीरक खण्ड भगवान बुद्धदेव की प्रतिमा,'[३४] 'किसी कक्ष में वीणापणि सरस्वती की प्रतिमा रखी है,'[३५] 'किसी राजभवन के कक्ष के कोने में महावलेश्वर की मूर्ति रखी है।'[३६] यहाँ एक दो स्थानों पर वर्माजी ने मूर्तियों को नाम से परिभाषित किया है तो एक दो स्थानों पर बिना नाम के मूर्ति की, प्रतिमा की चर्चा मात्र की है। मंदिर में स्थान—स्थान पर प्रतिमाएँ सजी होना,'[३७] अथवा 'सोने की मूर्ति,'[३८] 'पीतल की मूर्ति'[३९] दिखाना आदि को सामान्य रूप से दर्शाया है। इन मूर्तियों के चित्रण से किसी प्रकार का सौन्दर्य बोध नहीं होता है। मूर्तियों की आभा, उनका आकार, उनकी बनावट आदि का सौन्दर्य क्षणांश भी पाठकों के मन में उत्पन्न नहीं होता है।

कक्ष के चित्रों में वर्माजी ने महापुरुषों, भगवानों, ऐतिहासिक पात्रों के चित्रों को दर्शाया है। इसमें फैम में लगे चित्र हैं, तो तैल चित्र भी हैं। भगवान के चित्रों के वर्णन में 'चित्रकूट के मंदिर का विशाल कक्ष है। जिसमें स्थान—स्थान पर भगवान राम, शंकर, विश्वनाथ, महावीर हनुमान तथा दुर्गा के चित्र लगे हुए हैं।'[४०]

मंदिर में प्रदर्शित इन चित्रों के अतिरिक्त घर के कमरों में शोभा बढ़ाने को 'दीवारों पर राजा रवि वर्मा चित्रित राधा—कृष्ण, लक्ष्मी और राम—सीता के चित्र लगे हुए हैं,'[४१] उसमें 'पंचवटी की पर्णकुटी में राम सीता की अत्यन्त भावमयी छवि है। सीता कांचन—मृग मारीच की ओर संकेत कर रहीं हैं और राम उसी ओर देख रहे हैं। यह चित्र अन्य चित्रों की अपेक्षा बड़े आकार का है।'[४२] भगवानों के इन चित्रों में भी किसी तरह का सौन्दर्य वर्माजी द्वारा नहीं दर्शाया गया है। चित्रों को नाम से इंगित कर दृश्य की पूर्ति की गई है।

ऐतिहासिक पात्रों, महापुरुषों में 'टैगोर, लक्ष्मीबाई, महाराणा प्रताप,

गांधी, नेहरू, सरदार पटेल के चित्र'[४३] हैं जो एक सामान्य व्यक्ति के कमरे की शोभा बढ़ा रहे हैं, साथ ही 'नूतन और मधुबाला के चित्र वाले कलैण्डर'[४४] उसकी रुचि को प्रदर्शित कर रहे हैं।

ऐतिहासिक पात्रों के चित्रों में एक 'मिट्टी के छोटे से घर के कमरे में हर्षवर्द्धन, विक्रमादित्य और पृथ्वीराज चौहान आदि की कुछ तसवीरें हैं'[४५] तो 'नाना साहब के महल की बारहदरी की दीवारों पर छत्रपति शिवाजी, बाजीराव प्रथम, सदाशिवराव भाऊ, विश्वासराव, माधवराव और नाना फड़नवीस के सुन्दर चित्र'[४६] लगे हैं। इसी तरह रानी लक्ष्मीबाई के महल के बाहरी कक्ष की 'दीवारों पर बुन्देलखण्ड की प्रकृति के अनेक चित्र, स्वर्गीय गंगाधरराव, नाना साहब और तॉत्या तोपे के चित्र विशेष प्रभावशाली हैं।'[४७] भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इन नायकों के चित्र भी अपनी उपस्थिति दर्शाते ही दिखे हैं। इनसे किसी प्रकार की सौन्दर्य पूर्ति नहीं हो पाई है।

इन नायकों के चित्रों के अतिरिक्त मुगल शासकों में 'अकबर, शाहजहाँ के चित्र'[४८] तथा तेजकुँअरि (सफीयत की माँ) और सफीयत (अकबर की पुत्री) के चित्र'[४९] भी दृश्य—पूर्ति ही करते नजर आते हैं। इन चित्रों से भी किसी प्रकार का सौन्दर्य आभासित नहीं होता है।

डॉ० वर्मा का उद्देश्य मात्र दृश्यों की शोभा बढ़ाना रहा है और उसी वातावरण के अनुरूप ही वे चित्रों को दर्शाते रहे हैं। किसी भी प्रकार से उन्होंने इन चित्रों को सौन्दर्य से मंडित करने का अवकाश नहीं लिया है। ठीक इसी तरह की योजना वे कक्षों की साज— सज्जा में प्रदर्शित करते हैं। यहाँ भी दृश्य—विधान की पूर्ति की खातिर वे वस्तुओं को दर्शाते हैं पर उनमें किसी प्रकार का सौन्दर्य आरोपित नहीं करते हैं।

(ख) पात्र, पर्यंक एवं उपस्करणादि

वस्तुगत् विवरण पर अपना ध्यान केन्द्रित करके डॉ० रामकुमार वर्मा ने सारा ध्यान पात्रों की संवाद योजना तथा नाटकों की रंगमंचीय स्थिति पर लगाया है। इस कारण वे प्रमुख रूप से पात्रों की मन:स्थिति और घटनाओं की जानकारी देने का प्रयास करते रहे हैं। वस्तुओं के सौन्दर्यबोध को सामने लाने की ओर उन्होंने किंचित प्रयास भी नहीं किया है। डॉ० वर्मा ने अपने नाट्य—संसार में वैसे भी वस्तुगत विवरण को महत्वपूर्ण नहीं माना है।

उनकी नाट्य—कृतियों में वातावरण के अनुरूप ही वस्तुगत् विवरण प्राप्त होते हैं। ये वस्तुगत् विवरण घटनाओं से सम्बन्धित दृश्य को जीवन्तता देने के लिए ही रखे गये हैं। इन्हें न तो विस्तृत किया गया है और न ही इनमें सौन्दर्य उभारा गया है। ऐसा नहीं कि डॉ० वर्मा ने सौन्दर्य विषयक दृष्टि को नहीं अपनाया था, पर नाटकों को वे रंगमंच के लिए ही मानते थे, इस कारण वे नाटकों के अभिनय सम्बन्धी तथ्य पर अधिक केन्द्रित रहे ना कि वस्तुगत् विवरण और सौन्दर्य वर्णन करने में। उनका ज्यादातर विवरण अंकों के प्रारम्भ में दृश्य—विधान हेतु ही आया है। राजसी कक्षों की साजो—सजावट के समय 'आम्र—पल्लवों के सजाये गए जल से भरे मंगल घट'[५०] या फिर कक्षों में अँधियारा भगाने को 'छोटे से मृतिका—स्तम्भ पर पंच—प्रदीप का जलना'[५१] रहा हो या 'टिमटिमाते दीपक'[५२] ये पात्र पर्यंक दृश्य—विधान की पूर्ति करते नज़र आते हैं।

वर्माजी ने अपनी आलोच्य कृतियों में परिस्थितियों के अनुसार वस्तुओं को प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिक घटनाओं के चित्र में उसी देशकाल के अनुसार पात्रों को दिखाया है। आरती के लिए 'स्वर्णथाल'[५३] का प्रयोग किया गया है तो किसी षडयंत्रकारी को दण्ड देने के लिए 'आसव—चषक'[५४] का चित्रण किया है। हालाँकि इस प्रकार के चित्रण में सौन्दर्य बोध नहीं होता पर देशकाल का बोध

अवश्य होता है। 'स्फटिक स्तम्भों पर होता दीपों का आलोक'[५५] हो या 'काष्ठ—प्राचीर अथवा कक्षों में लगे दीप स्तम्भ'[५६] सभी, कक्षों को आलोकित करने के साथ—साथ दृश्यों को भी आलोकित करते हैं।

कक्षों की सजावट के अतिरिक्त दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं को भी डॉ० वर्मा ने अपने नाटकों में उभारा है। बांग्लादेश युद्ध के समय की विभीषिका पर लोगों का 'सब्जियों और फलों की टोकरियों'[५७] को सँभालना रहा हो या फिर 'छत्रपति शिवाजी का कैद से भागने के लिए मिठाइयों की टोकरियों के साथ—साथ बड़े बड़े टिपारों'[५८] का प्रयोग करना रहा हो सभी मात्र वस्तुगत् स्थिति को दर्शाने का ही कार्य करते हैं।

इसी तरह देवीश्री अहिल्याबाई नाटक में 'घड़ों, बालटी'[५९] शब्दावली का उपयोग किया गया है और तत्कालीन परिस्थितियों को प्रदर्शित करते 'स्वर्णकलश'[६०] रहे हों पर ये किसी भी प्रकार का विवरण अथवा सौन्दर्य से आभासित नहीं हैं। नाटकों के अतिरिक्त एकांकियों में चूँकि दृश्य—विधान का विवरण देने का भी अवकाश नहीं होता, अतः एकांकियों में नाटकों की अपेक्षा वस्तुगत वर्णन कम ही हो सका है। जितना भी वस्तुगत वर्णन हुआ है उसमें भी पात्र, पर्यंक, उपस्करणादि के सम्बन्ध में विवरण यदा कदा ही दिखाई देते हैं।

एकांकी के वस्तुगत विवरण में भी वर्माजी ने परिस्थितियों का ध्यान रखा है। औरंगज़ेब की बीमारी स्थिति को दर्शाते समय 'उसके आसपास दवाई की शीशियाँ रखीं हैं, गुलाबजल से भरी लम्बे मुँह वाली सोने की सुराही'[६१] रखी है और 'दवा पिलाने को प्याला'[६२] दर्शाकर वर्माजी ने छोटी—छोटी वस्तुओं का तो ध्यान रखा है पर उनको विवरण और सौन्दर्य से दूर रखा है।

वर्माजी ने कटोरे का प्रयोग औरंगजेब को दवा पिलाने के लिए किया तो एक अन्य स्थान पर 'कटोरे का उपयोग दूध के लिए'[६३] किया है। किसी

गरीब अथवा साधू द्वारा उपयोग किये जाने वाले बर्तन के रूप में कहीं 'तसले'[६४] का प्रयोग है तो कहीं पानी के लिए 'कमण्डल'[६५] का प्रयोग किया गया है।

इसके अतिरिक्त वर्माजी ने घरेलू उपयोग की छोटी–छोटी वस्तुओं को बिना वर्णन और सौन्दर्य के चित्रित किया है। इसमें वे 'पक्की अंगीठी,'[६६] 'फूलदान,'[६७] 'गिलास,'[६८] 'फूलों की डलिया,'[६९] 'तश्तरी,'[७०] आदि को कथा के अनुसार प्रयोग करते रहे हैं।

अपने नाट्य–संसार में थाल, स्वर्णकलश, फूलदान आदि का बहुतायत प्रयोग करने वाले वर्माजी ने किसी भी रूप में किसी वस्तु में सौन्दर्य नहीं उकेरा है। वे निर्विघ्न रूप से नाट्य–रचना करते रहे, कथा–प्रवाह, दृश्य–विधान और रंगमंचीय सुगमता के लिए वस्तुओं का प्रयोग करते रहे पर उनको किसी भी विवरण या सौन्दर्य से परिपूर्ण नहीं करते हैं। इस कारण पाठकों के मन–मष्तिष्क में नाटकों, एकांकियों के संवाद तो अंकित हो जाते हैं पर वस्तुगत विवरण अथवा स्थिति अंकित नहीं हो पाती।

(ग) परिधान, आभूषण तथा मुद्रादि

परिधान, आभूषण हमेशा से व्यक्तियों की शोभा बढ़ाने का कार्य करते रहे हैं। एक ओर मानव को परिधानों से शारीरिक सुरक्षा प्राप्त हुई है वहीं दूसरी ओर परिधानों के द्वारा उसने अपने बाहरी व्यक्तित्व को भी निखारा है। व्यक्ति की आर्थिक स्थिति; सामाजिक स्थिति का प्रभाव उसकी वेशभूषा और परिधानों, आभूषणों पर अवश्य ही पड़ता हैं। इसी तरह देशकाल, वातावरण का प्रभाव भी व्यक्ति की वेशभूषा पर पड़ता है।

भारतीय समाज में विभिन्न संस्कृतियाँ समय–समय पर अपना प्रभाव आरोपित करतीं रहीं हैं साथ ही विभिन्न वर्गों के लोगों ने भी समाज को प्रभावित किया है। इस कारण लोगों की वेशभूषा, पहनावे में अन्तर रहा है। डॉ० रामकुमार

वर्मा ने अपने नाट्य संसार में ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों को लिया है। इस कारण उनकी वेशभूषा और पहनावे में तत्कालीन वातावरण की झलक देखने को मिलती है। पुरुषों का कुर्ता, पायजामा, धोती, अंगरखा, साफा आदि धारण करना तो स्त्रियों का पहनावा धोती, कंचुकी आदि की विविधताओं से भरा रहा है।

आबाजी सोनदेव की बहिन काशीबाई अप्रतिम सौन्दर्य की मलिका समझी जाती है, इसी प्रकार बीजापुर के सुल्तान मुल्ला अहमद की पुत्रवधू भी अत्यन्त सुन्दर मानी गई है। डॉ. वर्मा ने अपने नाटक शिवाजी के मध्य अवकाश निकाल कर दोनों स्त्रियों के शारीरिक सौन्दर्य की आभा को प्रदर्शित किया है।

काशीबाई के सौन्दर्य का, परिधान का वर्णन करते हुए उसके 'माथे पर लाल बिन्दी, केशों में लाल फूलों का श्रृंगार, शरीर में आभूषणों के स्थान पर रंग बिरंगे पुष्पों का श्रृंगार करते हुए,'[७१] दिखाया है तो गौहरबानू के परिधान का वर्णन 'नीले रेशम की सलबार और प्याजी रंग की ओढ़नी, गले में गुलाबी रंग का दुपट्टा, पैर में जरी की जूतियाँ, मुख पर घूँघट'[७२] के रूप में कर उसको सौन्दर्यमयी दिखाया है।

संत तुलसीदास की पत्नी रत्ना के परिधानों का चित्रण करते समय डॉ० वर्मा ने उसके शरीर के आभूषणों को भी सौन्दर्य प्रदान किया है। 'नीले परिधान में उसका गौर वर्ण अत्यंत आकर्षक लग रहा है। माथे पर कस्तूरी बिन्दु, नेत्रों में अंजन और उल्लास की कांति, कानों में फूलों के झुमके, कटि में किंकिणी, पैरों में नूपुर और जावक'[७३] के द्वारा साधारण स्त्री के परिधान और आभूषण को दर्शाया है। यहाँ मोतियों की लड़ी नहीं है, सोने की आभा नहीं है पर सौन्दर्य मंडित हो रहा है।

साधारण स्त्री को जहाँ फूलों के आभूषण डॉ० वर्मा ने प्रदान किये हैं वहीं राजप्रसाद की महिलाओं को रत्नहार पहनाकर वर्माजी ने तत्कालीन वातावरण

को जीवन्त बनाया है। 'ध्रुवस्वामिनी के अंग–प्रत्यंग में सौन्दर्य दीपशिखा की भाँति ज्योतित हो रहा है। चीनांशुक से उनका गौर शरीर सुसज्जित है। मस्तक पर सर्पिल कुंकुम, रत्नहारों सहित शोभा के चक्रवात की भाँति वक्षस्थल। चरणों में नुपुर और जावक'[७४] तो 'अहिल्याबाई अत्यन्न भव्य वेष में हैं। चौड़े माथे पर कुंकुम की रेखा के नीचे बिन्दु, गले में मोतियों की माला, नीलेवस्त्र, कमर में पतली किंकिणी, पैरों में नूपुर और महावर की रेखा'[७५] के द्वारा परिधानों, आभूषणों से शोभायमान हो रही है।

इसी तरह 'महारानी कुसुमवती पींत अधोवस्त्र, लाल उंत्तरीय और गुलाबी रंग की कंचुकी धारण कर, नेत्रों में अंजन., होठों में अरुण राग, कानों में ताटंक, गले में मौतिक्य माल, कटि में किंकिणी, चरणों में नूपुर और मजीठ'[७६] जैसे परिधान और आभूषण धारण करती हैं। अकबर की पुत्री सफीयत को वर्माजी ने उसके रहन–सहन के अनुसार ही परिधानों, आभूषणों से सुशोभित दिखाया है। 'वह नीली रेशमी साड़ी और फूलों के आभूषण धारण किए हैं – 'माथे में अरुण बिंदी और सीमंत में मोतियों की रेखा; कटि में किंकिणी और पैरों में नूपुर'[७७] धारण कर सौम्यतापूर्ण सौन्दर्य का आभास करवाती है।

राजपरिवार की स्त्रियों की तरह ही वर्माजी ने राजपुरुषों को, सामन्त पुरुषों को अलग प्रकार के परिधानों और आभूषणों में चित्रित किया है। 'आबाजी सोनदेव को लाल रंग के अंगरखे और नीले रंग के चूड़ीदार पैजामा में दिखाया है। मराठी ढंग की पगड़ी जिस पर कलंगी लगी हुई है,'[७८] मराठा वेशभूषा को दर्शाता है। 'सम्राट अशोक अंशुक की कसी धोती पहनते हैं'[७९] तो 'समुद्रगुप्त श्वेत और पीत परिधान पहने, रत्न जटित शिरोभूषण धारण किये हैं, पुष्ट वक्ष स्थल पर रत्नों के हार'[८०] उनके राजसी परिवार के होने को सिद्ध करते हैं।

राजपुरुष और अन्य व्यक्तियों के परिधान में डा. वर्मा ने भेद कर

उनको वर्गीकृत किया है। 'सेनापति दुर्गादास ढीला कुरता, चुस्त पायजामा'[८१] धारण किये हैं तो 'एक सामन्त सिर पर पगड़ी शरीर पर अंगरखा और पैजामा'[८२] पहिने दिखाया गया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नाटकों—एकांकियों को रंगमंच के अनुरूप ढाला था। इसी खूबी के चलते वे पात्रों की वेशभूषा, संवाद योजना को प्रभावी बना सके। उनकी चित्रित वेशभूषा के कारण पात्र को देखते ही काल विशेष की जानकारी प्राप्त हो जाती है।

ऐतिहासिक पात्रों की वेशभूषा ऐतिहासिक कालखण्ड के अनुसार रही है तो सामाजिक पात्रों की वेशभूषा को वर्माजी ने सामान्य रूप से चित्रित किया है। जिसको देख कर पात्र की स्थिति ज्ञात होती है। नई उम्र की महिलाओं को साड़ी पहने दिखाया है। कोई 'आबेरवाँ की साड़ी और नीले रंग का ब्लाउज पहनता है'[८३] तो कोई 'स्त्री रेशमी साड़ी,'[८४] किसी को 'वायल की छपी सफेद साड़ी और सफेद काले चेक का ब्लाउज पहने'[८५] दिखाया गया है।

पात्रों की वेशभूषा को वर्माजी ने उम्र के अनुसार भी दिखा कर उनको जीवन्त बनाया है। पचास वर्ष के 'मुंशीजी को ढीला पाजामा, अचकन गोल टोपी'[८६] पहिने दर्शाया है तो सात वर्षीय गरीब बालक 'रामबोला को फटे कपड़े पहिने'[८७] दिखाया है वहीं सौम्य साधू को 'काषाय रंग का वस्त्र'[८८] धारण किये दिखाया है। आम—साधारण इंसान के अतिरिक्त किसी वैज्ञानिक अथवा प्रोफेसर को उसके व्यक्तित्व के अनुसार परिधान आरोपित किये गये हैं। डॉ० शेखर 'हल्के हरे रंग के सूट में हैं, टाई भी पहने हैं, वहीं उनका असिस्टेंट साधारण सूट पहने है।'[८९]

पात्रों के नयनाभिराम पहनावे, अवस्था के अनुसार चित्रित वेशभूषा के अतिरिक्त उसी रूप में उनके आभूषणों को दर्शाया गया है। 'कर्ण के कवच

और कुण्डल कर्ण के सौन्दर्य से आन्दोलित प्रतीत होते हैं।'[९४] डॉ० वर्मा ने स्थिति और देशकाल के अनुसार आभूषणों को पहने दिखाया है। महिलाओं में आम तौर पर सभी ऐतिहासिक पात्रों को गले में मोतियों की माला, कानों में कुण्डल, पैरों में नूपुर—जावर तथा कमर में किंकिणी पहने दिखाया है। इसके साथ ही पुरुषों को भी माला, मोतियों के बाले, जरीदार पगड़ी आदि पहने दिखाया गया है।

पात्र आभूषणों को अपनी सौन्दर्य क्षमता को बढ़ाने के लिए ही प्रयोग नहीं करते, देशकाल, वातावरण के अनुसार ये वस्तुएँ स्वत: उनके साथ जुड़ जातीं हैं। अँगूठी, गले में हार, जूते, चश्मा आदि को किसी न किसी रूप में अपने पात्रों में डॉ० वर्मा उभारते रहे हैं। इसी तरह मुद्रादि को भी देशकाल और वातावरण से जोड़ कर चित्रित किया है।

गुप्तकाल में चल रही मुद्रा 'पण'[९०] को लेन देन के रूप में दिखाया गया है तो मुगलकाल और आधुनिक काल में लेन देन के रूप में 'रुपया'[९१] दर्शाया गया है। इसके अतिरिक्त 'चाँदी की छत को उखाड़ कर उसके चाँदी के सिक्के ढलवाने'[९२] का तथा 'स्वर्ण मुद्राओं'[९३] का भी जिक्र वर्माजी ने अपने नाटकों—एकांकियों में किया है।

(घ) अस्त्र-शस्त्र और वाहनादि

डॉ० रामकुमार वर्मा का नाट्य—संसार ऐतिहासिकता से ओतप्रोत रहा है। चन्द्गुप्त, अशोक, कनिष्क, महाराणा प्रताप, मंगल पाण्डे, लक्ष्मीबाई, नाना फड़नवीस, दुर्गावती, अहिल्याबाई, वासवदत्ता, चारूमित्रा आदि ऐतिहासिक पात्रों को दिखाया गया है। इन पात्रों के दृश्य—विधान में प्रमुख रूप से तलवार, कटार, कृपाण आदि का बहुतायत रूप से प्रयोग हुआ है। कमरे की शोभा वर्णन के लिए डॉ० वर्मा ने इन अस्त्रों—शस्त्रों को चित्रित किया है तो कहीं ये व्यक्तियों की वेशभूषा के साथ शोभायमान हुए हैं। इसके अतिरिक्त कहीं युद्ध आदि जैसी

स्थिति दिखाने को भी इनका प्रयोग हुआ है अथवा सेना की ताकत को दर्शाने में अस्त्रों–शस्त्रों को प्रदर्शित किया गया है।

शिविर की दीवारों की शोभा को दिखाने में 'ढाल, तलवार, तीर और धनुष टँगे'[९५] दिखाये गये हैं तो 'युधिष्ठिर के हाथ में तलवार, भीम के हाथ में गदा और अर्जुन के हाथ में गाण्डीव धनुष है। दुर्योधन के हाथ में गदा है, दुःशासन के हाथ में त्रिशूल और विकर्ण के हाथ में तलवार है। आचार्य भीष्म के हाथ में छोटा राजदण्ड है और विदुर के हाथ में भाला'[९६] दर्शाकर दृश्य–विधान में देशकाल के अनुसार अस्त्र–शस्त्र की पूर्ति की गई है।

इसी तरह अस्त्र–शस्त्र को दर्शाने के साथ उनके बारे में एक पात्र अधिरथ द्वारा वर्माजी ने बताया भी है – ''अस्त्र–शस्त्र शिक्षा के लिए अभ्यास करना पड़ता है। फिर अनेक प्रकार के शस्त्र हैं : धनुष है, गदा है, तलवार है, शंकु है, परिध है – हर एक शस्त्र चलाने की विधियाँ हैं। फिर अस्त्र हैं वायवयास्त्र, आग्नेयास्त्र, वरुणास्त्र उनके तरह–तरह–तरह के मंत्र हैं।'[९७]

डॉ० रामकुमार वर्मा ने ऐतिहासिक पात्रों के साथ तलवारों का अधिकाधिक चित्रण दिखाया है। यह वर्माजी की दृश्य–योजना नहीं अपितु देश–काल के अनुसार दर्शायी गई योजना है। 'कहीं तलवारों से युद्ध होता'[९८] दिखाया गया है तो 'चित्तौड़ में किसी को तलवार से डर नहीं लगने'[९९] की बात कही गई है। एक ओर 'हाथ में तलवार थामे रक्षक सेनापति दुर्गादास हैं'[१००] तो दूसरी ओर 'तलवार से राजकुमार उदय सिंह का वध करने को आतुर विश्वासघाती बनवीर'[१०१] है, दोनों ओर तलवारों की ताकत है पर उद्देश्य अलग–अलग हैं।

अस्त्रों–शस्त्रों के माध्यम से वर्माजी ने पात्रों की शक्ति, शौर्य को भी दर्शाया है। 'शिवाजी की पीठ में अफ़जल द्वारा खंजर भोंकने की कोशिश पर शिवाजी द्वारा बधनखे से उसका पेट फाड़ देना'[१०२] शिवाजी के साहस का सौन्दर्य

है न कि खंजर अथवा बघनख का। तलवार से आकार में कहीं छोटी 'कटार से चन्द पृथ्वीराज चौहान के सामने आत्महत्या की कोशिश करता है,'[१०३] तो 'पन्ना धाय बनवीर के ऊपर कटार से वार कर उदयसिंह को बचाने का असफल प्रयास करती है।'[१०४]

इन अस्त्रों के अतिरिक्त 'धनुषबाण'[१०५] 'छुरी'[१०६] 'त्रिशूल'[१०७] 'बरछा'[१०८] 'कृपाण'[१०९] 'भाला'[११०] आदि से अस्त्रों की विविधता को दर्शाया गया है। इन सब अस्त्रों—शस्त्रों के साथ—साथ वर्माजी ने देशकाल परिस्थितियों के अनुसार बन्दूक, पिस्तौल, मशीनगन और तोपों को भी दर्शाया है ।

'माण्डवगढ़ किले के आसपास बन्दूकों की आवाज'[१११] या 'बांग्लादेश युद्ध के समय सैनिकों द्वारा बन्दूकों का प्रयोग'[११२] अथवा 'बैरकपुर छावनी के सैनिकों का बन्दूक लेकर खड़ा होना'[११३] सभी को परिस्थितियों के अनुसार ही दर्शाया है। ये किसी भी प्रकार से सौन्दर्य की पूर्ति नहीं करते हैं।

'अंग्रेज अफसर द्वारा मंगलपाण्डे पर पिस्तौल से हमला'[११४] या फिर 'पुलिस इन्सपेक्टर के हाथ में पिस्तौल'[११५] रही हो वह स्थिति को जीवन्त बनाने के लिए ही है। मोर्चे पर 'चीनियों के ऊपर मशीनगन और हथगोले की मार'[११६] को दर्शाया गया है तो 'तोपें'[११७] सेना के बेडे में दिखाई गई हैं। ये सभी कुछ सांकेतिक ही चित्रित हुई हैं। इनमें किसी तरह की सौन्दर्याभूति नहीं हो सकी है। बन्दूक, तलवार, धनुष, कटार, पिस्तौल ऐतिहासिक वीर पात्रों द्वारा प्रयोग करते दिखाये गये हैं वहीं एक मामूली गुण्डे के हाथों 'डण्डे को हथियार रूप में'[११८] दर्शाया गया है।

रंगमंच पर अभिनीत नाटकों में किसी ऐसे दृश्य की कल्पनासंभव नहीं हो सकती जो मंच पर प्रस्तुत न की जा सके। वर्माजी हमेशा से नाटकों को रंगमंच की, अभिनय की सुविधा की दृष्टि से लिखते थे। इसी कारण से वे किसी

भी ऐसे दृश्य को चित्रित नहीं करते थे जो मंच पर साकार न हो सके। उनके नाटकों, एकांकियों में अस्त्र–शस्त्र का प्रयोग तो पात्रों द्वारा दिखाया गया है पर वाहनों का प्रयोग मंचीय दृष्टि सें नहीं किया गया है। हाथी, घोड़ों का प्रयोग हुआ है पर दृश्य–निर्माण हेतु। इसी प्रकार 'रथ'[११९] का तथा 'पोत'[१२०] का चित्रण दृश्य–विधान को पूरा करने में किया गया है।

वर्माजी ने अस्त्रों–शस्त्रों का प्रयोग अधिकाधिक किया है। रथ, हाथी, घोड़ों, बन्दूक, तलवार, कृपाण, कटार, धनुष आदि को दर्शाया है पर किसी भी अस्त्र–शस्त्र, वाहन में सौन्दर्य आभासित नहीं हो सका है। ये सारी वस्तुएँ दृश्यों का निर्माण तो करतीं दिखतीं हैं पर सौन्दर्य उत्पन्न नहीं करतीं। वर्माजी के नाट्य–विधान को प्रमुखता देने के कारण इन वस्तुओं का सौन्दर्य प्रकट नहीं हो सका। ये सभी दृश्यों का निर्माण करते सांकेतिक रूप में ही नजर आये हैं।

(व) अन्य वस्तुएँ

भवन, मूर्ति, परकोटे, अस्त्र–शस्त्र, परिधान, आभूषण, वाहन, पात्र, पर्यक, उपस्कर आदि की परिभाषा से बाहर की कुछ वस्तुओं का चित्रण वर्माजी ने अपने नाट्य संसार में किया है। इन वस्तुओं को दृश्य पूर्ति हेतु अथवा पात्रों के व्यक्तित्व अथवा रंगमंच की स्थिति के लिए दर्शाया गया है। ये वस्तुएँ किसी भी स्थिति में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति नहीं करतीं हैं। 'रेशमी टाई, चाय की केतली, सिगरेट'[१२१] का चित्रण हो अथवा 'टाइपराइटर, काउच, फोन, कलम'[१२२] का चित्र, ये मात्र दृश्य–विधान के लिए ही सामने आते हैं। सरजा शिवाजी नाटक में 'पलंग, तकिया, चादर, गद्दा'[१२३] भी दृश्य–पूर्ति करते हैं न कि सौन्दर्यनुभूति कराते हैं।

इसके अतिरिक्त वर्माजी ने रोजमर्रा के इस्तेमाल में आने वाली वस्तुओं को भी कथा प्रवाह और दृश्य प्रवाह के लिए प्रयोग किया है। उनका

उद्देश्य किसी भी प्रकार से सौन्दर्य की वृद्धि या अनुभूति कराना नहीं रहा है। ऐसी वस्तुओं में 'तख्त'[१२४] 'शीशे'[१२५] 'चटाई, लालटेन, माचिस'[१२६] 'घड़ी'[१२७] 'ट्रॉजिस्टर'[१२८] 'हुक्का'[१२९] 'हँसिया, हथौड़ा, ट्रांसमीटर'[१३०] को दर्शाया गया है। बदमाशों को बाँधने को 'हथकड़ी—बेड़ी'[१३१] की चर्चा की गई है तो 'बच्चे को सुलाने का पालना'[१३२] भी दर्शाया गया है।

ये सारी वस्तुएँ अपनी उपस्थिति, दृश्यों की तारतम्यता बिठाने में ही चित्रित हुई हैं। ये न तो किसी भी विवरण से और न ही किसी सौन्दर्य से आभासित हैं। सारी वस्तुएँ या तो पात्रों की वेशभूषा, क्रिया—कलापों के मध्य उपस्थित हुई हैं अथवा दृश्यों के मध्य सामंजस्य बिठाने में उपयोगी सिद्ध हुई हैं अथवा विधान की पूर्ति करती दिखाई पड़ी हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि वर्माजी की दृष्टि नाटकों में तथ्यों की ऐतिहासिकता के प्रकटन में रही है, साथ ही वे नाटकों को मंचीय प्रस्तुति के अनुसार बनाने को प्रमुखता देते हैं। उनकी दृष्टि और सोच में किसी और स्थिति के लिए अवकाश ही नहीं था। वे नाट्य—संसार के द्वारा भारतीय संस्कृति, ऐतिहासिकता को जीवन्त करते दिखे हैं और इसमें जो वस्तु सहायक लगी उसे अपने नाटकों—एकांकियों में दर्शाकर प्रस्तुत कर सके हैं। इसमें सौन्दर्यात्मकता को आभासित करने की ओर वर्माजी का ध्यान नहीं गया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने नाटकों को पठन—पाठन के लिए नहीं रंगमंच के लिए स्वीकारा है तभी वे उसको मंचीय सुविधा के अनुसार रचते हैं। इसी दृष्टि के कारण वर्माजी ने नाटकों की कथा को क़िस्सा—कहानी के रूप में नहीं आने दिया। वस्तुगत सौन्दर्य में जो सौन्दर्य स्वयं निखर कर सामने आया है, वही आभासित हुआ है। इसमें परिधान, आभूषण को गिना जा सकता है अन्यथा वर्माजी ने सौन्दर्य उद्घाटन हेतु स्वयं कोई प्रयास नहीं किया है। डॉ० रामकुमार

वर्मा वस्तुओं को दृश्य—पूर्ति के सौन्दर्य में चित्रित करते रहे न कि स्वयं को वस्तुओं के सौन्दर्य को सामने लाने में लगाते रहे। वर्माजी की यही सधी दृष्टि उनके नाटकों—एकांकियों को नाट्य—साहित्य में विशेष स्थान प्रदान करती है।

सन्दर्भ सूची

१. डॉ० रामकुमार वर्मा की साहित्य साधना – डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, पृ० १४०

२. कीचड़ और कमल – वृन्दावन लाल वर्मा, पृ० २९९

३. शिवाजी – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २९

४. जौहर की ज्योति – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३१४

५. नाना फड़नवीस – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ५०५ एवं

पानीपत की हार (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३५९

६. जय वर्धमान – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७२

७. चारुमित्रा (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ९

८. उदयन (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २२४ एवं

कला और कृपाण – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २६८

९. महाराणा प्रताप – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४४२

१०. कौमुदी–महोत्सव – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२२

११. समुद्रगुप्त पराक्रमांक (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ११

१२. सारंग स्वर – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १९

१३. वहीं, पृ० १९

१४. जय भारत – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४४३

१५. जय वर्धमान – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३६६

१६. कुन्ती का परिताप – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३४८

१७. वही, पृ० ३४३

१८. कर्मवीर – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४१४

१९. अग्निशिखा – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ११०

२०. वही, पृ० १७१

२१. वही, पृ० १७१

२२. कर्मवीर — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४१४

२३. रेशमी टाई (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १४

२४. पुरस्कार (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५६

२५. वही, पृ० २५६

२६. कैलेन्डर का आखिरी पन्ना (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२

२७. शहनाई की शर्त (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १८३

२८. एक्ट्रेस (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २०१

२९. एक पत्र (छोटी सी बात) (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ५७

३०. हीरे के झुमके (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ९६

३१. आँखों का आकाश (एकांकी) — डॉ० राम कुमार वर्मा, पृ० १६६

३२. चन्द्रलोक (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १५९

३३. अन्धकार (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७३

३४. समुद्रगुप्त पराक्रमांक (एकांकी) — डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ९

३५. कवि पतंग (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २१

३६. मालव कुमार भोज — डॉ० रामकुमार वर्मा, ३२०

३७. देवीश्री अहिल्याबाई — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १०२

३८. सोने के भगवान (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३३२

३९. जय भारत — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४६१

४०. संत तुलसीदास — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २८५

४१. शिकायत (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४००

४२. एक पत्र (छोटी सी बात) (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ५७

४३. हीरे के झुमके (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ९६ एवं

महाराणा प्रताप — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३५०

४४. हीरे के झुमके (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ९६

४५. तैमूर की हार (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२१

४६. जय भारत — डॉ० राम कुमार वर्मा, पृ० ४३१

४७. वही, पृ० ४७१

४८. वही, पृ० ४४३

४९. ध्रुवतारिका (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३६१

५०. शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २९

५१. वही, पृ० २९

५२. महाराणा प्रताप — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४४२

५३. शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ६५ एवं

ध्रुवतारिका (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३६१

५४. विजय—पर्व — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १३८

५५. समुद्रगुप्त पराक्रमांक — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४०

५६. विजय—पर्व — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६३

जय भारत — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४६५ एवं

सोन का वरदान (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२८

५७. जय बांगला — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२८

५८. सरजा शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३८१ एवं

सरजा शिवाजी (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४१७

५९. देवीश्री अहिल्याबाई — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १३२/१४७

६०. जय भारत — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४३०

६१. औरंगजेब की आखिरी रात (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२०

६२. वही, पृ० ३२१

६३. एक बूँद दूध (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५६

६४. वही, पृ० २५६

६५. एक कमण्डल जल (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३१०

६६. पुरस्कार (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५६

६७. रेशमी टाई (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १४

आशीर्वाद (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३४२

रजनी की रात (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२ एवं

हीरे के झुमके (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६

६८. शहनाई की शर्त (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ११५

सही रास्ता (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४० एवं

रूप की बीमारी (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १८०

६९. रजनी की रात (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२

७०. अन्नपूर्णा का भोजन (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४६ एवं

कवि पतंग (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २१.

७१. शिवाजी – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३३

७२. वही, पृ० ४६.

७३. संत तुलसीदास – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५२

७४. समुद्रगुप्त पराक्रमांक – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२

७५. देवीश्री अहिल्याबाई – डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ० १०९.

७६. मालव कुमार भोज – डॉ० रामकुमार वर्मा पृ० ३२०

७७. ध्रुवतारिका (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३६१

७८. शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३९

७९. विजय—पर्व — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७१

८०. समुद्रगुप्त पराक्रमांक (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ७

८१. ध्रुवतारिका (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७५

८२. महाराणा प्रताप — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४४२

८३. आँखों का आकाश (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६६

८४. पुरस्कार (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५६ एवं

एक्ट्रेस (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २०१

८५. शिकायत (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४००

८६. हीरे के झुमके (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६

८७. संत तुलसीदास — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४१

८८. वही, पृ० २४१

८९. कौतुक (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २२४

९०. कौमुदी महोत्सव — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२३ एवं

अग्निशिखा (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७६

९१. महाराणा प्रताप — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४६३ एवं

अनुशासन—पर्व — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५१

९२. नाना फड़नवीस — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ५०६

९३. समुद्रगुप्त पराक्रमांक (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १०

९४. कर्मवीर — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४२५

९५. शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २९

९६. कर्मवीर — डॉ० रामकुमार वर्मा पृ० ४२०

९७. वही, पृ० ४०९

९८. देश की मर्यादा (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २०७

९९. दीपदान (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ७५

१००. रंगीन स्वप्न (गुदगुदी) (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १००

१०१. दीपदान (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ९२

१०२. सरजा शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३८६

१०३. पृथ्वीराज की आँखें (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२३

१०४. दीपदान (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४३

१०५. सारंग—स्वर — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४३,

जय आदित्य — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३६५ एवं

उदयन (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २३३

१०६. ध्रुवतारिका (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७५ एवं

दस मिनट (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४३८

१०७. मालव कुमार भोज — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३११

१०८. देश की मर्यादा (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २०७

१०९. विजय—पर्व — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६३/१७१ एवं

संदेह की निवृत्ति (सिंदूर की रेखा) (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २५९

११०. देश की मर्यादा (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २०

१११. सारंग—स्वर — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २०

११२. जय बांगला — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १३२

११३. जय भारत — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४३७

११४. वही, पृ० ४४१

११५. दस मिनट (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४३९

११६. कैलेण्डर का आखिरी पन्ना (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १००

११७. जय भारत – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४६४

११८. साँप (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ६५

११९. कर्मवीर – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४०९ एवं

वासवदत्ता (एकांकी) – डॉ० रामंकुमार वर्मा, पृ० १५

१२०. उदयन (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २३२

१२१. रेशमी टाई (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ६३, ६५

१२२. परीक्षा (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २७६, २७७

१२३. सरजा शिवाजी – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७९

१२४. सारंग–स्वर – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २०,

एक हजार रुपया (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ५८ एवं

आशीर्वाद (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३३६

१२५. सारंग–स्वर – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३१

१२६. जय बांगला – डॉ० रामकुमार वर्मा पृ० १२७

१२७. पृथ्वी का स्वर्ग – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ६७ एवं

फैल्ट हैट (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२६

१२८. साँप (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ६५

१२९. एक हजार रुपया (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ५८

१३०. चन्द्रलोक (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६४

१३१. जय भारत – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४४१

१३२. गन्नू की माँ (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३५६

षष्ठ अध्याय

अभिव्यंजनात्मक सौन्दर्य

(क) भाषा-शैली

(ख) शब्द शक्ति और शब्द भण्डार

(ग) गुण

(घ) रीति

(च) वक्रोक्ति

(छ) अलंकार

(ज) औचित्य

(झ) ध्वनि

षष्ठ अध्याय

अभिव्यंजनात्मक लालित्य

कला के क्षेत्र में अभिव्यंजनात्मक लालित्य के द्वारा कलाकार की आन्तरिक भावना को मूर्त रूप प्राप्त होता है। कला में जड़ से चेतन तक समस्त बौद्धिक अनुभूतियों का चित्रण आवश्यक होता है। किसी कला की सफलता का आधार उसकी अभिव्यंजनात्मक प्रस्तुति भी कही जा सकती है। कलाकार की सफलता भी उसके द्वारा चित्रित किये गये मानवीय गुणों, भावनाओं और अनुभूतियों आदि की कुशलता पर निर्भर करती है। अभिव्यंजनात्मक लालित्य द्वारा कला के सौन्दर्य को सँवारा जा सकता है। इसके अन्तर्गत कला मानवीय भावनाओं का व्यक्त करने का साधन है।[१]

मनुष्य एक संवेदनशील प्राणी है, जीवन से सम्बन्धित घटनायें उसके मन—मस्तिष्क को झंकृत करतीं हैं। यही झंकार मानव के भीतर मनोभावों को जाग्रत करती है और यही भावनात्मक अनुभूति उसके भीतर एक आकुलता पैदा करती है। मनुष्य को अपनी व्यांकुलता, चंचल चित्त की अनुभूतियों को प्रदर्शित करने, अपने भावों को साकार करने के लिए भौतिक साधनों का सहारा लेना पड़ता है। इन्हीं भौतिक सहारों के द्वारा मनुष्य मूर्त रूप प्रदान कर आत्मिक संतुष्टि प्राप्त करता है और कलात्मक सौन्दर्य को प्रस्तुत करता है। उसके द्वारा आत्मिक संतुष्टि के लिए किये जा रहे कार्यों से सफल कलाकृति का सृजन होता है, उसमें सौन्दर्य का परिपाक होता है। कलाकार द्वारा निर्मित कला में अभिव्यक्त सौन्दर्य सफल अभिव्यंजना पर निर्भर करता है। यह अभिव्यंजनात्मक लालित्य प्रतिभा सम्पन्न कलाकार द्वारा ही संभव होता है।

डॉ० वर्मा ने ऐतिहासिक तथ्यों में कल्पना और सत्यता का समावेश कर ऐतिहासिक तथ्यों को एक दिशा दी है और उन्हें बोझिलता से हटा कर

सरलता, सरसता प्रदान की है। भाषा शैली, शब्दों, अलंकारों आदि के द्वारा वर्माजी ने ऐतिहासिक दुरूहता और बोझिलता को कम करके अपनी अभिव्यंजनात्मक क्षमता को भी दर्शाया है। कहा गया है कि 'जो कलाकार भावनाओं को उत्कृष्टता के आवेग से जितना आकुल होता है उसकी अभिव्यंजना भी उतनी ही उत्कृष्ट कोटि की होती है, वही सच्चा कलाकार है।'[२]

डॉ० वर्मा के अंदर भी अपनी भावाभिव्यक्ति के प्रति आकुलता व्याप्त थी। देश के इतिहास को, सच्चे इतिहास को पाठकों के सामने लाने की तीव्र भावना ने उन्हें ऐतिहासिक नाट्य लेखकों की श्रेणी में ला खड़ा किया। उनकी इसी आकुलता का परिचय उनके सफल नाटकों एवं एकांकियों में मिलता है। यहाँ डॉ० वर्मा की इसी आकुलता का अभिव्यंजनात्मक लालित्य का प्रस्तुतीकरण करने का प्रयास निम्न रूप में किया गया है।

(क) भाषा शैली

(ख) शब्द—शक्ति और शब्द भण्डार

(ग) गुण

(घ) रीति

(च) वक्रोक्ति

(छ) अलंकार

(ज) औचित्य

(झ) ध्वनि

(क) भाषा-शैली

भाषा शैली साहित्य की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। लेखक भाषा के कौशल, उसके लालित्य से अपने साहित्य को सजाता सँवारता है। वर्माजी ने नाटकों को रंगमंच विधान के अनुसार लिखा है। इसके साथ—साथ

वर्माजी के ज्यादातर नाटक अथवा एकांकी ऐतिहासिक घटनाओं अथवा पात्रों को लेकर रचित हैं। इस कारण से इन एकांकियों अथवा नाटकों की भाषा उसी देशकाल के अनुसार बनाई गई है।

हिन्दूकालीन, मुस्लिमकालीन, अंग्रेजकालीन नाटकों की भाषा शैली पात्रों की भाषा, बोली के अनुरूप ही रखी गई है। इसमें संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग होने से भाषा का लालित्य उभर कर सामने आया है। 'शिवाजी' 'कौमुदी महोत्सव, 'कला और कृपाण', 'समुद्रगुप्त पराक्रमांक, 'कुन्ती का परिताप' आदि नाटकों और 'दीपदान', 'राज्यश्री', 'कृपाण की धार', 'अभिषेक पर्व', 'दुर्गावती', 'पृथ्वीराज की आँखें', 'वासवदत्ता', 'चारूमित्रा' आदि एकांकियों में साहित्यिक, संस्कृतनिष्ठ लालित्यपूर्ण भाषा का प्रयोग वर्माजी द्वारा किया गया है। इस प्रकार के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं –

'और जब मैं वीणा पर गीत गाती हूँ तो चन्द्रकला की किरणों में मेरी वीणा के तार संगीत–धारा के गूँजते हुए निर्झर जैसे मालूम पड़ते हैं।'[३]

'महामंत्री, चन्द्रगुप्त ने कुसुमों की क्यारियों में नहीं, समरांगण में अपने जीवन का वैभव देखा है, उसने नूपुरों की झंकार में नहीं, तलवारों की झंकार में अपने जीवन का संगीत गाया है।'[४]

'कितनी सुन्दर चाँदनी है! लूनी नदी की धारा पर यह चाँदनी ऐसी बिखर रही है जैसे हमारे–तुम्हारे जीवन पर प्रेम ज्योति बरस रही हैं।'[५]

'महादेवी! शताधिक तारे एक साथ उदित होकर रात को प्रकाशित नहीं करते। एकमात्र चन्द्र ही रजनी के सीमांत में प्रकाश की रेखा भरता है।'[६]

'प्रभु! राज्य कोष में स्वर्ण और रत्नों का प्रकाश है! अमावस की रात्रि में तारों की जो शोभा है उससे भी अधिक कोशल के कोष की शोभा है।'[७]

'देवि! आरोग्य दृष्टि से देखो! जल पर जब किरण पड़ती है तो

जल भी रजत रूप धारण करता है, उसी भाँति इस शरीर पर जब यौवन की किरण पड़ती है तो शरीर में कांति उत्पन्न हो जाती है।'[८]

रामकुमार वर्मा ने ऐतिहासिकता को लेकर ज्यादातर नाटकों, एकांकियों की रचना की और उनमें देशकाल, परिस्थिति के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है। पाकिस्तान—बंगला देश की पृष्ठभूमि पर रचा नाटक 'जय बांगला' में वर्माजी ने पात्रों के देशकाल के अनुसार ही संवादों की रचना की है। सैनिकों के जुल्म बढ़ रहे हैं, उनकी गाली गलौज और ज्यादती के संवाद हैं तो लोगों के परेशानी भरे भाव — 'अब गोलियों की आवाज बंद हो गई हैं, लगता है फौज के सिपाही दूसरी तरफ चले गये हैं। वहाँ भी वो आग लगाएंगे'[९] अथवा 'देखता हूँ कैसे दरवाजा नहीं खोलती शैतान की बच्ची!'[१०]

रामकुमार वर्मा ने भाषा के प्रयोग में सामान्य बोलचाल की भाषा और क्षेत्र से सम्बन्धित भाषा को भी अपने संवादों में दर्शाया है। बलूचिस्तान के पठान की संवाद अदायगी का एक उदाहरण — 'ओ, बारत तो गांदी का देश ऐ! ओ तो अइंसा— अइंसा, सतियाग्रै की बात कैता ऐ। ओ ए कबी नई कर सकता। पर आमको बारत में नई लाया।'[११]

इसी प्रकार वैज्ञानिक, प्रोफेसर आदि शिक्षित लोगों की संवाद—अदायगी में डॉ० वर्मा ने अंग्रेजी शब्दों का भी सहारा लिया है — 'यह फैंकलिन इन्स्टीट्यूट वाशिंगटन का सेक्रेटरी का है। डियर प्रोफेसर रुद्र, यूअर रिसर्चेज आर आव् वर्ल्ड वैल्यू। दि इन्स्टीट्यूट हैज रिकमैंडडेड यूअर नेम फार इट्स फैलोशिप।'[१२]

वैज्ञानिक एकांकी 'चन्द्रलोक' की रचना में वर्माजी ने संवादों में वैज्ञानिक शब्दावली को लालित्यपूर्ण ढंग से पिरोया है — 'अंतरिक्ष में बिछी हुई कॉस्मिक किरणों जिस वेग से आकाश का कण—कण भेदती हैं, उनसे कौन जीवित रह सकता है?'[१३]

'डॉ० दिलीप कहते थे कि गणित और ज्यामिति के सहारें सारा कक्ष ऐसे चुम्बकीय क्षेत्र में सँवारा गया है कि कक्ष के मध्य में इस यंत्र का कोई भी बटन दबा दीजिए, मनचाहे नक्षत्र की किरण इस कक्ष में आ जाती है।'[१४]

रामकुमार वर्मा जी ने अपने एकांकियों और नाटकों में अपनी संवाद—योजना के द्वारा भावों का, भाषा का, चित्रात्मकता का सौन्दर्य पाठकों के समक्ष उकेरा है। पाठक उनके नाटकों, एकांकियों को पढ़कर और दर्शक उनके नाटकों, एकांकियों को रंगमंच पर देखकर अभिभूत होता रहता है। संवाद अदायगी में संप्रेषणता के कारण वे पाठकों और दर्शकों के मन पर सीधे प्रभाव डालते हैं। चित्रात्मकता बनाने में तो जैसे वर्माजी को महारथ हासिल थी।

घर में सास— बहू की रोजमर्रा की कलह का चित्र संवाद रूप में बड़ा ही प्रभावोत्पादक लगता है —

''माँ! माँ को तुम भी मारो! मारो तुम भी! बहू ने तो मारना शुरू ही कर दिया। तुम भी मारो ! हाय राम, मैं मर भी नहीं गई! बहू, एक झाडू और लगा दे, यह पड़ी है! एक और —हाय, मेरे नसीब में ....।''[१५]

इसी प्रकार पूरब की बोली में पात्रों की संवाद—अदायगी —

——'.....कस्तूरी......कस्तूरी ....तू केहर हिराय गई रही री।

——.......कस्तूरी हम तोहं का खोज—खोजत हलकान होय गयेनरी, अब जाय के हियन मिली। सगर मेला हेर डारेन, कस्तूरी।

—— चाची बुआ, उसका तुम जियाय लिहिन नहीं त हम त गंगा जी मां डूबै जात रहे। हमहू तुम का खोजत—खोजत हैरान होइ गए रहे।'[१६]

ऐसे अनेक उदाहरण वर्माजी के नाट्य—संसार में जगह—जगह पर निखर कर समाने आये हैं। अपनी चमत्कृत करने वाली शैली और प्रभावोत्पादक लेखन क्षमता को समय के साथ—साथ वर्माजी ने इसका और भी परिमार्जित रूप

प्रस्तुत किया है। भाषा की तरह शैली की सहजता से घटनाओं, पात्रों का चित्रण आसानी से विकास पाता गया है।

नि:संदेह वर्माजी की भाषा–शैली के सौन्दर्य ने उनके नाट्य–संसार को विशेष रूप से ऐतिहासिक नाटकों–एकांकियों को बोझिल और क्लिष्ट नहीं होने दिया है। यही वर्माजी की भाषा शैली की उत्कृष्टता को सिद्ध करता है।

(ख) शब्द शक्ति और शब्द भण्डार

शब्द और अर्थ का शाश्वत सम्बन्ध है। 'गोस्वामी तुलसीदास ने शब्द एवं अर्थ को जल–वीचि के समान अभिन्न बताया है।'[१७] शब्द की शक्ति असीम होती है। शब्द का उच्चारण होते ही वह हमारे मन, कल्पना और अनुभूति पर प्रभाव डालता है। यह प्रभाव अर्थगत होता है। 'गुलाब' शब्द का उच्चारण होते ही मन में प्रसन्नता का भाव उत्पन्न होता है, वहीं साँप कहने से मन में भय का संचार होने लगता है। अत: जिस शक्ति के द्वारा शब्द का यह अर्थगत प्रभाव पड़ता है, वही शब्द शक्ति कहलाती है। शब्द का अर्थ बोध कराने वाली शक्ति ही शब्द शक्ति है। यह एक प्रकार का शब्द और अर्थ का सम्बन्ध ही व्यक्त करती है, शब्द में अंतर्निहित शक्ति या व्यापार की अभिव्यक्ति करती है।

अर्थ का अभिव्यक्ति में शब्द मूल उपादान है जिनसे अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। इन्हें शक्ति, व्यापार एवं वृत्ति तीन नामों से पुकारा जाता है। 'आचार्य मम्मट ने इन्हें व्यापार कहा तो कविराज विश्वनाथ ने शक्ति। मीमांसक लोग वृत्ति नाम से अभिहित करते हैं। आजकल इन्हें शब्द शक्ति ही कहा जाता है।'[१८] शब्द शक्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं। अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। इनके सम्बन्ध से तीन प्रकार के शब्द होते हैं – वाचक, लक्षक और व्यंजक तथा तीन प्रकार के अर्थ होते हैं – वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ।'[१९] कहने का तात्पर्य है कि अभिधा शक्ति जिस शब्द से अर्थ बोध कराती है वह शब्द वाचक

कहलाता है और उससे अभिव्यक्त अर्थ वाच्यार्थ कहलाता है। ठीक यही सम्बन्ध लक्षणा और व्यंजना शक्ति में होता है। संक्षेप में इसे निम्न प्रकार समझाया जा सकता है —

शब्दशक्ति	**शब्द**	**अर्थ**
अभिधा	वाचक	वाच्यार्थ
लक्षणा	लाक्षणिक	लक्ष्यार्थ
व्यंजना	व्यंजक	व्यंग्यार्थ

१. अभिधा शक्ति

यह वह शब्द शक्ति या शब्द व्यापार है जिसमें साक्षात् सांकेतिक या मुख्य अर्थ का बोध होता है। मुख्य या प्रथम अर्थ का बोध कराने के कारण इसे मुख्य या अग्रिम भी कहते हैं। अभिधा द्वारा जिन शब्दों की अर्थव्यक्ति होती है, वे तीन प्रकार के माने गये हैं — रूढ़, यौगिक एवं योगरूढ़।

रूढ़

ये वे शब्द होते हैं जिनकी व्युत्पत्ति नहीं हो पाती जैसे — गढ़, घर, तरु, घोड़ा आदि।

यौगिक

ये वे शब्द होते हैं जिनकी व्युत्पत्ति हो सकती है अर्थात प्रकृति और प्रत्यय के योग से निर्मित शब्द यौगिक कहलाते हैं— उमेश, दिवाकर आदि।

योगरूढ़

ये शब्द होते हैं जो यौगिक होते हैं परन्तु अर्थ की दृष्टि से रूढ़ होते हैं अर्थात प्रकृति और प्रत्यय का अलग—अलग अर्थ तो निकलता है पर उससे शब्द का वास्तविक अर्थ न निकलकर एक विशिष्ट अर्थ निकलता है — पंकज, चन्द्रमौलि, चक्रधर आदि।

अभिधा का महत्व द्विविधि है: प्रथम, लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति के लिए मुख्यार्थ का होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। इसके महत्व को अस्वीकारना भूल ही होगी। व्यंग्यार्थ का इच्छुक व्यक्ति भी वाच्यार्थ की ओर इसलिए उन्मुख होता है क्योंकि यह व्यंग्यार्थ का साधन है। आनन्दवर्धन का मानना है – 'जैसे प्रकाश चाहने वाला व्यक्ति पहले दीपशिखा को ही अपनाता है, वैसे ही रमणीय व्यंग्यार्थ के प्रति आदरवान कवि को भी वाच्यार्थ को ही ग्रहण करना आवश्यक है।'[२०] द्वितीय वाच्यार्थ में सौन्दर्य का नितांत अभाव भी नहीं माना जा सकता है। स्वभाव–चित्रण कल्पना–विधान, पद–लालित्य आदि के कारण काव्य में अभिधा से ही रमणीयता का संचार होने लगता है। अभिधा ही मुख्य शक्ति है। हिन्दी के प्रसिद्ध आचार्य कवि देव का भी कथन है –

'अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणाहीन।
अधम व्यंजनारस विरस, उलटी कहत नवीन।।'[२१]

२. लक्षणा शक्ति

मुख्यार्थ अथवा वाच्यार्थ में बाधा होने पर रूढ़ि का प्रयोजन के कारण, जिस शक्ति द्वारा मुख्यार्थ से सम्बन्धित अन्य अर्थ – लक्ष्यार्थ–ग्रहण किया जाता है, उसे लक्षणा शक्ति कहा जाता है।

लक्षण से सम्बन्धित तीन बातें हैं 'मुख्यार्थ या वाच्यार्थ की बाधा, रूढ़ि और प्रयोजन का होना, इससे सम्बन्धित अर्थ'[२२] अर्थात् किसी वाक्य द्वारा उसके प्रयोजन से अन्य अर्थ निकले, मुख्य अर्थ बाधित हो –वह पूरा ऊँट है– के द्वारा मुख्यार्थ बाधित है। व्यक्ति के लम्बे होने के कारण ऊँट कहा जाता है। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण वर्माजी ने नाट्य–साहित्य में प्रदर्शित किये हैं।

रूढ़ि और प्रयोजन के आधार पर लक्षणा के दो भेद किये गये हैं—

(अ) रूढ़ि, रूढ़िमती अथवा रूढ़िमूला

(ब) प्रयोजनवती अथवा प्रयोजनमूला

(अ) रूढ़ि लक्षणा

मुख्यार्थ को छोड़कर रूढ़ि अथवा प्रयोजन के कारण अन्य अर्थ ग्रहण किया जाये। वहाँ रूढ़िमती लक्षणा होती है।

'मुँह में ताला लगाओ' में मुख्यार्थ बाध है और चुप रहने का अर्थ प्रकट होता है।

(ब) प्रयोजनवती लक्षणा

जहाँ मुख्यार्थ में बाध होने पर, लक्ष्यार्थ ग्रहण करने पर कोई प्रयोजन निहित रहता है, वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होती है। यह दो प्रकार की होती है —

(१) गौणी (२) शुद्धा

३. व्यंजना-शक्ति

यह शब्द की तृतीय शक्ति है। व्यंजना का शब्दार्थ होता है विशेष रूप से स्पष्ट करना, खोलना या विकसित करना। जब अभिधा एवं लक्षणा किसी अर्थ को अभिव्यक्त करने में असमर्थ रहतीं हैं तो उस अर्थ की अभिव्यक्ति व्यंजना द्वारा ही होती है। 'शब्द और अर्थ दोनों का ही व्यापार व्यंजना में रहता है, इस कारण व्यंजना शक्ति के दो भेद किये गये हैं — शाब्दी व्यंजना, आर्थी व्यंजना।'[२३]

(अ) शाब्दी व्यंजना

यदि शब्द विशेष के स्थान पर उसका अन्य कोई पर्याय रख दिया जाये तो शब्दालंकार का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, इसी तरह शाब्दी व्यंजना भी शब्द पर निर्भर करती है और उस शब्द का स्थानान्तरण अन्य पर्याय रख देने

से वह समाप्त हो जाती है। यह भी दो प्रकार की होती है— अभिधामूला शाब्दी व्यंजना, लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना।

(ब) आर्थी व्यंजना

जहाँ व्यंजना शब्द पर आश्रित न होकर अर्थ पर आश्रित रहती है वहाँ आर्थी व्यंजना होती है। इसमें व्यंग्य आर्थ का होता है, शाब्द का नहीं, इसकी शब्द शक्ति वक्ता, बोद्धत्व, वाक्य, अन्य सन्निधि, वाच्य, प्रकरण, देश, काल, काकु, चेष्टा आदि दस विशेषताओं से व्यंजनार्थ की प्रतीति कराती है।

रामकुमार वर्मा के नाट्य—संसार में जगह—जगह पर शब्द शक्ति को प्रदर्शित करते उदाहरण परिलक्षित होते हैं। कुछ उदाहरणों की संक्षिप्त बानगी इस प्रकार से है —

— 'ये आँसू बहुत कीमती हैं, इन आँसुओं से किसी भी सल्तनत की नींव बह सकती है।'[२४]

— 'ये आँखें इतनी हलकी होती हैं कि जरा से इशारे पर बहक जाती हैं।'[२५]

— 'संदेह पानी का बुलबुला नहीं जो एक क्षण में भंग हो जाता है।'[२६]

— 'दिल्ली और अजमेर को भौंह के संकेत से नचाने वाले चौहान को ये शब्द भी सुनने पड़े।'[२७]

— 'आपकी वाणी में प्राणों की गहराई छिपी हुई है।'[२८]

— 'सबको संडे की छुट्टी है, आप आज भी खच्चर की तरह जुते हुए हैं।'[२९]

— 'न जाने कितने बेकुसूर इन्सान गोलियां खाकर गुड्डों की तरह गिर रहे हैं।'[३०]

— 'तो आज कहाँ बिजली चमकाई।'[३१]

इस तरह के सैंकड़ों उदाहरण वर्माजी की भाषा— शक्ति की क्षमता को प्रदर्शित कर उनकी लेखनी का सौन्दर्य दर्शाते हैं।

शब्द भण्डार

किसी पदार्थ की प्रतीति कराने वाली ध्वनि को शब्द कहते हैं। स्थूलत: शब्द का अर्थ ध्वनि, वाक्य, पद आदि भी होता है। शब्द ही किसी भी रचना का प्रमुख साधन होता है। शब्दों का क्रमिक व्यवस्थित रूप ही भाषा का स्वरूप है। साहित्यकार शब्दों के समुचित बाह्य और आन्तरिक ज्ञान के द्वारा ही विचाराभिव्यक्ति करता है। जहाँ पर अनेक एकार्थक शब्द उपलब्ध होते हैं, वहाँ एक विशिष्ट शब्द द्वारा इच्छित अर्थ की अभिव्यक्ति करता है।

हिन्दी में नवीन शब्दों की भंगिमा स्पृहणीय वर्णनों के लिए प्रयुक्त होने लगी। नये प्रकार की विचाराभिव्यक्ति के लिए नये—नये शब्दों की आवश्यकता भी हुई। शब्दों के भिन्न—भिन्न प्रयोगों से एक स्वतंत्र अर्थ की उत्पत्ति होती है। भाषा के निर्माण में ऐसे शब्दों का भी बहुत योगदान रहता है। ये शब्द प्रकृति प्रत्यय के योग द्वारा बनाये जाते हैं, देशज शब्दों को, विदेशी शब्दों को भी विचाराभिव्यक्ति की सशक्ता के लिए साहित्यकार प्रयोग करता है।

वर्माजी ने अपनी कृतियों में भाषा का सहज और सुगम प्रयोग किया है। संवादों की सरलता और सहजता के पीछे वर्माजी द्वारा सरल शब्दों का प्रयोग करना रहा है। वर्माजी संवादों को क्लिष्ट बनाने में हमेशा बचते रहे हैं।

वर्माजी की कृतियों में शब्द भण्डार का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है —

१. हिन्दी शब्द समूह के आधार पर : तत्सम्, तद्भव, देशज, विदेशी

२. गुण एवं प्रकृति के आधार पर :

३. पारिभाषिक शब्दावली : दार्शनिक, सांस्कृतिक

१. हिन्दी शब्द समूह के आधार पर

तत्सम शब्द

संस्कृत के वे शब्द जो अपने मूल रूप में हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होते हैं और उनकी व्युत्पत्ति संभव है, तत्सम शब्द कहे जाते हैं। वर्माजी ने सहज सरल भाषा को स्वीकार कर सरल सहज शब्दों को ही स्थान दिया है। उनकी कृतियों में तत्सम शब्दों का उद्घाटन आसानी से परिलक्षित होता है।

'शिवाजी', 'कौमुदी महोत्सव', 'कला और कृपाण', 'महाराणा प्रताप', 'समुद्रगुप्त पराक्रमांक', 'अग्निशिखा', 'जय आदित्य', 'सरजा शिवाजी', 'दीपदान', 'पृथ्वीराज की आँखें','दुर्गावती' आदि–आदि ऐतिहासिक कृतियों के साथ–साथ अन्य कृतियों में भी वर्माजी ने घटनाओं के वर्णन के साथ–साथ भावाभिव्यक्ति लालित्यपूर्ण ढंग से की गई है। इन कृतियों में तत्सम शब्द सहजता से अपना सौन्दर्य बिखरते परलक्षित होते हैं। ऐसे कुछ शब्द उदाहरणार्थ निम्नवत् है– आवृत्त' 'अवशिष्ट, 'आकाँक्षा' 'अन्तर्निहित', 'उत्सर्ग', 'कृत्य', 'कृतघ्न','स्थिति', 'चिरन्तन', 'त्रस्त', 'निर्वासित', 'निर्विकार', 'नि:सृत', 'प्रबुद्ध', 'पीयूष', परिहास', 'परिमल', 'प्रस्फुटित', 'युगल', 'विकर्षण', 'विकसित', 'स्तब्ध', 'स्मित', 'सृजन', 'उज्ज्वल', 'रमणी', 'श्रद्धा', 'पताका', 'स्तम्भ', 'चन्द्र', 'कण्ठ', 'कक्ष' आदि।

तद्भव शब्द

ये वे शब्द होते हैं जो पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि से हिन्दी भाषा में आते हैं जो तत्सम रूपों में ही जन्मे हैं। वर्माजी द्वारा प्रकृति वर्णन, मानवीय सौन्दर्य में मुख्यत: इन शब्दों का प्रयोग हुआ। उदाहरण के रूप में 'आँख', 'सुहाग', 'गाँठ' 'बूँद', 'भूख', 'सुनहले', 'अलसाई', 'साँस', 'नाच', 'गूँजने', 'नये', 'अधखुला', 'गोद', 'हँसी', 'पीला', 'फूल', 'नचत', 'बन्धेज', 'शरीर', 'बुढ़ाया', 'नौकरी', 'भनकझोर' आदि शब्दों को देखा जा सकता है।

देशज शब्द

ये शब्द लोकभाषा में प्रचलन में होते हैं। इन शब्दों की व्युत्पत्तिपरक व्याख्या नहीं हो पाती है। वर्माजी के नाटकों एवं एकांकियों में लोकभाषा के शब्दों का भी उपयोग हुआ। देशज शब्दों के प्रयोग द्वारा वर्माजी ने उपन्यासों की कथावस्तु, घटनाओं की पृष्ठभूमि को गतिशीलता, सहजता प्रदान की है। यथा – नहाय, कौनों, सुमिरनी, सब्बै, पहिरे, मिल गइन, मनई, आदि शब्दों को वर्माजी ने अपने नाटकों और एकांकियों में पात्रों की बोली, भाषा के प्रस्तुतिकरण को सहज बनाने के लिए प्रयुक्त किया है।

विदेशी शब्द

हिन्दी भाषा ने अपने सर्वग्राहय गुण के द्वारा अपने में विदेशी भाषा के शब्दों को भी स्वीकार किया है। हिन्दी भाषा में प्रभावपूर्ण रूप से प्रयोग में आने के कारण इन शब्दों का विभाजन करना दुष्कर हो जाता है। वर्माजी ने भाषा की सरलता का विशेष रूप से ध्यान रखा है। इसी कारण वे अनावश्यक रूप से हिन्दी के क्लिष्ट शब्दों का उपयोग न कर विचारों की सुगमता के लिए विभिन्न भाषाओं के शब्दों को प्रयुक्त करते रहे हैं।

घटनाओं के प्रवाहपूर्ण और प्रभावी वर्णन के लिए वर्माजी ने अरबी, फारसी, अंग्रेजी भाषा के शब्दों को नि:संकोच रूप से स्वीकार कर स्थान दिया है। उदाहरणार्थ – पेशगी, रकम, कॉफी हाउस, एड्रस, एक्ट्रेस, दरअसल, बरतन, स्टेशन, फुर्सत, बैंक, मीनार, फिजूलखर्च, दूने, कबूल, तुरक, कद्र, संडे, पिकनिक, मीटिंग, सिनेमा, कैदखाना आदि शब्दों को 'एक हजार रुपया, प्रेम की आँखें, ऐक्ट्रेस, मानसिक चोट, तैमूर की हार, महाराणा प्रताप, नाना फड़नवीस, जय—बांग्ला, जयभारत' आदि नाटकों और एकांकियों में लालित्यपूर्ण ढंग से संवादों की प्रवाहशीलता हेतु प्रयुक्त किया है।

२. गुण एवं प्रकृति के आधार पर

गुण एवं प्रकृति के आधार पर गुण अथवा प्रकृति के आधार पर शब्द मधुर, रमणीय, सरल, सहज, स्निग्ध, सुकुमार, ध्वन्यात्मक आदि विविध रूप से होते हैं। विवेचानात्मक कृतियों में इनका प्रयोग रमणीयता एवं प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करने के लिए किया गया है। प्रकृति वर्णन, मानवीय सौन्दर्य के अंकन पात्रों के मनोभावों की रमणीय अभिव्यक्ति के लिए वर्माजी ने गुण एवं प्रकृति के आधार पर शब्दों का लालित्य प्रस्तुत किया है –

– 'महाराष्ट्र जननी जो सहयाद्रि के सिंह पर बैठी है, कोंकण मुकुट धारण किये है।'[३२]

– 'गंगा, मेरी मालाएँ देख ? ऐसी हैं जैसे फूल की चलती, फिरती, क्यारियाँ, सुगन्धि की रंगरेलियाँ, सुन्दरता की आकाश गंगाएँ।'[३३]

– 'हिम–शृंग की भाँति अचल पुरुष! उपगुप्त!! वाणी से नहीं – आत्मा से साक्षात्कार करते हैं।'[३४]

– 'गंगा जल की तरह पवित्र केसर की तरह सुगंधित कपूर की तरह शीतल।'[३५]

– 'गोकुल की गलियाँ सूनी हो गईं, यमुना का तीर शून्य हो गया, कदम्ब की छाया सूनी हो गई, वंशी का हृदय सूना हो गया पर श्याम मधुपुरी से नहीं आए।'[३६]

रामकुमार वर्मा ने लालित्यपूर्ण, सौन्दर्यमयी ऐसे वाक्यों को प्रमुखता से अपने नाट्य–संसार में रखा है। नारी पात्रों के चित्रण में, उनकी सुन्दरता, स्थिति दर्शाने में, प्रकृति की स्थिति दर्शाने में, पात्रों के आपस में वार्तालाप में एक दूसरे की प्रशंसा करने में इस प्रकार के वाक्यों का अधिकाधिक प्रयोग किया गया है।

३. पारिभाषिक शब्दावली

दार्शनिक शब्द

दार्शनिक शब्द मूलत: क्लिष्ट, दुरूह होते हैं। उपन्यासों में घटनाओं और वातावरण में स्वाभाविकता के लिए इन शब्दों का प्रयोग किया गया है। वर्माजी की सहज लेखनी से निकल कर दुरूह, दार्शनिक शब्द भी सरस—सरल हो गये हैं। तत्त्व चिन्तन की स्थिति में, ईश्वर की पूजा अर्चना अथवा वेद पुराणों आदि दर्शन से सम्बन्धित घटनाओं में भारतीय दर्शन की परिभाषित शब्दावली के शब्दों—'ईश्वर','प्राणिधान','ज्योतिस्वरूप','अखण्ड अनन्त ज्योति','साक्षात्कार','निराकार' 'आत्मसात','आत्मसमर्पण' आदि के अतिरिक्त 'पुरुष', 'प्रकृति', 'शून्य संवेदन', 'स्थिति', 'कला', 'विद्या', 'राग', 'काल', 'नियति', 'इच्छा', 'ज्ञान', 'क्रिया', 'आकृति', 'यज्ञ' 'अधिष्ठात्री' आदि शब्दों का लालित्य पाठकों को अभिभूति करता है।

सॉस्कृतिक शब्द

भारतीय संस्कृति के उपासक होने के कारण वर्माजी के नाटकों, एकांकियों में साँस्कृतिक शब्दों की व्यापकता दृष्टिगत होती है। भारतीय संस्कृति को आत्मसात कर उसे सौन्दर्यपरकता से प्रकट किया है। 'यज्ञ', 'होम', 'देव', 'अग्नि', 'परोपकार', 'सहिष्णुता', 'दया', 'क्षमा', 'आत्मसम्मान', 'स्वामिनी', 'मंगलगान', 'आरती', 'श्रद्धा', 'व्रत', 'तीर्थ', 'चरित्र', 'भक्ति', 'विश्वास', 'धर्मनिष्ठा' आदि शब्दों का लालित्यपूर्ण प्रयोग परिलक्षित है।

(ग) गुण

साहित्य रचना के लिए शब्दों, अलंकारों, शब्द शक्ति आदि से सम्पन्न भाषा के होने पर भी कुछ ऐसे गुणों की अपेक्षा होती है जो उसे अभीष्ट सौन्दर्यानुभूति के योग्य बना देते हैं। शृंगार वर्णन करते समय साहित्यकार ऐसे

मधुर शब्दों का चयन करता है जो अपनी ध्वन्यात्मकता और स्पर्श में एक प्रकार की कोमलता लिए होते हैं। इसी तरह वीरत्व का वर्णन करते समय आवश्यक है कि वर्णों में ओज हो वे कठोरता का आश्रय लिए हुए हो।

काव्यशास्त्र के प्रारम्भिक आचार्यों के समय तक 'अलंकार और रीति ही काव्य के सौन्दर्य तत्त्व थे। ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य इन सिद्धांतों का आविर्भाव बाद में हुआ।'[३७] इन प्राचीन आचार्यों ने इस समय तक आविष्कृत सभी सौन्दर्य तत्त्वों का समावेश अलंकार और रीति में करने का प्रयास किया। यही कारण है कि गुण से उनका तात्पर्य वर्णों की कोमलता और परुषता तक ही सीमित नहीं, बल्कि सम्पूर्ण शब्द सौन्दर्य और अर्थ सौन्दर्य से है। उन्होंने ओज, प्रसाद, श्लेष समता, समाधि, माधुर्य, सौकुमार्य, उदारता, अर्थ व्यक्ति तथा कान्ति इन दस गुणों में सम्पूर्ण शब्दार्थ–सौन्दर्य को समाविष्ट करने का प्रयास किया।

वामन के विचार से गुण का अधिक महत्तव है। पद रचना के उपर्युक्त दस गुणों को वे स्वीकार करते हैं। वामन के विचार से पद रचना के संश्लिष्ट संगठन में ओज, शिथिल संगठन में प्रसाद, अनेक अर्थ जहाँ एक पद में लगें वहाँ श्लेष, शैली की एक समानता, समता चढ़ाव उतार का क्रम समाधि, समास रहित पद– प्रयोग माधुर्य; कठोरता के अभाव मे सौकुमार्य; जहाँ वर्ण नृत्य से करते हों वहाँ उदारता, जहाँ स्पष्टता वहाँ अर्थव्यक्ति; नव्यता और चमक में कांति गुणों की उपस्थिति मानी ज़ाती है।'[३८]

यह पद व्याख्या पद–रचना की दृष्टि से है, अर्थ की दृष्टि से फिर अलग व्याख्या वामंन ने की है। इसके अनुसार 'अर्थ की पौढ़ता ओज; अनेक विशेषताओं का संगठन श्लेष; विषमता का अभाव समता; अर्थ की विशेषता समाधि; उक्ति वैचित्रय माधुर्य; परुषता का अभाव सौकुमार्य; ग्राम्यत्व की हीनता उदारता; स्पष्टार्थता, अर्थव्यक्ति तथा रस की दीप्ति कान्ति है।'[३९]

मम्मट आचार्य तथा अन्य ध्वनिवादी आचार्यों ने दस गुण नहीं माने। वे केवल तीन गुण माधुर्य, ओज और प्रसाद मानते हैं। ये गुण रसास्वाद की तीन अवस्थाओं के साथ सामंजस्य द्वारा निश्चित किये गये हैं। ये तीन अवस्थायें हैं – द्रुति, दीप्ति और प्रसन्नता। इस प्रकार माधुर्य, शृंगारादि का; ओज, वीर, रौद्रादि का तथा प्रसाद सभी रसों का उपकरण है।'[४०] 'दस गुणों में से कुछ गुण तो इन्हीं तीन गुणों – माधुर्य, ओज, प्रसाद – के भीतर आ जाते हैं और शेष गुण न होकर दोषाभाव के रूप में आते हैं। आचार्य विश्वनाथ भी इसी मत को स्वीकार करते हैं।'[४१]

माधुर्य चित्त को द्रवित करने वाले भाव से युक्त है। संयोग, करुण, विप्रलम्भ और शांत में यह क्रमशः अधिक प्रकर्षयुक्त होता है। ओज चित्त का विस्तारक एवं दीप्तिकारक है। वीभत्स और रौद्र में यह क्रमशः प्रकर्ष प्राप्त करता है। प्रसाद गुण चित्त को व्याप्त और प्रसन्न करने वाला होता है। यह समस्त रसों में और रचनाओं में होता है। इस प्रकार ध्वनि और रस–सिद्धांत की प्रतिष्ठा हो जाने पर माधुर्य, ओज और प्रसाद इन्हीं तीन गुणों को आचार्यों ने मान्य ठहराया है।

रामकुमार वर्मा ने अपने ऐतिहासिक नाटकों, एकांकियों में पात्रों की स्थिति उनकी संवाद शैली के द्वारा ओज गुण को दर्शाया है। 'कौमुदी महोत्सव', 'महाराणा प्रताप', 'नाना फड़नवीस', 'समुद्रगुप्त पराक्रमांक', 'कला और कृपाण' आदि में युद्ध की तैयारी, युद्ध की ललकार द्वन्द्व की स्थिति, युद्ध के बाद के वर्णनों में ओज गुण को दर्शाया है।

इसी तरह वर्माजी ने माधुर्य एवं प्रसाद गुणों को भी नारी पात्रों की वेशभूषा, प्रकृति के चित्रण में, नर्तकियों के नृत्य–गायन में, राजकुमारों के दया–धर्म दर्शाने पर प्रदर्शित किया है। इसे 'विजय–पर्व', 'शिवाजी', 'दीपदान', 'कवि पतंग', 'सारंग–स्वर', 'दुर्गावती', 'शहनाई की शर्त' आदि कृतियों में आसानी से देखा जा सकता है।

(घ) रीति

रीति का कोशगत अर्थ है 'गमन–प्रणाली', जिससे जाया जाये अथवा गतिशील हुआ जाये। संस्कृत काव्य– शास्त्र के इतिहास में अन्य काव्य शास्त्रों की भाँति रीति सम्प्रदाय भी महत्वपूर्ण रहा है। रीति सम्बन्धी धारणा और महत्व के विषय में विद्वानों मे मतभेद रहा है। 'वामन ने रीति शब्द से ही इसका विवेचन किया जब कि पूर्ववर्ती आचार्यों ने मार्ग का प्रयोग किया है,कोई इसे संघटना स्वरूप मानता है तो कोई वृत्तियों से अभिन्न।'[४२] भले ही काव्यशास्त्रीय परम्परा में अनेक शब्द प्रचलित हुए हों पर रीति शब्द ही सर्वाधिक प्रचलित रहा है। वामन ने रीति शब्द का प्रयोग करते हुए उसे परिभाषा दी है और उसे काव्य की आत्मा कहा है, इसीलिए वामन को ही रीति सिद्धांत का प्रवर्तक माना जाता है।

रीति सम्बन्धी धारणा और महत्व में मतभेद की तरह ही रीति की संख्या, नामकरण को लेकर भी मतभेद रहे हैं। 'काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य भामह ने अनामत: और दण्डी ने मार्ग नाम से रीति–विवेचन किया है। इन दोनों आचार्यों ने रीति के दो भेद किये हैं – वैदर्भी और गौड़ीय।'[४३] इसके उपरांत रीति विकास में वामन का नाम आता है। 'रीति शब्द के प्रयोग का श्रेय वामन को ही है। उन्होंने दो के स्थान पर तीन रीतियाँ स्वीकार की हैं, वैदर्भी, गौड़ीया, पांचाली।'[४४] वामन के उपरान्त रीति विकास में महत्वपूर्ण नाम रूद्रट का आता है। 'इन्होंने वामन की तीन रीतियों में 'लाटीया' नामक चतुर्थ भेद जोड़ा।'[४५] 'राजशेखर ने वामन की तीन रीतियों को ही मान्यता प्रदान की हैं।'[४६] आचार्य मम्मट ने उपनागरिकाद्वपरुषा और कोमला तीन वृत्ति स्वीकारी हैं।'[४७]

विभिन्न विद्वानों द्वारा वर्णित रीतियों के स्वरूपों और नामकरण के बाद आचार्य वामन द्वारा विवेचित तथा ध्वनिकार आनन्दवर्धन द्वारा स्वीकृत वैदर्भी, गौड़िया (गौड़ी) तथा पांचाली–तीन रीतियाँ मानना ही युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

रीति का आधार चाहे समास माना जाये चाहे वर्णगुम्फ, इसके तीन भेद ही स्वीकारे जा सकते हैं।

१. वैदर्भी रीति

विदर्भादि देशों में प्रचलित होने के कारण इस रीति को वैदर्भी नाम दिया गया है। यह रीति समग्र गुणों से युक्त होती है। 'यह दोष रहित, वीणा के स्वरों के समान मधुर, कुछ इस प्रकार की विशेषता से सम्बन्धित है जो शब्द और चमत्कार के अर्थ से भिन्न है।'[४८] इस रीति में ललित पदावली ही रखी जाती है। माधुर्यव्यंजक वर्ण तथा ललित पद योजना के कारण यह श्रृंगार, करुण, हास्य आदि रसों की अभिव्यक्ति में सहायक होती है। इसमें समासों का पूर्ण अभाव होता है अथवा अत्यल्प मात्रा हो सकते हैं। आचार्य दण्डी और वामन ने इसे श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, ओज, कान्ति और समाधि गुणों से सम्पन्न माना है जबकि मम्मट ने इसके मूल में माधुर्य गुण को ही प्रमुख माना है।'[४९]

वर्माजी ने 'गौहरबानू'[५०], 'महादेवी'[५१], 'अहिल्याबाई'[५२] आदि का सौन्दर्य चित्रण हो अथवा प्रंकृति चित्रण की दर्शनीयता, सभी में वैदर्भी रीति का प्रयोग लालित्य बरसता दिखता है।

'कटि में दोलायमान किंकिणी और पैरों में नूपुर',[५३] 'आम्र—कुंज के मध्य में विविध लताओं के बीच दुग्ध—धवल धुस्स बिछाए गए हैं',[५४] 'लाज—भरे सौन्दर्य की पंखुड़ियों को प्रेम की किरण ने पहली बार छेड़ा है'[५५] आदि उदाहरण वर्माजी की सौन्दर्यशीलता को प्रकट करते हैं।

२. गौड़ी रीति

ओजपूर्ण वर्गों में गौड़ी रीति होती है। वीर, रौद्र रस की तो यह जीवन शक्ति होती है। लम्बे—लम्बे समास वातावरण को प्रकम्पित करते प्रतीत

होते हैं। इसमें मधुरता और सुकुमारता का अभाव रहता है और उग्र पदों वाली रीति होती है। इसी कारण इसे परुषावृत्ति भी कहा जाता है।

ओजपूर्ण वर्णों में गौड़ी रीति मानी जाती है। 'अशोक द्वारा अपने भाइयों को ललकारना',[५६] 'अजीत सिंह का ओजस्वी ढंग से मेवाड़ के स्वरूप का चित्रण',[५७] 'मंगल पांडे की युद्ध ललकार',[५८] आदि घटनाओं के अतिरिक्त वर्माजी के ऐतिहासिकता से ओत प्रोत नाटकों, एकांकियों में गौड़ी रीति के दृश्य आसानी से परिलक्षित होते हैं।

३. पांचाली रीति

इस रीति का उल्लेख सर्पप्रथम वामन ने लिया था। उन्होंने इसको माधुर्य और सौकुमार्य से युक्त माना है तथा गठबन्धन से रहित और शिथिल पद वाली बताया है। यह अगठित भावशिथिल, छायायुक्त, मधुर और सुकुमार होती है। वस्तुत: इसे वैदर्भी और गौड़ी के मध्य की रीति माना जाता है। जिसमें वर्णगुम्फ न माधुर्यव्यंजक होता है और न ओज प्रकाशक। इसमें न तो समासों का नितांत अभाव होता है और न दीर्घ समासों की योजना होती है। 'पद योजना यथासंभव कोमलता लिए रहती है, इसीलिए मम्मट ने इसे कोमलावृत्ति भी कहा है।'[५९] इसका मूल गुण प्रसाद माना जाता है। मम्मट ने दस गुणों के स्थान पर केवल माधुर्य, ओज एवं प्रसाद को ही मान्यता दी है, शेष गुणों का अन्तर्भाव इन्हीं में माना है।'[६०]

संक्षेपत: उक्त तीनों का सम्बन्ध निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है—

रीति	वृत्ति	गुण
वैदर्भी	उपनागरिका	माधुरी
गौड़ी	परुषा	ओज
पांचाली	कोमला	प्रसाद

(व) वक्रोक्ति

वक्रोक्ति सिद्धांत के प्रर्वतक आचार्य कुंतक हैं। ध्वनि—सिद्धांत की प्रतिष्ठा हो जाने पर तथा रीति—सिद्धांत में वामन द्वारा गुण को काव्य शोभा के कारण स्वरूप धर्म के रूप में स्वीकार करने पर अलंकार को अपदस्थ होकर गौण पद ग्रहण करना पड़ा। अलंकार आभूषण रूप में ग्रहण करने से उसका महत्व कम हो गया। ध्वनि ने जिस विशेषता को लेकर अपना सिद्धांत खड़ा किया था वह विशेषता अलंकार की तह में भी किसी ने किसी रूप में थी। अलंकार सम्प्रदाय के भामह ने वक्रोक्ति, अलंकार की आत्मा के रूप में स्वीकारी है।

वक्रोक्ति अलंकृति है। यही कथन भी भंगिमा है जो उक्ति को शोभा प्रदान करती है। उक्ति में चमत्कार और चारुता का सम्पादन वक्रोक्ति के द्वारा ही होता है। कुंतक ने वक्रोक्ति के भेद व्याकरण तथा काव्यशास्त्र के समन्वित आधार पर किये हैं।

भाषा की सूक्ष्मतम इकाई है— वर्ण और स्थूलतम इकाई है — वाक्य । इन दोनों के मध्य पद स्थित है जिसे व्याकरणिक दृष्टि से प्रकृति और प्रत्यय नामक दो भागों में विभाजित किया गया है। कुंतक ने इन्हीं को भेदों का आधार बनाया है। 'आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति के जो छः भेद माने हैं वे हैं— वर्णविन्यास वक्रता, पदपूर्वार्द्ध वक्रता, वाक्य वक्रता, प्रकरण वक्रता और प्रबन्ध वक्रता।'[६१]

— 'ऐसे फूलों का क्या सौन्दर्य जो किसी शव पर बिखेर दिए जाते हैं। आज आपके चरणों पर गिरकर मैं अपने जीवन से मुक्त हो जाऊँगी।'[६२]

— 'तथागत! शांति और अहिंसा का उपदेश करते हैं! सोती हुई निरपराध पत्नी को छोड़कर जो कर्मयोग से भागे वे किस अहिंसा का उपदेश देंगे।'[६३]

— 'आत्महत्या करने से आपकी अमर लेखनी टूट जायेगी।'[६४]

— 'उनकी बातें तो ऐसी ज्ञान से भरी हैं जैसे लोटे में गंगा—जल भरा रहता है।'[६५]

— 'यह मेरी प्रेम की माला है। इसे मैंने ही न जाने कितनी बातों के साथ ....न जाने कितने आँसुओं के साथ गूँथा है।'[६६]

इस तरह के सौन्दर्याभिव्यक्ति वाले उदाहरणों के द्वारा वर्माजी ने लेखनी से अपने नाट्य—संसार में वक्रोक्ति का लालित्य उभारा है। वक्रोक्ति की बच्छितियाँ, वैविध्य एवं भंगिमाएँ अपनी विशेषताओं के साथ नाटकों, एकांकियों में मूर्तिमान हुई हैं। वर्माजी द्वारा रंगमंच की सुविधा की दृष्टि से और संवादों की सहजता बनाये रखने के कारण वक्रोक्ति का वैभव स्वतः ही सहज रूप में प्रवाहित हुआ है।

(छ) अलंकार

अलंकार का अर्थ है — आभूषण, जो किसी को आभूषित करे। जिस प्रकार हार, कुण्डल आदि आभूषण किसी नारी की शोभा में वृद्धि करते हैं, उसी प्रकार कविता— कामिनी की सौन्दर्य वृद्धि करने वाले तत्त्व को अलंकार कहा गया है। ये अलंकार काव्य सौन्दर्य को पूर्णता या पर्याप्तता प्रदान करते हैं। इस प्रकार ये वाणी के अलंकार हैं। 'चाहे वह गद्य हो, चाहे पद्य काव्य—दोनों में अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता है।'[६७] अलंकारों का प्रयोग नितांत स्वाभाविक है। किसी तथ्य, अनुभूति घटना या चरित्र की प्रवाहपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अलंकारों का उपयोग होता है।

'अलंकार के प्रयोग की प्रधान परिस्थितियाँ निम्नांकित हैं —

(क) जहाँ पर किसी तथ्य, वस्तु या चरित्र के स्वरूप को प्रकट करना चाहते हैं, वहाँ अप्रस्तुत की योजना करने में अलंकार का प्रयोग होता है।

(ख) जहाँ किसी प्रभाव को स्पष्ट करना चाहते हैं वहां पर हम बल,

निषेध, अत्युक्ति, कार्य—कारण सम्बन्ध, हेतु कल्पना आदि के द्वारा अपना काम चलाते हैं और इस प्रकार अलंकार आ जाते हैं।

(ग) कहीं क्रम असंगति तथा संज्ञा, विशेषण, क्रिया आदि के चमत्कारिक प्रयोग में अलंकार रहते हैं।

(घ) कहीं विरोध या वैपरीत्य की विशेषता द्वारा कथन को प्रवीण बनाना चाहते हैं और अलंकारों का प्रयोग करते हैं।

(ड) कहीं हम निन्दा या प्रशंसा में दूसरा भाव छिपाकर व्यंग्य से कुछ और कहना चाहते हैं और अलंकार का समावेश हो जाता है।

(च) कहीं शब्द के ध्वनि का अर्थ सम्बन्धी चमत्कारिक प्रयोगों द्वारा अलंकार की सृष्टि होती है।'[६८]

अलंकार वाणी के विभूषण हैं। सामान्य बात अलंकारों से सुशोभित होकर एक विशेष मनोहरता से सम्पन्न हो जाती है। अतः अलंकार साधारण कथन न होकर चमत्कारपूर्ण उचित है। अलंकार कथन की लालित्यपूर्ण भंगिमा है। जिस उक्ति में किसी तरह का कोई वैचित्य होता है वही उचित अलंकार है। उक्ति वैचित्रय के विभिन्न रूप ही विभिन्न अलंकार होते हैं। इसी आधार पर अलंकार के — शब्द और अर्थ — दो भेद किये जाते हैं। इस आधार पर अलंकार को 'शब्दालंकार और अर्थालंकार' में विभक्त किया गया है।

१. शब्दालंकार

जिस अलंकार में शब्दों के प्रयोग के कारण कोई चमत्कार उपस्थित हो जाता है और उन शब्दों के स्थान पर समानार्थी दूसरे शब्दों के रख देने से वह चमत्कार समाप्त हो जाता है वहाँ पर शब्दालंकार होता है। इसके प्रमुख रूप इस प्रकार हैं — अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति।

२. अर्थालंकार

अर्थालंकार में किसी शब्द विशेष के कारण चमत्कार नहीं होता वरन् इसमें अर्थगत चमत्कार होता है। उस शब्द विशेष के स्थान पर उसी के समानार्थी दूसरा शब्द रख दिया जाये तो भी अलंकार बना रहता है। इन अलंकारों की भाव अथवा अर्थ प्रकाशन की भिन्न—भिन्न शैलियाँ हैं। इन अलंकारों की कोई निश्चित संख्या नहीं मानी गई है। विभिन्न विद्वानों ने इनकी अलग—अलग संख्या स्वीकारी है। अर्थालंकार के प्रमुख भेद निम्नलिखित हैं — उपमा, रूपक, प्रतीप, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान, संदेह, अतिश्योक्ति।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने यद्यपि नाट्य—संसार में पात्रों की वेशभूषा को, प्रकृति के सौन्दर्य को सामान्य रूप से चित्रित किया है। यहाँ पर वे पात्रों के कपड़ों आभूषणों पर ही ध्यान केन्द्रित करते दिखे हैं और प्रकृति चित्रण में वर्णात्मकता नहीं है। इस कारण से इन स्थानों पर अलंकारों की बहुतायत नहीं है। अलंकार सामान्य रूप से स्वत: ही आ गये हैं। इसके अतिरिक्त पात्रों की संवाद की स्थिति में अलंकारों का प्रयोग यदा—कदा हो सका है।

'खर्च तो गंगा का प्रवाह है,'[६९] 'मेरे प्रेम के सरोवर का जल मीठा है,'[७०] 'उषा के रंगीन बादलों को बढ़ते हुए दिन को जगह देने के लिए हटना पड़ता है,'[७१] 'तुम्हारे नेत्र हरिण के समान हैं,'[७२] 'गंगा—जल की तरह पवित्र,केसर की तरह सुगंधित, कपूर की तरह शीतल,'[७३] 'आप क्यों इतने वीरों के रक्त से राज्य श्री को अग्नि का रूप देना चाहते हैं,'[७४] 'मुर्गे की कलगी की भाँति तब भी उनकी चोटी खड़ी रहेगी'[७५] आदि उदाहरण वर्माजी की अलंकार सौन्दर्य क्षमता को दर्शाते हैं। इस प्रकार के अलंकारमय सौन्दर्य से नाट्य—संसार में अद्भुत लालित्य उत्पन्न करने में वर्माजी सफल सिद्ध रहे हैं।

(ज) औचित्य

जो वस्तु जिसके अनुरूप होते हैं उसे उचित कहा जाता है और उस उचित के भाव को ही काव्यतत्वविद औचित्य कहते हैं। औचित्य एक सामंजस्य है। औचित्य का न केवल काव्य जगत् में अपितु व्यवहार जगत् में भी विशेष महत्व है। धार्मिक क्षेत्र में पाप और पुण्य, नैतिक क्षेत्र में वैध और अवैध तथा सामजिक क्षेत्र में सत् और असत् का निर्धारक औचित्य ही है। सौन्दर्य के क्षेत्र में भी यह औचित्य अपना विशेष महत्व रखता है। शरीर के विभिन्न अंगों के निर्दिष्ट स्थान तथा निश्चित आकार होते हैं। अपने स्थान तथा आकार से हीन वस्तुएँ कदापि शोभा नहीं देती हैं। न केवल शारीरिक अंग अपितु वस्त्राभूषण भी उचित स्थान पर विन्यस्त न होकर अपना महत्तव ही नहीं गँवाते बल्कि धारण करने वाले की भी मूर्खता व्यक्त कर सभ्य समाज में उपहास्य बना देते हैं।

औचित्य तत्व के विकास में रूद्रट का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। काव्यशास्त्रीय परम्परा में उन्होंने ही इस पद का सर्वप्रथम प्रयोग किया तथा प्रत्यक्ष एवं प्रत्यक्ष दोनों रूपों में इसका विवेचन किया है। रीति और रसों का सम्बन्ध जोड़ते हुए उन्होंने कहा कि करुण, भयानक और अद्भुत में वैदर्भी और पांचाली रीतियों का विधान उचित है; रौद्र में गौड़ीया और लाटीया का, शेष रसों में औचित्य के अनुसार ही रीतियों का प्रयोग करना चाहिए। अनौचित्य ही दोष है जिसके दूर होने पर दोषत्व का परिहार हो जाता है।

औचित्य की व्याप्ति पद से लेकर प्रबन्ध और विचार तक हो सकती है। क्षेमेन्द्र के विचार से औचित्य के भेद हैं — पद, वाक्य, प्रबन्ध, गुण, अलंकार, रस, क्रिया, कारक, लिंग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात, काल, देश, कुल व्रत, तत्त्व, सत्त्व, अभिप्राय, स्वभाव, सार संग्रह, प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम, आशीष के औचित्य संयोजन रूप।'[७६] वर्तमान में अनेक संदर्भों में कई भेद

अनुप्रयुक्त हो गये हैं। ऐसी स्थिति में औचित्य को हम निम्नांकित प्रमुख भेदों में देख सकते हैं – पदौचित्य, वाक्यगत्, प्रबन्धगत्, अलंकारगत्, रसगत्, क्रियागत्, विशेषणगत्, देशकालगत्, नामगत्, प्रसंगगत्, बिम्बगत् और विचारगत् औचित्य।'[७७]

(झ) ध्वनि

ध्वनि का सामान्य अर्थ है – व्याकरणों के अनुसार स्फोट को प्रकट करने वाला वर्णोच्चारण। जिस प्रकार शब्द के विभिन्न वर्ण अपनी पृथक सत्ता में स्वतंत्र रूप से अर्थाभिव्यक्ति में समर्थ नहीं होते, उसी प्रकार वाच्यार्थ अथवा लक्षणार्थ पूर्ण सौन्दर्य के उद्‌घाटन में समर्थ नहीं होता, यह कार्य तो व्यंग्य द्वारा ही सम्पादित होता है। व्यंग्यार्थ की प्राप्ति 'ध्वनि' द्वारा ही होती है। साहित्य में इसे 'अनुरणन – सिद्धांत' की संज्ञा दी गई है। शब्द के वाच्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ की प्रतीति हो जाने पर एक अन्य सूक्ष्म और रमणीय अर्थ की प्रतीति होती है। इस अन्य अर्थ से भी उत्तरोत्तर अन्य अर्थ नि:सृत होते हैं, जो रमणीयता की वृद्धि करते हैं यही 'ध्वनि' है।

'ध्वनि शब्द का प्रयोग व्यंजक शब्द, वाच्यार्थ, व्यंग्यार्थ, व्यंजना–व्यापार एवं व्यंजना प्रधान काव्य आदि पाँच अर्थों में किया जाता है।'[७८]

इन पाँचों को ध्वनि संज्ञा से व्यवहृत करते हुए भी ध्वनिकार आनन्दवर्द्धन ने ध्वनि काव्य को ही प्रमुख माना है। ध्वनि की परिभाषा देते हुए उन्होंने व्यंजना प्रधान काव्य को ही ध्वनि नाम से अभिहित किया है। पण्डितराज जगन्नाथ का मत है कि व्यंग्यार्थ के किसी प्रकार भी होने पर वह उत्तम कोटि में ही आता है। इस प्रकार ध्वनि व्यंग्यार्थ पर निर्भर है। व्यंग्यार्थ, वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ पर आश्रित रहता है अत: ध्वनि भी अभिधा और लक्षणा पर आधारित है।

'ध्वनि के मुख्य दो भेद हैं – लक्षणामूला ध्वनि (अविवक्षित–वाच्य ध्वनि) और अभिधामूला ध्वनि (विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि)।'[७९]

१. लक्षणामूला ध्वनि या अविवक्षित-वाच्य ध्वनि

अधिक चमत्कारक व्यंग्यार्थ में जहाँ पर वाच्यार्थ की विवक्षा या प्रयोजन नहीं रहता वहाँ पर अविवक्षित वाच्य ध्वनि होती है। यह व्यंग्यार्थ लक्ष्यार्थ पर आश्रित रहता है अतः यह लक्षणामूला ध्वनि कहलाती है। इसके दो भेद होते हैं – अर्थान्तर संक्रमित, अत्यन्त तिरस्कृत।

२. अभिधामूला ध्वनि या विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि

जिस ध्वनि में वाच्यार्थ की विवक्षा हो अर्थात वाच्यार्थ वांछनीय और प्रयोजनीय हो और वह अन्यपरक या व्यंग्यपूर्ण हो वह विवक्षितान्यपर वाक्य ध्वनि होती है। इस ध्वनि में व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ पर आश्रित रहता है। इस ध्वनि के दो भेद हैं– संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि, असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि।

– 'आप शरद और ग्रीष्म में भी उनके स्वप्नों में डूबे रहना चाहते हैं',[८०] 'जीवन हथेली पर रखकर युद्ध–ताण्डव करने में जीवन की शक्ति तो ऐसी निखरती है जैसी उदय होने वाले सूरज की किरण से दिशाओं की कोरें जगमगा उठतीं हैं,'[८१] 'जब विद्रोह के लिए तलवार उठती है तो उसका पानी उतर जाता है,'[८२] 'इन आँसुओं से तुम्हारी सुन्दरता धुलेगी नहीं और भी मैली हो जायेगी',[८३] 'तो जाओ कीरत! आज तुम जैसे एक छोटे आदमी ने चित्तौड़ के मुकुट को सम्हाला है। एक तिनके ने राजसिंहासन को सहारा दिया है'[८४] आदि उदाहरणों से डॉ० रामकुमार वर्मा ने नाट्य–साहित्य को लालित्यपूर्ण गरिमा प्रदान कर पाठकों के मन में अद्‌भुत सौन्दर्य उत्पन्न किया है। नाटकों और एकांकियों में पात्रों और घटनाओं के आधार पर ध्वनि का सौन्दर्य वर्माजी ने सहज, सरल रूप में प्रदर्शित किया है। कहीं भी यह अनावश्यक अथवा थोपा हुआ प्रतीत नहीं होता है। संवादों, शब्दों का लालित्यपूर्ण सौन्दर्य नाटकों, एकांकियों के पाठकों के हृदय को स्थायी रूप से आभासित करता है।

सन्दर्भ सूची

१. सौन्दर्य बोध एवं ललित कलाएँ – डॉ० सरोज भार्गव, पृ० ५३

२. वही, पृ० ५३

३. शिवाजी – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ५३

४. कौमुदी महोत्सव – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १३०

५. जौहर की ज्योति – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२८

६. समुद्रगुप्त पराक्रमांक – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३५

७. भरत का भाग्य (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १०८

८. वासवदत्ता (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७

९. तैमूर की हार (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२९

१०. वही, पृ० १३१

११. प्रगति के चरण (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १३९

१२. परीक्षा (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २७९

१३. चन्द्रलोक (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १६१

१४. वही, पृ० १६०

१५. शिकायत (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४०३

१६. साँप (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ७०

१७. भारतीय काव्यशास्त्र – डॉ० रामानन्द शर्मा, पृ० ११७

१८. वही, पृ० ११८

१९. काव्यशास्त्र – डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० २१४

२०. भारतीय काव्यशास्त्र – डॉ० रामानन्द शर्मा, पृ० १२०

२१. काव्य शास्त्र – डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० २१५

२२. वही, पृ० २१६

२३. वही, पृ० २१७

२४. शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४७

२५. वही, पृ० ७१

२६. कौमुदी महोत्सव — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ११८

२७. पृथ्वीराज की आँखें (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२१

२८. ऐक्ट्रेस (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २०२

२९. मानसिक चोट (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २४५

३०. जय बांगला (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२८

३१. साँप (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ६३

३२. शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२

३३. वही, पृ० ३४

३४. वासवदत्ता (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १९

३५. शहनाई की शर्त (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १९९

३६. कवि पतंग (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २३

३७. भारतीय काव्यशास्त्र — डॉ० रामानन्द शर्मा, पृ० १११

३८. काव्यशास्त्र — डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० २०१

३९. वही, पृ० २०१

४०. वही, पृ० २०२

४१. वही, पृ० २०२

४२. भारतीय काव्यशास्त्र — डॉ० रामानन्द शर्मा, पृ० १०२

४३. वही, पृ० १०४

४४. वही, पृ० १०४

४५. वही, पृ० १०४

४६. वही, पृ०१०५

४७. वही, पृ०१०६

४८. काव्यशास्त्र — डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ०११४

४९. भारतीय काव्यशास्त्र — डॉ० रामानन्द शर्मा, पृ०१०७

५०. शिवाजी — डॉ० रामकुमार वर्मा

५१. विजय पर्व — डॉ० रामकुमार वर्मा

५२. देवीश्री अहिल्याबाई — डॉ० रामकुमार वर्मा

५३. समुद्रगुप्त पराक्रमांक — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७

५४. वासवदत्ता (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १३

५५. कादम्ब या विष (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ७०

५६. विजय पर्व — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १८०

५७. जौहर की ज्योति — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२६

५८. जय भारत — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४४१

५९. भारतीय काव्यशास्त्र — डॉ० रामानन्द शर्मा, पृ० १०८

६०. वही, पृ० ११३

६१. वही, पृ० २०५

६२. कौमुदी महोत्सव — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२९

६३. कला और कृपाण — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २७५

६४. कवि पतंग (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २९

६५. पारस का स्पर्श (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३०१

६६. ध्रुवतारिका (एकांकी) — डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३७५

६७. काव्यशास्त्र — डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० १५६

६८. वही, पृ०१५६

६९. पृथ्वी का स्वर्ग – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ७३

७०. संत तुलसीदास – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० २६१

७१. सत्य का स्वप्न (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा पृ० ३७१

७२. वासवदत्ता (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७

७३. शहनाई की शर्त – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ११८

७४. चारूमित्रा (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १७

७५. सूर्य ग्रहण से भूल (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ३२४

७६. काव्यशास्त्र – डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० २५२

७७. वही, पृ० २५२

७८. भारतीय काव्यशास्त्र – डॉ० रामानन्द शर्मा, पृ० १४१

७९. वही, पृ० २२७

८०. सम्राट कनिष्क – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ६७

८१. देवीश्री अहिल्याबाई – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १२४

८२. विजय–पर्व – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० १८०

८३. शिवाजी – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ४६

८४. दीपदान (एकांकी) – डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ८५

सप्तम अध्याय

उपसंहार

आधुनिक साहित्य में डॉ० रामकुमार वर्मा के साहित्य का स्थान

उपसंहार

आधुनिक साहित्य में डॉ० रामकुमार वर्मा के साहित्य का स्थान

उपसंहार

आधुनिक साहित्य में डॉ० रामकुमार वर्मा के साहित्य का स्थान

सुन्दर शब्द जनसाधारण के मध्य इस प्रकार से लोकप्रिय हो चुका है कि मन को अच्दी लगने वाली प्रत्येक वस्तु को सुन्दर से परिभाषित किया जाता है। 'सुन्दर' शब्द की अपनी एक स्वतंत्र सत्ता होती है। उस पर किसी प्रकार के अलंकारों, आभूषणों के आवरण की आवश्यकता नहीं होती है। सौन्दर्य एक प्रकार का आदिम विषय है जो स्वयं कभी भी प्रकट नहीं हुआ परन्तु सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब सृजनशील मन मष्तिस्क में सदैव उद्‌घटित होता रहा। सौन्दर्य के लिए मात्र विचारों से कार्य नहीं चलता है बल्कि उसके साथ हार्दिक भावों का अवलम्बन होना भी अत्यावश्यक है। इस हार्दिकता के समावेश से सौन्दर्य मंगलकारी और आनन्ददायक प्रतीत होता है। इस आनन्द की अनुभूति कराना सौन्दर्य का अभीष्ठ होता है।

सौन्दर्य का अभीष्ठ एक ओर आनन्द की पूर्ति करना होता है वहीं सौन्दर्य के साथ ऐसे प्रश्नों का जुड़ना भी स्वाभाविक रूप से होता है कि क्या किसी आकृति विशेष में ही सौन्दर्य होता है? क्या जिससे हमें आनन्द प्राप्ति हो वही सौन्दर्य है? क्या गंध विशेष अथवा ध्वनि विशेष तक ही सौन्दर्य की सीमा होती है? क्यों किसी माँ को अपना करुप पुत्र भी सुन्दर लगता है? क्यों किसी कलाकार को पतझड़ में सौन्दर्य की अनुभूति होती है? क्यों किसी प्रकृतिप्रेमी को प्रकृति के सभी रूपों में सौन्दर्य दिखलायी देता है? ऐसे दो चार प्रश्न नहीं प्रश्नों की एक

लम्बी शृंखला है जिसके द्वारा सौन्दर्य पर, सुन्दर शब्द पर विद्धानों में मतैक्य नहीं हो सका है।

कुछ विचारक वस्तु की सम्मात्रा, संहति, सामंजस्य, गठन आदि बाह्य आकृति, गुण को सौन्दर्य रूप में स्वीकारते हैं जबकि कुछ विचारकों की दृष्टि में सौन्दर्य मानव मन की अनुभूति है। सौन्दर्य की विविध परिभाषाओं, विद्धानों के विभिन्न मतों के बाद इतना कहा जा सकता है कि यह वस्तु विशेष का विशेष गुण है जो मन को अपनी ओर आकर्षित करता है, मुग्ध करता है। वस्तु में चित्ताकर्षकता का गुण ही सौन्दर्य कहलाता है। देखा जाये तो सौन्दर्य एक विशिष्ट बोध है जिसके पीछे आनन्दात्मक, क्रियात्मक मनोवृत्ति आदि का सामंजस्य होता है। इसी कारण सौन्दर्य की सर्वमान्य परिभाषा अथवा लक्षण देना संभव प्रतीत नहीं होता है।

सौन्दर्य की सर्जना ही कला कही जाती है और समस्त कलाओं का उद्देश्य सौन्दर्यानुभूति कराना होता है। साहित्य भी अपने आप में एक कला है और इसमें शब्दों, भावों के सामिश्रण से सौन्दर्य की अनुभूति होती है। साहित्यकार को संवेदनशील प्राणी मान कर उसे आम साधारणजन से ऊपर उठकर संवेदनाओं से उद्वेलित होना स्वीकारा जाता है। दया, प्रेम ममता, करुणा आदि के अतिरिक्त नव कुसुमों के पुष्पित होने, विहंगों के मधुर कलरव करने से, नदियों के कल—कल निनाद में, प्रातः की अरुणिमा में, रात्रि की धवल चाँदनी में, हरे भरे खेतों की चादर में कला की मौन बेबसी को तोड़ता है। साहित्यकार मन की अनुभूति के द्वारा बाह्य साधना नहीं अपितु अन्त:करण की साधना के द्वारा सौन्दर्य का परिपाक करता है। अन्त:करण की साधना के विकास द्वारा साहित्यकार अनुभूतियों और

संवेदनाओं को ग्रहण कर अपनी कल्पनाशीलता द्वारा मूर्त रूप में प्रस्तुत करता है। अत: सौन्दर्य से प्रेरित होकर सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ही साहित्य है जो सत्यं, शिवं, सुन्दरं स्वरूप ग्रहण कर उसको आभासित करती है।

सत्यं, शिवं, सुन्दरं का महामंत्र साहित्यकार को संस्कृति द्वारा ही प्राप्त हुआ है। सभ्यता के सूक्ष्म रूप संस्कृति से मानव ने समाज का बाहरी स्वरूप निर्मित किया है। सभ्यता के प्रत्येक विकासपरक और विनाशक चरण में वातावरण भले ही परिवर्तित हुए हों, संस्कृति में भले ही परिवर्तन होते रहे हों पर एक चीज स्थायी रही और वो थी प्रेम एवं संवेदनाएँ। प्रेम और संवेदनाओं की इसी उपस्थिति से प्रत्येक चरण में प्रत्येक स्थिति में सौन्दर्यात्मक भावनाएँ उपस्थित रहीं। डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल का कहना भी है कि संसार के सब देशों और सब कालों के साहित्य का मंथन करके यदि उसमें से कोई शाश्वत् तत्त्व निकाला जाये तो वह तत्त्व होगा प्रेम और सौन्दर्य की भावनाएँ।

साहित्य में यह विषय चिरनवीन है। आदिकाल से आधुनिक कवि तक के काव्य में यही स्थायी तत्त्व है। काव्य द्वारा अथवा साहित्य द्वारा पाठक लोकोत्तर आनन्द की अनुभूति करता हुआ रसमय रहता है। साहित्य में इसी आनन्दानुभूति, रसानुभूति को सौन्दर्य कहा जाता है।

हिन्दी साहित्य में एकांकी के जनक के रूप में स्वीकारे गये डॉ० रामकुमार वर्मा का नाम नाट्य साहित्य में बड़ी ही श्रद्धा और आदर के साथ लिया जाता है। डॉ० वर्मा में अपूर्व उत्साह था और इसी के द्वारा वे मात्र नाटककार या एकांकीकार ही नहीं बने रहे बल्कि वे कवि, समालोचक, सम्पादक के रूप में भी विशिष्टता प्राप्त करते रहे ।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्तित्व डॉ० रामकुमार वर्मा दशकों

तक साहित्य—साधना में लीन रहे। नाटकों और एकांकियों की रचना कर वे साहित्य मण्डल के दैदीप्यमान नक्षत्र के रूप में प्रकाशित होते रहे। नाट्य साहित्य के प्रति उनका रुझान बाल्यकाल से ही था। बचपन में नाटकों में अभिनय करते समय उनको संवाद, प्रस्तुति आदि में किसी न किसी रूप में कमी दिखाई देती थी। वे कथोपकथन, पात्रों की स्थिति आदि को प्रभावी बनाने के प्रति सचेत रहते। इसी सचेतना के कारण वे नाट्य लेखन की ओर प्रवृत्त हुए ।

डॉ० रामकुमार वर्मा को भारतीय संस्कृति से अप्रतिम लगाव रहा है। इस कारण वे नाट्य— संसार के द्वारा भारतीय संस्कृति की गौरवगाथा को सामने लाते रहे। चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, अशोक, शिवाजी, कर्ण, महाराणा प्रताप, बुद्ध, तुलसीदास, नाना फड़नवीस, अहिल्याबाई, कुन्ती आदि के विशिष्ट स्वरूप को नाटकों, एकांकियों के द्वारा वे सामने लाते रहे हैं।

ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों के सम्मिश्रण से रचित नाट्य साहित्य के अतिरिक्त डॉ० वर्मा की लेखनी से सामाजिक नाटकों, एकांकियों की भी रचना हुई है। अपने नाट्य संसार को वे काल्पनिकता और वास्तविकता, ऐतिहासिकता के सम्मिश्रण से सौन्दर्यबोधक बनाते रहे हैं। नाटकों को रंगमंचीय व्यवस्था के अनुरूप बनाने की धुन में वे एक से एक सफलतम नाटकों की रचना कर सके वहीं समयसीमा में दर्शकों को मनोरंजन प्रदान करने की दृष्टि से लिखे एकांकियों की संख्या वे डेढ़ सौ से भी ऊपर पहुँचा कर हिन्दी नाट्य साहित्य का भंडार विपुल कर गये।

नाट्य साहित्य में ऐतिहासिकता का समावेश होने के कारण वर्माजी का पात्र संसार ऐतिहासिक महापुरुषों से विस्तीर्ण है। ऐतिहासिक पात्रों में सौन्दर्य की दिव्यता प्रदर्शित होती है। पुरुष पात्र रहे हों अथवा

नारी पात्र सभी को वर्माजी ने सौन्दर्यात्मक दृष्टि से नहीं अपितु सांस्कृतिक दृष्टि से वैभवता प्रदान की है। ऐतिहासिक नाट्य साहित्य के पुरुष, नारी पात्रों को शोभायमान बनाने के साथ—साथ वर्माजी ने सामाजिक नाट्य साहित्य के पुरुष, नारी पात्रों को सौन्दर्यात्मक वैभव प्रदान किया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा का नाट्य साहित्य की रचना करना उनकी बाल्यकाल की रंगमंचीय स्थिति को सुधारने की धुन थी। अपने नाट्य साहित्य को वे विशेष रूप से रंगमंच की दृष्टि से चित्रित करते रहे हैं। इस दृष्टि के साथ—साथ वे नाट्य कथा को प्रवाहपूर्ण बना कर दर्शकों में मनोरंजकता भी बनाये रखना चाहते थे। कथा—प्रवाह, ऐतिहासिकता, तथ्यों की सत्यता के समावेश के चलते डॉ० रामकुमार वर्मा ने पात्रों के सौन्दर्य को अत्यधिक रूप में उभारने का प्रयास नहीं किया है।

डॉ० वर्मा नाट्य साहित्य की सीमाओं को भली भाँति जानते समझते थे। नाट्य साहित्य में कथा साहित्य अथवा उपन्यास साहित्य की भाँति विस्तार का अवकाश नहीं रहता है। कथा—प्रवाह के साथ ही साथ पात्रों की वेशभूषा, आभूषण, सौन्दर्य, मनोस्थिति को दर्शाना होता है।

नाट्य साहित्य के बारे में अत्यधिक जानकारी एवं रुचि के कारण डॉ० रामकुमार वर्मा को पात्रों के सौन्दर्य को सामने लाने में किसी प्रकार की समस्या का सामना नहीं करना पड़ा है। डॉ० वर्मा ने अपने ऐतिहासिक पुरुष पात्रों को उनके पद, उनकी प्रस्थिति के अनुसार ही बाहरी सौन्दर्य से मण्डित किया है। बाहरी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति संक्षिप्त, सूक्ष्म रूप में की गई है।

इसी तरह की चित्रण वर्माजी सामाजिक नाट्य साहित्य के पुरुष पात्रों को लेकर करते रहे हैं। सामाजिक पुरुष पात्रों का बाह्य सौन्दर्य

भी उनकी आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति तथा पद—प्रतिष्ठा के अनुरूप ही चित्रित किया गया है।

पुरुष पात्रों की तरह नारी पात्रों का चित्रण — चाहे वे ऐतिहासिक नारी पात्र हों अथवा सामाजिक नारी पात्र — भी उनकी स्थिति को देखकर ही किया गया है। डॉ० वर्मा द्वारा बाह्य सौन्दर्य चित्रण में अपनी ओर से किसी प्रकार का विशेष प्रयास नहीं किया गया है। पुरुष, नारी, बाल पात्रों के बाह्य सौन्दर्य का चित्रण उन्होंने अधिकांशतः दृश्य विधान पूर्ति के समय अथवा दृश्य परिवर्तन की स्थिति में किया है। इस सीमाबद्धता के बाद भी डॉ० रामकुमार वर्मा के पात्रों का बाह्य सौन्दर्य उनकी वेशभूषा, आभूषणों आदि से प्रकीर्णित होता प्रदर्शित होता है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा पात्रों के आन्तरिक सौन्दर्य को कुशलतापूर्वक उभारा है। पुरुष, नारी, बाल पात्रों में आन्तरिक गुणों की दृढता का सुन्दर परिपाक डॉ० वर्मा द्वारा किया गया है। उनके ऐतिहासिक पात्रों में अपनी संस्कृति, देश के प्रति अगाध लगाव दिखाया गया है। शिवाजी, चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, अशोक, पृथ्वीराज चौहान, महाराणा प्रताप, नाना फड़नवीस आदि ऐतिहासिक पुरुष पात्रों में वीरता, शौर्य, देशप्रेम, नारी के प्रति सम्मान, दया, क्षमा आदि गुणों का सौन्दर्य वर्माजी ने दर्शाया है। ये पुरुष पात्र शासकों, महाराजाओं की स्थिति में होने के बाद भी अपने आन्तरिक सौन्दर्य की आभा को मलिन नहीं होने देते हैं।

गौहरबानू की सुन्दरता को शिवाजी अपनी माता जीजाबाई के तुल्य मान कर उसे सिंहासन पर आसीन करते हैं। नारी के प्रति यह सम्मान की भावना अपने आप में अनुकरणीय है।

ऐसी आन्तरिक सौन्दर्य की आभा शासकों के अतिरिक्त सेनापतियों, सामन्तों में भी पाई जाती है। वीर दुर्गादास को भी देशभक्ति, स्वामीभक्ति के साथ–साथ नारी जाति का सम्मान करते दिखाया है। वे अकबर की पत्नी और पुत्री की रक्षा करने का वचन देकर अपने शौर्य का परिचय देते हैं तो महारानी आदि की सुरक्षा करके नारी को सम्मान करने का भाव भी दर्शाते हैं।

देश–प्रेम, राष्ट्र–रक्षा में वर्माजी के पात्रों का आन्तरिक सौन्दर्य उभर कर समाने आया है। सम्राट अशोक का राष्ट्रहित में अपने भाइयों का विरोध सहना विशेष घटना है। चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त द्वारा वीरता, शौर्य को दर्शाना भी उनके आन्तरिक सौन्दर्य को चित्रित करता है।

शासकों, महाराजांओं के प्रति निष्ठाय राष्ट्रप्रेम की भावना की तीव्रता, राजाओं, राजकुमारों को विपरीत परिस्थितियों से बाहर निकालते सेनापति वीर दुर्गादस हैं तो महामंत्री आचार्य चाणक्य भी हैं।

चाणक्य की कूटनीति का सौन्दर्य चन्द्रगुप्त के सम्राटत्व को भी सौन्दर्य से परिपूर्ण करता है। आचार्य चाणक्य का आन्तरिक सौन्दर्य उनके गुणों से ही आभासित होता है। कुशल राजनीतिज्ञ, दूरदर्शी, राष्ट्रप्रेमी चाणक्य की नीति के द्वारा ही चन्द्रगुप्त नन्दवंश की समाप्ति कर पाये तथा कौमुदी महोत्सव के प्रारंभ होने के पूर्व राजनर्तकी अलका के षडयंत्र से बच पाये।

पुरुष पात्रों के इस प्रकार के वीरोचित गुणों का सौन्दर्य वर्माजी ने किसी प्रयास के उभारा नहीं है। नाट्य साहित्य की कथाओं में, संवादों से, कार्य शैली से उनके आन्तरिक गुणों का सौन्दर्य स्वतः प्रकीर्णित होता रहा है। इसी प्रकार से सामाजिक नाट्य साहित्य के पुरुष पात्र अपने

सौन्दर्य का परिपाक करते दिखाई देते हैं।

वीरता, देश–प्रेम, शौर्य, अदम्य साहस, स्वामीभक्ति, राजनीति, कूटनीति आदि के गुणों से ऐतिहासिक पात्रों का सौन्दर्य प्रकाशवान रहा साथ ही वर्माजी ने दया, प्रेम, करुणा, क्षमा आदि गुणों का सौन्दर्य महात्माबुद्ध, महावीर स्वामी, तुलसीदास आदि के द्वारा प्रदर्शित किया है। महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी को समाज में दया प्रेम की प्रतिमूर्ति स्वीकारा गया है। वर्माजी ने भी इन महापुरुषों के इन आन्तरिक गुणों का विकास चरणबद्ध रूप से दिखा कर सौन्दर्य को आभासित किया है। बाल्यकाल की घटनाओं से लेकर जीवन के प्रत्येक चरण में इनकी दया, प्रेम, करुणा की बारिश वर्माजी ने सहज रूप में कथा प्रवाह के साथ ही रखी है।

पुरुष पात्रों की तरह डॉ० वर्मा का नारी पात्रों का संसार अधिक विस्तीर्ण नहीं है। महाराजाओं की पत्नियों, उनकी सहायिकाओं, दासियों के रूप में नारी पात्रों की उपस्थिति ऐतिहासिक नाट्य साहित्य में हो सकी है। देवीश्री अहिल्याबाई, वासवदत्ता, चारूमित्रा, महादेवी, सफीयत, गौहरबानू काशीबाई, पन्ना धाय, मंजूघोषा, जैसी नारी पात्रों को वीरता शौर्य, करुणा, आदर्शमयी, सेवाभाव से ओत प्रोत, स्वाभिमानी रूप में वर्माजी ने दर्शाया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा की दृष्टि में भारतीय संस्कृति सर्वोच्च रही है और इसे वे अपने नाट्य साहित्य में प्रदर्शित भी करते रहे हैं। पन्ना धाय का राष्ट्र की रक्षा में अपने पुत्र का बलिदान कर राजकुँवर को बचाने का उदाहरण अद्भुत एवं स्तुत्य है। पन्ना धाय के इस त्याग से उसका सौन्दर्य भारतीय संस्कृति को आभासित करता रहता है।

अहिल्याबाई के राष्ट्रप्रेम, उनकी कार्य शैली को सौन्दर्य उनके राज्य को वैभव प्रदान करता है साथ ही नाट्य साहित्य के पाठकों को भी अभिभूति करता है।

गौहरबानू कैद में होने के बाद भी अपनी वीरता, स्वाभिमान को नहीं त्यागती है, वहीं सफीयत वीर दुर्गादास के संरक्षण में रहकर भारतीय संस्कृति को मानने लगती है।

ऐतिहासिक नारी पात्रों की सीमितता के विपरीत सामाजिक नारी पात्रों की बहुलता वर्माजी के नाट्य साहित्य में दिखाई देती है। वर्माजी के सामाजिक नाटकों, एकांकियों में नारी पात्रों के आन्तरिक गुणों का विस्तार प्रदर्शित नहीं हो सका है। ज्यादातर नारी पात्रों के आन्तरिक गुणों का सौन्दर्य कथोपकथन के द्वारा तथा नारी पात्रों के कार्यों से प्रदर्शित हुआ है। पारिवारिक दायित्वों के प्रति सचेत, जिम्मेदारियों का निर्वहन, रिश्तों की निर्वाहिता, करुणा, आपसी सामंजस्य आदि गुणों के द्वारा वर्माजी ने अपने नारी पात्रों के आन्तरिक सौन्दर्य को दर्शाया है।

मानवीय सौन्दर्य की प्रस्तुति में डॉ० रामकुमार वर्मा को नाट्य साहित्य होने के कारण इतना अधिक अवकाश नहीं मिल सका है कि वे पात्रों के सौन्दर्य को स्वतंत्र रूप से चित्रित करते। नाटकों के दृश्य निर्माण में, अंक परिवर्तन के मध्य्, रूपरेखा निर्धारित करते समय पात्रों की स्थिति को दर्शाने के अवसर पर वर्माजी ने यथासंभव सौन्दर्य दर्शाने की चेष्टा की है।

पुरुष सौन्दर्य के बाह्य एवं आन्तरिक स्वरूप को वर्माजी ने आसानी से कुशलता के साथ प्रदर्शित किया है पर नारी पात्रों में वे थोड़ा सा पीछे नजर आते हैं। इसका कारण नारी पात्रों का कम होना रहा होगा।

कुछ इसी प्रकार की स्थिति बाल सौन्दर्य को प्रदर्शित करते समय भी रही है।

नाट्य साहित्य की सीमाबद्धता के बाद भी डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नाटकों—एकांकियों में प्रकृति के सौन्दर्य को दर्शाने का प्रयास किया है। आलम्बन, उद्दीपन, नैतिक रूप, उपमान आदि रूपों में प्रकृति का चित्रण नाटकों, एंकांकियों में किया गया है। विविध रूपों में प्रकृति का चित्रण खुले रूप में नहीं हो सका है। पर्वतों, नदियों, वनों, वृक्षों, झाड़ियों आदि को दृश्य पूर्ति करने के उद्देश्य से नाट्य साहित्य में प्रस्तुत किया है।

उषाकाल में वन प्रान्त का अलसाया लगना, उषाकाल में बादलों का रंग, वन में कुटी के आसपास का शान्त वातावरण, झूलती अटखेलियाँ करती लताएँ दृश्य को सजीवता सा प्रदान करती हैं। इसी के साथ—साथ नदियों की लहरों का एक वाक्य में चित्रण, कोयल का कूकना आदि मात्र दृश्य वर्णन के लिए ही आये हैं। प्रकृति के विविध रूपों में उपमान रूप में भी डॉ० रामकुमार वर्मा ने किसी प्रकार के नये प्रतीकों, नये उपमानों की रचना नहीं की है। उन्होंने सामान्य रूप से प्रकृति की सुन्दरता को, उसके अंगों – उपांगों को पात्रों के द्वारा पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा के नाट्य साहित्य में किसी पात्र को चन्द्रकला से प्रेरणा मिलती है। तो किसी को वृक्षों से किसी राजा की स्थिति का आभास होता है। इस तरह के सूक्ष्म चित्रण डॉ० वर्मा ने यदा कदा अपने साहित्य में किये हैं। इनसे क्षणांश को तो सौन्दर्यानुभूति होती है पर वह इतनी स्थायी नहीं होती कि पाठकों के मन मस्तिष्क पर

दीर्घकाल तक के लिए आभासित होती रहे। वर्माजी प्रकृति का चित्रण कथानुसार, दृश्यानुसार अथवा पात्रों के माध्यम से कथोपकथन में करते दिखे हैं पर इससे सौन्दर्य की दिव्यता का उद्घाटन नहीं हो सका है।

नाट्य साहित्य में सर्वाधिक स्वतंत्रता संवादों की रहती है। संवादों के द्वारा पात्रों की, आसपास के वातावरण की स्थिति, प्राकृतिक स्थिति, वस्तुगत स्थिति का चित्रण होता है, इन सभी की सुन्दरता के बारे में ज्ञात होता रहता है।

संस्कृतिप्रेमी डॉ० राकुमार वर्मा ने भारतीय संस्कृति की विशालता के कारण मुख्य रूप से ऐतिहासिक नाटकों, एकांकियों की रचना की है। मानवीय सौन्दर्य में बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक गुणों के सौन्दर्य को प्रदर्शित करने, प्रकृति के सूक्ष्म चित्रण के द्वारा प्राकृतिक सुषमा को सामने लाने वाले वर्माजी ने नाटकों—एकांकियों की पृष्ठभूमि के अनुरूप ही वस्तुओं का चित्रण किया है।

रंगमंचीय दृष्टि से नाट्य साहित्य की रचना करते समय वर्माजी ने दृश्य निर्माण के अनुसार ही प्रभावोत्पादकता बढ़ाने के लिए वस्तुओं को प्रदर्शित किया है। वस्तुओं के वर्णन से उनका सौन्दर्य स्वयं ही सामने आया है।

नाट्य साहित्य में जहाँ ऐतिहासिक प्रसंग हैं वहाँ वर्माजी ने महलों, दुर्गों, शिविरों, अस्त्र, शस्त्र, तलवार, कृपाण, कटार, भाला आदि का चित्रण किया है वहीं सामाजिक प्रसंगों वाले नाट्य—साहित्य में वर्माजी ने कमरों की साधारण झलक दिखलाई है। मेज, कुर्सी, पलंग, गुलदस्ता आदि से सजे कमरों से वस्तुगत स्थिति चित्रित होती दिखती है पर सौन्दर्य का परिपाक नहीं होता है।

वर्माजी ने भवन, मूर्ति, पात्र, पर्यंक, अस्त्र, शस्त्र, वाहनादि के रूप में वस्तुगत सौन्दर्य को उभारने का प्रयास किया है। वस्तुशिल्प का कहीं भी विस्तारपूर्वक चित्रण नहीं किया गया है। दृश्य निर्माण करते समय वे कक्षों, खंभों आदि का चित्रण तो करते हैं पर उसे सौन्दर्य की चरम सीमा तक नहीं ले जा पाते हैं।

कमरे की स्थिति प्रदर्शित करते समय वर्माजी ने पर्दों, रेशमी चटाई, दीपदान, नीलम और मोतियों की झालरों का वर्णन तो किया है पर उनमें से किसी प्रकार के सौन्दर्य का आभास नहीं होता है।

रत्न जड़ित प्रतिमाओं, रत्नों से शोभित सिंहासनों आदि का चित्र रंगमंच विधान के अनुसार दृश्य पूर्ति तो करता नजर आता है पर पाठकों के मन मस्तिष्क में दीर्घकालीन स्थान नहीं बना पाता है। कुछ इसी तरह की स्थिति पात्र पर्यंकों को लेकर भी रही है। मंगल घट, कमण्डल, सोने की सुराही, दवाई की शीशियाँ, टिकोरे आदि का चित्रण मात्र दृश्य पूर्ति हेतु किया जाता है। इसमें किसी प्रकार की वर्णनात्मकता अथवा सौन्दर्य बोध की उपस्थिति नहीं है। कथा प्रवाह के मध्य दृश्यों की गतिशीलता और सजीवता को जीवन्त रखने के लिए इस प्रकार का चित्रण वर्माजी द्वारा किया गया है।

वस्तुगत सौन्दर्य को उभारने का प्रयास वर्माजी द्वारा कदापि नहीं किया गया है। चित्रों, मूर्तियों, भवनों, कक्षों, परकोटों, वाहन आदि का चित्रण वर्माजी ने दृश्य पूर्ति हेतु किया है। चूँकि वे नाटकों को पठन—पाठन की दृष्टि से नहीं अपितु रंगमंचीय दृष्टि से उपयुक्त मानते थे इस कारण वर्माजी ने अपना सारा ध्यान नाटकों—एकांकियों की रंगमंचीयता पर ही लगाया है। इससे उनकी दृष्टि से अन्य स्थितियाँ ओझल सी हो

गई हैं। जिससे वस्तुगत विवरण पर्याप्त ढंग से होने के बाद भी उसमें सौन्दर्य का परिपाक़ पाठकों को नहीं मिलता है।

नाटकों में रंगमंचीयता, कथावस्तु कथोपकथन तथा पात्रों की स्थिति आदि को प्रमुख मानने वाले वार्मा जी ने दृश्यों के अनुरूप वस्तुओं को तो दर्शाया है पर उनमें किसी प्रकार का सौन्दर्य नहीं बिखेरा है। इसी कारण से वस्तुगत सौन्दर्य पाठकों के मन पर स्थायी प्रभाव आरोपित नहीं कर पाता है।

नाटकों में संवादों को प्रमुख मानने वाले वर्माजी ने अपने नाट्य साहित्य में भाषा शैली को विशेष महत्व दिया है। भाषा शैली का सौन्दर्य स्वतः प्रस्फुटित होकर पाठकों को अभिभूत करता है। नाटकों, एकांकियों की कथावस्तु के अनुरूप ही वर्माजी ने अपनी भाषा को रखा है। ऐतिहासिक नाटकों, एकांकियों में कालखण्ड विशेष पर आधारित भाषा, शब्दों का चयन कर भाषागत् लालित्य जगाया है वहीं सामाजिक नाट्य साहित्य में जनसाधारण की भाषा का प्रयोग किया है।

'शिवाजी' 'कौमुदी महोत्सव' 'कला और कृपाण' 'समुद्रगुप्त पराक्रमांक' 'कुन्ती का परिताप' आदि नाटकों में तथा 'राज्यश्री' 'दीपदान' 'कृपाण की धार' 'अभिषेक पर्व' 'दुर्गावती' आदि एकांकियों में वे संस्कृतनिष्ठ शब्दों 'अवशिष्ट' 'आकांक्षा' 'निर्वासित' 'निसृत' 'स्मित' 'विकर्षण' 'चिरन्तन' 'कृतघ्न' आदि अनेक शब्दों का प्रयोग करते दिखे हैं।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने ऐतिहासिक नाट्य साहित्य में हिन्दूकालीन, मुस्लिमकालीन, अंग्रेजकालीन नाटकों, एकांकियों की रचना की है। इनमें इसी के अनुरूप शब्दों, भाषा का चयन कर लालित्यपूर्ण सौन्दर्य प्रदर्शित किया गया है। अंग्रेजकालीन नाटक 'नाना फड़नवीस' में

तथा अन्य सामाजिक एकांकियों में वर्माजी ने अंग्रेजी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है। इसी प्रकार अरबी, फारसी शब्दों का भी यथास्थान प्रयोग कर वर्माजी ने भाषागत् सौन्दर्य को समस्त नाट्य साहित्य में प्रकीर्णित किया है।

हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी होने के साथ—साथ अध्यापन करने के कारण तथा कवि एवं समालोचक होने के कारण वर्माजी का शब्द भण्डार अतुलनीय शब्दों से भरपूर रहा है। तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी शब्दों के साथ—साथ दार्शनिक शब्दों एवं सांस्कृतिक शब्दों का भी कुशलतापूर्वक उपयोग कर अपना भाषागत् कौशल प्रदर्शित किया है।

शब्दों के चयन के अतिरिक्त वर्माजी ने आलंकारिकता को स्थान दिया है। चूँकि वर्माजी का ध्यान विशेष रूप से संवादों पर हमेशा से रहा है। इस कारण से वे अपने नाट्य साहित्य में स्पष्ट और सीधी सरल रूप में भाषा का प्रयोग करने से बचे हैं। इतिहास जैसे दुरूह विषय की दुरूहता और बोझिलता को वर्माजी ने बड़े ही सामान्य रूप से दूर कर कथा की स्थिति के अनुसार उसे अलंकारों से सुशोभित कर भाषा का सौन्दर्य प्रकीर्णित किया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने बाल्यकाल में ही रंगमंच की स्थिति देखकर, नाटकों में कथोपकथन की त्रुटिपूर्ण स्थिति को देखकर नाट्य साहित्य के सुधार का संकल्प मन ही मन ले लिया था। इस संकल्प में पूरा करने में वे अपने कवि रूप को पीछे छोड़ नाटकों के लेखन में प्रवृत्त हुए। पूर्णकालिक नाटकों की कुशल निर्माण रचना में उन्होंने भारतीय संस्कृति को विस्मृत नहीं किया। भारतीय संस्कृति से अगाध लगाव की स्थिति के कारण उनके लगभग समस्त नाटक ऐतिहासिक पात्रों

अथवा ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर लिखे गये हैं। इसी तरह की स्थिति एकांकी लेखन में भी रही है।

ऐतिहासिक, सामाजिक नाट्य साहित्य में वर्माजी अपने बचपन के संकल्प को दृढ़ता से पूर्ण करते दिखे हैं। भाषागत् सौन्दर्य को उन्होंने किसी भी अन्य सौन्दर्य की अपेक्षा अधिक प्रभावी ढंग से उभारा है। कथोपकथन की त्रुटियों को दूर करने के लिए आवश्यक था कि वर्माजी भाषागत लालित्य को स्थायी रूप से प्रकीर्णित करते रहते और इसमें वे सफल भी हुए हैं।

मानवीय सौन्दर्य, प्राकृतिक सौन्दर्य एवं वस्तुगत सौन्दर्य में डॉ० रामकुमार वर्मा को सिद्धता प्राप्त नहीं हो सकी है। मानवीय सौन्दर्य के आन्तरिक गुणों का प्रभाव तो वे अपनी कथा के माध्यम से प्रदर्शित कर सके हैं पर इसमें भी उनका प्रयास नहीं था। नाटकों—एकांकियों की कथा के अनुसार पात्रों का आन्तरिक सौन्दर्य स्वयं ही स्फूर्त रूप से पाठकों के सामने प्रकीर्णित होता रहा।

इसके अतिरिक्त अन्य रूपों में पाठकों को वर्णन तो प्राप्त होता रहा है पर किसी भी तरह के सौन्दर्य चित्रण की अनुभूति नहीं हो सकी है । प्रकृति की वस्तुगत सौन्दर्य चित्रण की स्थिति में उतनी सशक्तता भी नहीं दिखाई देती है जितनी कि मानवीय सौन्दर्य के आंन्तरिक स्वरूप में दिखाई देती है। प्रकृति सौन्दर्य, वस्तुगत सौन्दर्य में डॉ० रामकुमार वर्मा का चित्रण पाठकों को प्राकृतिक स्थिति, वस्तुओं आदि से परिचित तो करवाता है पर सौन्दर्य की अनुभूति नहीं करवाता। इस स्थिति के कारण पाठकों के हृदय पर प्रकृति और वस्तुगत सौन्दर्य का स्थायी अंकन उपस्थित नहीं रह पाता है।

भाषागत सौन्दर्य अभिव्यंजनात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से रामकुमार वर्माजी को सफल सिद्ध कहा जा सकता है। नाटकों—एकांकियों से कथोपकथन की त्रुटियों को दूर करना उनका बचपन का संकल्प था। इसीलिए वे सतर्कता से अपने साहित्य में भाषा का कुशलता पूर्वक प्रयोग कर सौन्दर्य को प्रकीर्णित कर पाने में सफल रहे हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नाट्य साहित्य में भले ही मानवीय सौन्दर्य, प्रकृति सौन्दर्य, वस्तुगत सौन्दर्य को उभारने में हस्तसिद्धता साबित न की हो पर अभिव्यंजनात्मक लालित्य को उभारने में वे पूर्णतः सफल सिद्ध रहे हैं।

मानवीय, प्रकृति, वस्तुगत सौन्दर्य को न उभारने के पीछे उनकी प्रतिभा का लेखन क्षमता का अभाव नहीं कहा जायेगा, चूँकि डॉ० वर्मा विशेष रूप से रंगमंच की दृष्टि से नाट्य साहित्य का निर्माण कर रहे थे, कथोपकथन में सुधार हेतु नाटकों—एकांकियों की रचना कर रहे थे इस कारण वे किसी अन्य ओर अपना ध्यान आरोपित नहीं कर सके। हिन्दी नाट्य साहित्य की अनमोल निधि तथा एकांकी के जन्मदाता डॉ० रामकुमार वर्मा के नाट्य साहित्य में सौन्दर्य का स्पष्ट परिपाक भाषागत रूप में मिलता है अथवा मानवीय सौन्दर्य के आन्तरिक स्वरूप में, शेष भागों में डॉ० वर्मा को सौन्दर्य उभारने में सफलता नहीं मिल सकी है, भले ही ऐसा किसी भी कारण से रहा हो।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

(क) आधार ग्रन्थ

(ख) सहायक ग्रन्थ

(ग) शोध ग्रन्थ

(घ) लघु शोध ग्रन्थ

(च) पत्र-पत्रिकाएँ

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) आधार ग्रन्थ

रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली, भाग, १ – सं०, डॉ० कमल किशोर गोयनका,
डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, किताब घर, दरियागंज, नई दिल्ली, १९९०

रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली, भाग, २ – सं०, डॉ० कमल किशोर गोयनका,
डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, किताब घर, दरियागंज, नई दिल्ली, १९९०

रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली, भाग, ३ – सं०, डॉ० कमल किशोर गोयनका,
डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, किताब घर, दरियागंज, नई दिल्ली, १९९०

रामकुमार वर्मा एकांकी रचनावली, भाग, १ – सं०, डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा,
किताब घर दरियागंज, नई दिल्ली, १९९२

रामकुमार वर्मा एकांकी रचनावली, भाग, २ – सं०, डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा,
किताब घर, दरियागंज, नई दिल्ली, १९९२

रामकुमार वर्मा एकांकी रचनावली, भाग, ३ – सं०, डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा,
किताब घर, दरियागंज, नई दिल्ली, १९९२

रामकुमार वर्मा एकांकी रचनावली, भाग, ४ – सं०, डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा,
किताब घर, दरियागंज, नई दिल्ली, १९९२

नाटक रचनावली भाग–१ में संगृहीत नाटक

शिवाजी

कौमुदी महोत्सव

विजय–पर्व

कला और कृपाण

जौहर की ज्योति

सत्य का स्वप्न

महाराणा प्रताप

नाना फड़नवीस

नाटक रचनावली भाग-२ में संगृहीत नाटक

सारंग—स्वर

पृथ्वी का स्वर

जय बांगला

अग्निशिखा

संत तुलसीदास

जय आदित्य

जय वर्धमान

जय भारत

भगवान बुद्ध

नाटक रचनावली भाग-३ में संगृहीत नाटक

समुद्रगुप्त पराक्रमांक

सम्राट कनिष्क

देवीश्री अहिल्याबाई

स्वयंवरा

अनुशासन—पर्व

मालव कुमार भोज

कुन्ती का परिताप

सरजा शिवाजी

कर्मवीर

एकांकी रचनावली भाग-१ में संगृहीत एकांकी

एकांकी रचनावली भाग-२ में संगृहीत एकांकी

वासवदत्ता

राज्यश्री

सच्चे राज्य का तिरस्कार (रात का रहस्य)

एक हजार रुपया

कैलेण्डर का अखिरी पन्ना

राजरानी सीता

तैमूर की हार

प्रगति के चरण

प्रेम की आँखें

चन्द्रलोक

कार्यक्षेत्र में पुरस्कार (नहीं का रहस्य)

शहनाई की शर्त

एक्ट्रेस

घर का मकान

सोन का वरदान

मानसिक चोट (अठारह जुलाई की शाम)

अभिषेक पर्व

कृपाण की धार

औरंगजेब की आखिरी रात

आशीर्वाद

गन्नू की माँ

भविष्यवाणी

अंधकार

एक अंक की बात

एकांकी रचनावली भाग-३ में संगृहीत एकांकी

चारूमित्रा

रजनी की रात

एक पत्र (छोटी सी बात)

दीने इलाही

वर्षा—विहार

मन मस्त हुआ तब क्या बोले

हीरे के झुमके

स्वर्ण—श्री

चंपक

कलाकार का सत्य

भाग्य—नक्षत्र

जवानी की डिब्बी

चक्कर का चक्कर

कौतुक

अन्नपूर्णा का भोजन

एक बूँद दूध

मृत्यु पर विजय

शाप और आशीर्वाद (शास्त्रार्थ)

अमूल्य संपदा

स्वर्ग का कोना

भगवान महावीर

संत मलूकदास

सूर्य—ग्रहण से भूल

सोने के भगवान

पूर्व रंग

क्रान्ति दूत शास्त्री

एकांकी रचनावली भाग-४ में संगृहीत एकांकी

समुद्रगुप्त पराक्रमांक

कवि पतंग

छींक

सही रास्ता

साँप

नाना फड़नवीस

रंगीन स्वप्न (गुदगुदी)

भारतेन्दु—मण्डल

श्री विक्रमादित्य

महाकवि कबीर

महाकवि सूर

महाकवि तुलसीदास

आँखों का आकाश

रूप की बीमारी

प्रसाद—परिचय

छायावाद युग

कविता का युग पथ

नैमिषारण्य का नकुल

सुकन्या

योगाग्नि (अग्नि से मुक्ति)

संदेह की निवृत्ति (सिन्दूर की रेखा)

महाकवि भारवि (प्रतिशोध)

प्रगति के चरण

नमस्कार की बात

कल नहीं आज (श्रद्धा भेंट)

पारस का स्पर्श

एक कमण्डल जल

बापू

वीर जवाहर

नया संसार (चित्रकार)

कलंक रेखा

अभियोग

ध्रुवतारिका

पृथ्वी का स्वर्ग

बीस हजार

इलेक्शन

सरजा शिवाजी

दस मिनट

सती कण्णकी

(ख) सहायक ग्रन्थ

अथातो सौन्दर्य–जिज्ञासा, रमेश कुन्तल मेघ, मैकमिलन, दिल्ली, १९७७

अशोक के फूल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७६

आज का भारतीय साहित्य, साहित्य अकादमी नई दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली १९९०

आदिकालीन हिन्दी साहित्य, डॉ० शम्भूनाथ पाण्ड़ेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९७०

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल,
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५८

आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, डॉ० नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८६

आधुनिक काव्य में सौन्दर्य के विविध आयाम, डॉ० छोटेलाल दीक्षित

आधुनिक हिन्दी काव्य, डॉ० भागीरथ मिश्र एवं डॉ० बलभद्र तिवारी

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रेम की परिकल्पना, डॉ० विजय मोहन सिंह

आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ० नामवर सिंह, लोकभारती, इलाहाबाद

आज का नाटक : प्रगति और प्रभाव, डॉ० दशरथ ओझा, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९८४

आस्था और सौन्दर्य, डॉ० रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९७३

उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा, डॉ० शशिभूषण सिहल विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, १९६०

ऐतिहासिकता और हिन्दी उपन्यास, डॉ० मक्खन लाल शर्मा

औचित्य विमर्श, डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, संवत् २०२१

कथाकार वृन्दावन लाल वर्मा, डॉ० शशिभूषण सिंहल,हरियाणा साहित्य अकादमी,चण्डीगढ़, १९९३

कामायनी का काव्यशास्त्रीय विश्लेषण, डॉ० स्नेहलता गुप्त, विद्या प्रकाशन, कानपुर, १९८८

कामायनी सौन्दर्य, डॉ० फतेह सिंह, भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

काव्यशास्त्र, डॉ० भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९९९

चिन्तामणि भाग – १, रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मंदिर, वाराणसी

चिन्तामणि भाग – २, रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मंदिर, वाराणसी

छायावाद, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २००६

छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, डॉ० कुमार विमल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७८

छायावादी काव्य में सौन्दर्यचेतना, डॉ० कृष्णमुरारी मिश्र, प्रगति प्रकाशन, आगरा, १९७९

जयशंकर प्रसादः वस्तु और कला, रामेश्वरलाल खण्डेलवाल

दृष्टि और दिशाः साहित्य निबन्ध, डॉ० चन्द्रभान रावत

डॉ० रामकुमार वर्मा की साहित्य साधना, डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा,
साहित्य भवन प्रा०लि० इलाहाबाद, १९९०

नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, गजानन माधव मुक्तिबोध, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९२

प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन, डॉ० वीणा माथुर, बाफना प्रकाशन, जयपुर, १९७१

भारतीय काव्यशास्त्र, डॉ० रामानन्द शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९८३

भारतीय काव्यशास्त्र, डॉ० सत्यदेव चौधरी, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली

भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा, डॉ० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५३

भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, डॉ० नगेन्द्र, ओरियण्टल बुक डिपो, दिल्ली, १९५५

भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास, डॉ० अज्ञात, पुस्तक संस्थान, कानपुर, १९७८

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, फतेह सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९७१

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, नगेन्द्र, नेशनल पब्लिकेशन, नई दिल्ली

महादेवी की कविता में सौन्दर्य भावना, डॉ० सी० तुलसम्मा, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, १९८४

मोहन राकेश की रचनाओं में पारिवारिक सम्बन्धों की त्रासदी, डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव, लोक कल्याण संस्थान, उरई (जालौन) २००५

वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का साँस्कृतिक अध्ययन, डॉ० कृष्णा अवस्थी, पुस्तक संस्थान, कानपुर, १९७८

वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का साँस्कृतिक अध्ययन, डॉ० उषा भटनागर, ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, १९९२

वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में सौन्दर्य चित्रण, डॉ० कुमारेन्द्र सिंह सेंगर, निशा प्रकाशन उरई (जालौन), २००५

विचार और वितर्क, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९६१

विद्यापति सूर बिहारी का काव्य सौन्दर्य, शरद कणबरकर, चिन्तन प्रकाशन कानपुर १९८९

सत्यं शिवं सुन्दरम्, शिवबालक राम

समकालीन हिन्दी नाटककार, डॉ० गिरीश रस्तोगी, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, १९८२

समकालीन हिन्दी नाटक की संघर्ष चेतना, डॉ० गिरीश रस्तोगी, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़

साहित्य और सौन्दर्य बोध, डॉ० रामशंकर द्विवेदी भावना प्रकाशन, दिल्ली, १९९०

साक्षी है सौन्दर्य प्राश्निक, रमेश कुन्तल मेघ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९८०

साहित्यिक निबन्ध, लक्ष्मीनारायण चातक, डॉ० राजकुमार पाण्डेय

सुमित्रानन्दन पन्त की सौन्दर्य चेतना का विकास, डॉ० राजकुमारी सैनी

सौन्दर्य शास्त्र, हरद्वारी लाल शर्मा, मधु प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७९

सौन्दर्य शास्त्र : स्वरूप एवं समस्याएँ, डॉ० लक्ष्मणप्रसाद शर्मा

सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व, डॉ० कुमार विमल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९८

सौन्दर्य तत्त्व निरूपण, एस.टी. नरसिंहाचारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १९७७

सौन्दर्य का तात्पर्य, रामकीर्ति शुक्ल, उ० प्र० हिन्दी ग्रन्थ समिति, लखनऊ, १९७७

सौन्दर्य का तात्पर्य, प्रभाकर श्रोत्रिय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९८

सौन्दर्य बोध एवं ललित कलाएँ, डॉ० सरोज भार्गव, कला प्रकाशन, वाराणसी, १९९९

सौन्दर्य मीमांसा, रामकेवल सिंह, किताब महल, इलाहाबाद

हिन्दी उपन्यास, डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव, सरस्वती मंदिर, वाराणसी, १९६८

हिन्दी उपन्यास, डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, १९९२

हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव, डॉ० विश्वनाथ मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६६

हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग–१, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग–२, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशीनागरी प्रचारिणी सभा, संवत्२००३

हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० नगेन्द्र, मयूर पेपर बैक्स, नई दिल्ली, १९९६

हिन्दी साहित्य उद्‌भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

हिन्दी उपन्यास–साहित्य में आदर्शवाद, सर्वजीत राय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६९

हिन्दी साहित्य का आदिकाल, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९६१

हिन्दी साहित्य का आदिकाल, डॉ० हरिश्न्द्र वर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, १९७०

हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ०जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, १९७१

हिन्दी का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ० वासुदेव सिंह, संजय बुक सेण्टर, २०००

हिन्दी में आधुनिकतावाद, दुर्गा प्रसाद गुप्ता, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, १९९८

हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ० रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९९२

हिन्दी साहित्य का इतिहास, युग और प्रवृत्तियाँ, शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली १९९१

(ग) शोध प्रबन्ध

कालिदास और प्रसाद के काव्य में सौन्दर्य भावना, अपर्णा रानी, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, १९८२

देव के सौन्दर्य बोध का अनुशीलन, अंजू शर्मा, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, १९९०

देवकाव्य में सौन्दर्य बोध, किरण अवस्थी, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, १९९६

प्रेमचन्दोत्तर सामाजिक उपन्यासो में पारिवारिक मूल्यों का अध्ययन, कुसुम पोद्दार, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

डॉ० वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में अभिव्यक्त सौन्दर्य का अनुशीलन, कुमारेन्द्र सिंह सेंगर, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, २००२

वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में बुन्देली संस्कृति, रमेशचन्द्र बाजपेयी, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, १९८७

वासवदत्ता में प्रेम और सौन्दर्य, सविता गहोई, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, १९९३

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन और उसके बदलते प्रतिमान, बीना कपूर, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

हिन्दी के महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में अभिव्यक्त प्रेम सौन्दर्य और जीवनदृष्टि, कु० किरन सिंह, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, १९८७

(घ) लघु शोध प्रबन्ध

कामायनी का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन, कु० अपर्णा खरे, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, १९९८

धर्मवीर भारती के उपन्यास 'गुनाहों का देवता' में जीवन मूल्य, कुमारेन्द्र सिंह सेंगर, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, १९९८

प्रसाद एवं अंचल के काव्य सौन्दर्य का तुलनात्मक अध्ययन, श्रीमती नूतन द्विवेदी, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, १९९५

प्रसाद की सौन्दर्य योजना, रीनू कोहली, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर,२०००

महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य तत्त्व, मंगला शुक्ला, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर,२०००

(च) पत्र-पत्रिकाएँ

आजकल, नई दिल्ली

आलोचना, नई दिल्ली

उत्तर प्रदेश, लखनऊ

कथाक्रम, लखनऊ

समर लोक, भोपाल

साहित्य—अमृत, नई दिल्ली

हिन्दी अनुशीलन, इलाहाबाद

हिन्दुस्तानी, डॉ० रामकुमार वर्मा जन्मशती विशेषांक, इलाहाबाद